दशामृत

अहसास अंतस का

उत्तम क्षमा
उत्तम मार्दव
उत्तम आर्जव
उत्तम शौच
उत्तम सत्य
उत्तम संयम
उत्तम तप
उत्तम त्याग
उत्तम आकिञ्चन
उत्तम ब्रह्मचर्य

–आचार्य श्री वसुनंदी जी मुनिराज

श्रमण आचार्य परम्परा

आचार्य श्री शांतिसागर जी महाराज

आचार्य श्री पायसागर जी महाराज

आचार्य श्री जयकीर्ति जी महाराज

आचार्य श्री देशभूषण जी महाराज

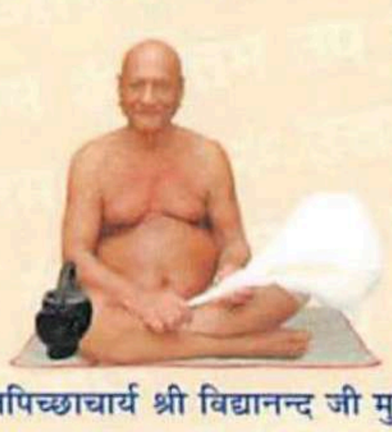

श्वेतपिच्छाचार्य श्री विद्यानन्द जी मुनिराज

आचार्य श्री वसुनन्दी जी मुनिराज

पुरोवाक्

स्वाध्यायोऽध्ययनं स्वस्मै, जैन-सूत्रस्य युक्तितः।
अज्ञान-प्रतिकूलत्वाद्, स्वाध्यायः परमस्तपः॥

अज्ञान के नाश के लिये, अपने लिये स्वाध्याय करना कराना व युक्ति से युक्त जैन सूत्रों का अध्ययन करना ऐसा वह स्वाध्याय ही परम तप है।

जिनाज्ञा स्वपरोत्तारा भक्तिर्वात्सल्यवर्द्धनी।
तीर्थ-प्रवर्तिका साधोर्ज्ञानतः परदेशना॥112॥

(मरण कण्डिका)

स्वाध्याय के द्वारा जिनाज्ञा का पालन, स्व-पर उद्धार, भक्ति, वात्सल्यवृद्धि, तीर्थ प्रवर्तन व उपदेश इतने गुण प्राप्त होते हैं।

शास्त्र साहित्य शब्दानुबद्ध सभी के लिये हितकारी चिंतन का परिणाम है, इसके माध्यम से सत्य का साक्षात्कार सुलभ है। शास्त्र साहित्य व्यक्ति के एक विशिष्ट अंतःकरण का निर्माण करता है। नवीन दिशाएँ, नवीन विचार व चिंतन का राजपथ शास्त्रों से ही प्राप्त होता है। उत्तम पुस्तकों का अध्ययन नवीन विचारधारा, श्रेष्ठ संस्कारों

का उन्मेष करने में उपकारी सिद्ध होता है। लोकातिशायी महापुरुष, उनके कृतित्व, मोक्षमार्ग व मोक्ष को जानने में शास्त्र मील के पत्थर के समान सहायक सिद्ध होते हैं।

साहित्य की क्षमता विकृत चित्त व चारित्र को परिष्कृत करने की भी है। शास्त्रों का अजस्र चिंतन बुद्धि की धार को तीक्ष्ण करता है। जिस प्रकार किसी राज्य व देश में पहुँचने के लिये विभिन्न राजपथ नियत हैं उसी प्रकार पवित्रता के स्वदेश में प्रवेश करने के लिये स्वाध्याय राजमार्ग है। यह स्वाध्याय अज्ञान रूपी गज पर अंकुश के समान है।

ज्ञान की रश्मियाँ चेतना के धरातल पर अज्ञान तम का नाश कर अलौकिक आनंद का प्रसार करती हैं। अग्नि वृष्टि के समान ग्रीष्मकाल में तपित श्रमिक को जो आनंद जल अवगाहन में आता है वही आनंद स्वाध्याय के प्रति रुचिवान् ज्ञानियों को शास्त्र-अध्ययन में आता है। जल अवगाहन देह को शांति प्रदान करता है तथा शास्त्र रूपी समुद्र में अवगाहन आत्मा को संतृप्त करता है।

जिस कारण ज्ञान क्रोध को नष्ट करता है, शांति को उत्पन्न करता है, मित्रता को विस्तृत करता है, मोह को नष्ट करता है, चित्त को पवित्र करता है और काम का छेदन करता है उसी कारण सत्पुरुष इस लोक में सम्यग्ज्ञान को प्राप्त करने की इच्छा करते हैं।

दस धर्म मानव जीवन की उन्नति के सोपान हैं। उत्तम क्षमा, उत्तम मार्दव, उत्तम आर्जव, उत्तम शौच, उत्तम सत्य, उत्तम संयम, उत्तम तप, उत्तम त्याग, उत्तम अकिंचन व उत्तम ब्रह्मचर्य विश्व-शांति के महत्वपूर्ण बिंदु हैं। पारिवारिक, सामाजिक, राष्ट्रीय व आध्यात्मिक उत्थान इसके बिना संभव नहीं। उन्नति के इच्छुक मानवों के द्वारा स्वजीवन को इन दस धर्मों से संस्कारित करना ही शुभ है।

प्रस्तुत कृति **"दशामृत"** परम पूज्य अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोगी आचार्य गुरुवर श्री वसुनंदी जी मुनिराज के सन् 2000 में टूण्डला चातुर्मास के दौरान हुए प्रवचनों का संकलन है। इसमें पूज्य गुरुदेव ने तत् विषय संबंधी कथानक, दृष्टान्त, दोहे, श्लोक आदि संकलन व स्व-चिंतन के बिन्दुओं का समायोजन कर इस कृति को विद्वानों के लिए और अधिक उपयोगी बना दिया।

इस पुस्तक की पाण्डुलिपि तैयार करने में संघस्थ त्यागीव्रती, मुद्रण प्रकाशन में सहयोगी सभी धर्मस्नेही बंधुजनों को पूज्य गुरुवर श्री का मंगलमय शुभाशीष।

गुरुवर श्री का संयमपथ सदैव आलोकित रहे। शताधिक वर्षों तक यह वसुधा गुरुवर श्री के तप, ज्ञान, साधना से सुरभित रहे। परम पूज्य अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोगी, अक्षरशिल्पी, आचार्य भक्ति गुरुवर श्री वसुनंदी जी मुनिराज के चरणों में सिद्ध-श्रुत-आचार्य सहित कोटिशः नमोस्तु! नमोस्तु! नमोस्तु....!!

।।सर्वेषां मंगलं भवतुं।।

ॐ ह्रीं नमः
मुनि प्रज्ञानंद

श्री शुभमिति माघ कृष्ण सप्तमी
श्री वीर निर्वाण संवत् 2545
श्री पार्श्वनाथ दिगम्बर जैन मंदिर
ग्रीन पार्क एक्सटेंशन, नई दिल्ली

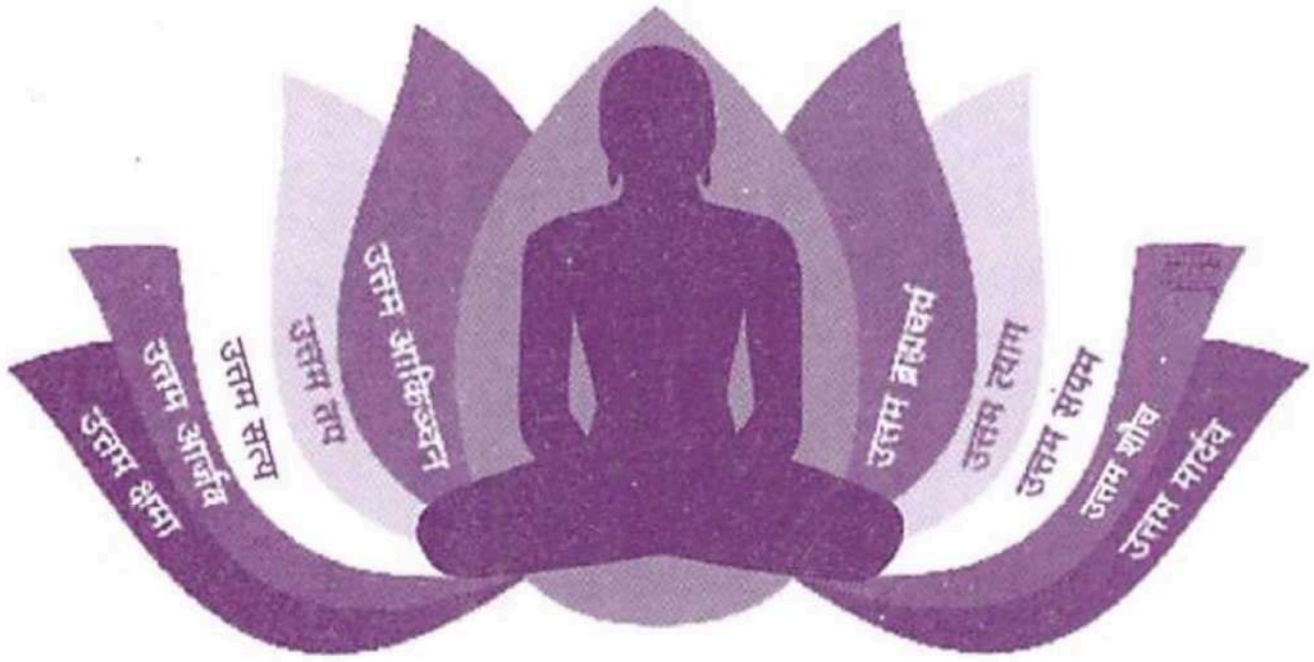
उत्तम क्षमा
उत्तम आर्जव
उत्तम सत्य
उत्तम तप
उत्तम आकिञ्चन्य
उत्तम ब्रह्मचर्य
उत्तम त्याग
उत्तम संयम
उत्तम शौच
उत्तम मार्दव

उत्तम क्षमा

कोहुप्पत्ति-हेऊण,
संजोगे णो कुप्पंति किंचि जे।
धारंति खमाधम्मं,
णिग्गंथा ते सया पुज्जा॥

दशामृत

अहसास अंतस का

उत्तम क्षमा धर्म

महानुभाव!

यह भाद्रपद परिणामों को भद्र बनाने में विशेष निमित्त है जिसे आचार्यों ने चक्रवर्ती के समान कहा है, जैसे रत्नों में चिन्तामणि रत्न, मंत्रों में महामंत्र, नदियों में भागीरथी, वनों में नन्दन वन, मेरुओं में पंचमेरु महत्व को प्राप्त हैं, उसी प्रकार वर्ष के बारह महीनों में यह भाद्रपद का महीना विशेष महत्व को प्राप्त है। आचार्यों ने कहा है–

''अहो भाद्र! पदाख्येयं, मासानेकव्रताकरः।
धर्महेतुपरोमध्ये, मानुसानां नरेन्द्रवत्।।''

धन्य है! इस भाद्रपद के लिए, जिस भाद्रपद के आते ही भव्य जीवों के परिणाम भद्र हो जाते हैं। अनेक व्रतों को प्रकट करने वाला, अनेक व्रतों को साथ में लाने वाला यह भाद्रपद का महीना अपने आप में भद्र है। ''धर्महेतु परोमध्ये''–एक वर्ष के अन्दर यह भाद्रपद का महीना एक बार ही आता है, यह धर्म का एक प्रबल हेतु है। इस भाद्र महीने में प्राय: करके सभी प्राणियों के परिणाम भद्र हो जाते हैं तो ऐसा यह भाद्रपद; नरेन्द्रवत्–चक्रवर्ती के समान उपमा को प्राप्त होता है। इसी भाद्रपद में षोडशकारण व्रत के मध्य वर्तमान में

सर्वोदयी चिन्तन

''क्षमा'' शब्द दो अक्षर (वर्णों) से मिलकर बना है जिसमें 'क्ष' वर्ण का अर्थ है क्षय एवं 'मा' वर्ण का अर्थ है नहीं। दोनों का अर्थ हुआ जो आत्मा को (क्षय) नष्ट होने से बचाये।

पर्यूषण पर्व का भी प्रारम्भ आज से हो चुका है। **आज पर्यूषण पर्व का प्रथम दिन है।** जो प्रथम दिन होता है वह अत्यन्त महत्वपूर्ण माना जाता है, जिसका प्रारम्भ अच्छा होता है उसका अंत भी अच्छा हो जाता है। सृष्टि की रचना सम्बन्धी क्रियायें आगे प्रारम्भ हों, इस भरत क्षेत्र और ऐरावत क्षेत्र में आगे मनुष्य षट्कर्मों को करें इसके पूर्व उनन्चास (49) दिन की कुवृष्टि एवं उनन्चास (49) दिन की सुवृष्टि के उपरांत आज यह धार्मिक पर्व आया है। यह पर्व वर्ष में तीन बार आता है किन्तु प्राय: करके लोग भाद्रपद को विशेष रूप से मानते हैं। माघ मास में और चैत्र मास में आने वाले पर्यूषण पर्व को नहीं मना पाते हैं। ऐसे बहुत कम लोग हैं जो उन्हें भी मना पाते हो। इन दस दिनों में धर्म के दस लक्षणों की चर्चा कर ली जाती है जो धर्म के दस लक्षण हैं जिन्हें प्राप्त करके यह चेतना परम अवस्था को प्राप्त हो जाती है, यह आत्मा रूपी बीज परमात्मा के रूप को प्राप्त हो जाता है। आज इस आत्मा का प्रथम अवसर है यह आत्मा प्रथम सोपान पर बढ़ने के लिए उत्साहित है, प्रयासरत् है और पहला दिन आपका अत्यन्त आनन्द के साथ व्यतीत हो रहा है। इसका यह आशय है कि आगे के दस दिन भी परम आनन्द के साथ सम्पन्न होंगे क्योंकि दुकान खोलते समय यदि बोनी अच्छी हो जाए तो ऐसा माना जाता है कि आज तो मुनाफा बहुत होगा, अच्छी दुकान चलेगी, यदि बोनी खराब हो जाए तो लोग कहते हैं अरे! आज तो बोनी खराब हो गयी अब कोई भरोसा नहीं दुकान कैसे चले? आज आपका ये बोनी का दिन है अच्छे से करना, कहीं आपकी बोनी खराब न हो जाए, इसलिए आज ''उत्तम क्षमा धर्म'' को हम जितना समझ सकते हैं, जितना ग्रहण कर सकते हैं, शिविर का जितना आनन्द ले सकते हैं, लेना है। दस दिनों में शिविर का बहुत आनन्द लेना है। दस दिनों को

सर्वोदयी चिन्तन

'क्षमा'' शब्द का प्रयोग करके भी क्रोध, मान, माया व लोभ का पोषण किया जा सकता है, अत: वह क्षमा सार्थक नहीं है, जिससे कषायों का पोषण होता है।

संयम के साथ व्यतीत करना है, ये दस दिन परीक्षा के दस दिन हैं। तीन सौ पचपन दिन आपने पढ़ाई की है, अध्ययन किया है उसकी परीक्षा इन दस दिनों में देना है कि आपने क्या सीखा है? आप क्या समझते हैं? धर्म के सम्बन्ध में, अपने अपने कर्तव्यों को कितना जान लिया है, कितना मान लिया है, कितना ग्रहण कर लिया है। इस बात की परीक्षा इन दस दिनों में होगी। आज प्रस्तुत है ''उत्तम क्षमा धर्म'' को समझने के लिए पहला दिन।

उत्तम क्षमा धर्म को समझें, इससे पूर्व इसकी विपरीत अवस्था को भी समझ लें तो क्षमा धर्म अच्छे से समझ में आ जायेगा। **क्षमा धर्म की विपरीत अवस्था है ''क्रोध''।** क्योंकि क्रोध को समझे बिना क्षमा को, दु:ख को जाने बिना सुख को, जीवन में प्राप्त नहीं किया जा सकता। जिस व्यक्ति ने मृत्यु को नहीं जान पाया, मृत्यु को नहीं पहचान पाया, मृत्यु का अनुभव नहीं किया है ऐसा व्यक्ति जीवन में कभी भी अमरत्व अवस्था को प्राप्त नहीं कर सकता। **''मृत्यु बोध ही जीवन बोध है''** जिसने दु:खों का अनुभव कर लिया है ऐसा व्यक्ति ही सुखों को प्राप्त करने का अधिकारी होता है, रात्रि के उपरांत ही प्रात:काल आता है। रात्रि के उपरान्त ही दिन का बोध होता है ऐसा कभी नहीं हुआ कि बिना रात्रि के दिन हो जाए। जहाँ बिना रात्रि के दिन हो जाता है उसे दिन नहीं कहते हैं। जैसे स्वर्गों में वहाँ रात्रि नहीं होती; दिव्य प्रकाश मणियों का, रत्नों का सदा विद्यमान रहता है उसे दिन भी नहीं कह सकते। महास्कंध के स्थान पर घोर अंधकार है, जहाँ ज्योतिषी देव नहीं हैं वहाँ घोर अंधकार है तो उसे भी हम रात्रि नहीं कह सकते, दिन नहीं कह सकते, तो कहने का तात्पर्य है दिन और रात एक के बाद एक क्रमश: आते हैं। **जिस व्यक्ति ने जीवन में दु:ख का अनुभव कर लिया है ऐसा व्यक्ति सुख का**

सर्वोदयी चिन्तन

''उत्तम'' शब्द श्रेष्ठता का वाची है ''क्षमा'' शब्द का अर्थ है माफ करना व ''धर्म'' शब्द स्वभाव का द्योतक है।

अनुभव करने का अधिकारी होता है। जिसने दुःख को दुःख नहीं जाना वह जीवन में भी सुख को प्राप्त नहीं कर सकेगा, सुख की अनुभूति नहीं कर सकेगा, सुख को सही मायने में नहीं जान सकेगा। अतः विभाव को जानना भी आवश्यक है। छहढ़ालाकार विद्वतवर दौलतराम जी ने कहा भी है–

''बिन जाने ते दोष गुणन को कैसे तजिये गहिये?'' बिना जाने न तो दोषों का त्याग किया जाना सम्भव है न गुणों को ग्रहण किया जाना संभव है। आप कहेंगे, महाराज दोषों को क्यों जानें? हमें गुण ग्रहण करना है, इसलिए गुणों को जान लेना ही पर्याप्त है। जब हमें क्षमा धारण करना है तो क्रोध के बारे में जानना आवश्यक क्यों है? हम क्षमा धारण कर लेते हैं। किन्तु क्षमा बिना क्रोध को त्यागे प्राप्त नहीं की जा सकती, क्रोध को त्यागने के उपरान्त ही क्षमा को अंगीकार किया जा सकता है। अन्यथा असम्भव है, सड़े सेब के साथ में अच्छा सेब भी सड़ जाता है। यदि अंतरंग से गुस्से को, क्रोध को नहीं निकाला, उसका उपशमन नहीं किया, क्षपण नहीं किया, त्याग नहीं किया तो पुनः क्षमा की प्राप्ति नहीं हो सकेगी। अशोला की अवस्था छोड़े बिना, शोले के वस्त्र तुम ग्रहण नहीं कर सकते, करोगे भी तो अशोला के हो जायेंगे। कुछ लोग जैसे ऐसा कर लेते हैं अज्ञानतावश, यहाँ नहीं, कहीं दूसरी जगह कर लेते थे, अशोले की चड्डी-बनियान पहने-पहने शोले के धोती-दुपट्टा पहन लेते थे। यदि अशुद्ध चड्डी-बनियान पहने हैं ऊपर से शुद्ध धोती-दुपट्टा पहन भी लोगे तो अशुद्ध कहलाओगे इसलिए पहले उन अशुद्धि के वस्त्रों को छोड़ना आवश्यक है, जिससे आपकी पूर्ण शुद्धि विद्यमान बनी रहे, स्थायी अवस्था को प्राप्त हो जाए। अन्यथा वह शुद्धि ग्रहण करते समय ही वह शुद्धि भी अशुद्ध हो जायेगी। इसलिए आचार्य भगवन् कहते हैं–पहले विभाव को भी छोड़ना है।

सर्वोदयी चिन्तन

उत्तम क्षमा ही धर्म है, स्वार्थ वश की गई क्षमा या परिस्थिति वश की गई क्षमा नहीं।

यदि कोई व्यक्ति मिथ्यात्व को छोड़ना नहीं चाहे और सम्यक्त्व को प्राप्त करना चाहे तो सम्यक्त्व की प्राप्ति नहीं हो सकेगी। पहले मिथ्यात्व को छोड़ना आवश्यक है। जब व्यक्ति आता है घर से, तो पहले घर को छोड़ता है तब मन्दिर में आ पाता है। यदि घर को नहीं छोड़े तो क्या मन्दिर आ पायेगा? नहीं आयेगा। पहले पैर को उठाया जाता है तब पैर आगे बढ़ाया जाता है यदि पीछे का पैर नहीं उठाये तो आगे बढ़ ही नहीं पायेगा इसलिए यहाँ पर पहले उस विभाव को समझना भी आवश्यक है जिस विभाव ने हमारे स्वभाव को दबा लिया है, जिस विभाव ने हमारे स्वभाव को छुपा लिया है, हमारे स्वभाव को हमसे छीन लिया है। यह विभाव आज शक्ति में हमसे बलवान् हो गया है। वह विभाव क्षमा के विपरीत भाव है–''क्रोध'', जिस क्रोध के कारण व्यक्ति अपने विवेक को खो देता है। जब-जब भी क्रोध आता है वह पागल हो जाता है। क्रोध के आते ही विवेक उस घर से भाग जाता है और उस घर में अशांति का, कलह का वास हो जाता है। जब-जब भी क्रोध आता है अकेले नहीं आता, क्रोध आयेगा अपने साथ अविवेक को लेकर आयेगा, क्रोध अपने साथ अशान्ति, संक्लेशता, कलह, दुराशय, असत्य, मायाचारी इत्यादि अवगुणों को साथ में लेकर के आता है। क्रोध जब भी आता है, हिंसा को साथ में लेकर के आता है, अकेला नहीं आता। उस क्रोध के भी कुछ ''बॉडीगार्ड'' हैं, उस क्रोध की कुछ सेना है, Force है, Army इसके पास भी है। वह अकेला नहीं है यदि क्षमा की एक सेना है तो क्रोध की भी सेना है। क्षमा यदि कोई मिलेट्री शासन है तो क्रोध मिलीटेंसी का ग्रुप है। वह भी अकेला नहीं उसकी भी बहुत बड़ी सेना है।

सर्वोदयी चिन्तन

प्रतिकूल परिस्थिति एवं क्रोध के कारण उपस्थिति होने पर भी क्रोधजनित परिणाम नहीं होने देना तथा अपकारी के प्रति भी उपकार का भाव रखना ही क्षमा है।

महानुभाव!

क्रोध के उस ग्रुप से हमें जीतना है।

उसके जीतने का उपाय एक ही हो सकता है, वह है उसे जानना। यदि हमने क्रोध को नहीं जान पाया और जहाँ क्रोध है उसे तो मारने का प्रयास नहीं किया, शत्रु ने ऊपर से बम पटक दिया और हम बम की अग्नि को बुझाने का प्रयास करें तो हम शत्रु को कभी जीत नहीं पायेंगे। हमें Control वहाँ करना है जहाँ से बम छोड़ा जायेगा, यदि बम छोड़ दिया है तो वह गिरेगा ही इसलिए सम्यक्ज्ञानी और मिथ्याज्ञानी की प्रवृत्ति में कुछ अन्तर है–कुत्ता अपने ऊपर वार करने वाले को नहीं, जिस चीज से वार किया जा रहा है उसे पकड़ता है। जैसे कुत्ते को लाठी मारी जा रही है तो कुत्ता लाठी को पकड़ता है, व्यक्ति को नहीं किन्तु शेर की विशेषता यह है कि बन्दूक की गोली को नहीं बन्दूक चलाने वाले पर वार करता है। कुत्ता पीछे से वार करता है, शेर कभी पीछे से वार नहीं करता, सामने से वार करता है। सिंहवृत्ति वाले ज्ञानी पुरुष उस क्रोध को जीतने के लिए सामने से क्रोध पर वार करते हैं। हमें क्रोध को जीतना है क्योंकि क्रोध हमारा घातक है। **क्रोध के माध्यम से आपकी Health भी जाती है Wealth भी जाती है और क्रोध के माध्यम से Relation भी चला जाता है।**

> **सर्वोदयी चिन्तन**
> मन, वचन, काय की सरलता व सहजता से युक्त हो विनम्र भावों से माँगी गई या की गई क्षमा ही सार्थक है, अन्यथा वह ढोंग है।

महानुभाव!

क्रोध एक क्षण के लिए भी आता है, तब भी महान् घात करके जाता है। Blood में दो प्रकार की कणिकायें होती हैं–

1. श्वेत रुधिर कणिकायें
2. लाल रुधिर कणिकायें।

एक क्षण के क्रोध से लगभग 15,000 श्वेत रुधिर कणिकायें

रक्त रुधिर कणिकाओं में परिवर्तित हो जाती हैं, जो श्वेत रुधिर कणिकायें शरीर में पायी जाती हैं उनका कार्य होता है ''रोग निरोध करना''। रोग जो शरीर में है उन्हें रोकना, श्वेत रुधिर कणिकाओं के पास रोग निरोधक क्षमता होती है और लाल रुधिर कणिकायें रोग को पैदा करने वाली होती है। जिसके शरीर में जितनी अधिक श्वेत कणिकायें होती है वह व्यक्ति उतना ही शांत होता है, उतना ही प्रेम से भरा होता है। श्रद्धा, भक्ति, समर्पण से सहित होता है वह व्यक्ति उतना ही धर्म का आनन्द ले सकता है। उसके अन्दर उतने अधिक गुण विद्यमान रहते हैं, और उतनी ही गुणों को प्राप्त करने के लिए उसकी अच्छी Catching power होती है। किन्तु जिसके Blood में रक्त रुधिर कणिकायें अधिक होती हैं ऐसे व्यक्ति को पल-पल में क्रोध आता है, वह सहनशील नहीं हो सकता, उसका शरीर अन्दर से खोखला हो जाता है। जब-जब भी क्रोध आता है चेहरा तमतमा जाता है, शरीर लाल हो जाता है, क्रोधी व्यक्ति दिन पर दिन कमजोर होता जाता है। अतः **क्रोध आत्मा का विभाव है आत्मा का स्वभाव नहीं है** इसलिए हमें श्वेत रुधिर कणिकाओं की वृद्धि करनी है जिससे हमारा पूरा Blood White हो जाए, Red नहीं रहे। आपने तीर्थंकरों के शरीर के सम्बन्ध में दस अतिशय जो जन्म से होते हैं उसमें, सुना होगा कि उनके खून का रंग सफेद होता है, बिल्कुल दूध के समान उनका खून होता है। क्या तुमने कभी विचार किया उनका खून दूध के समान सफेद क्यों होता है? वे भी एक मनुष्य हैं, इंसान हैं और हम भी एक मनुष्य हैं तो उनका खून सफेद क्यों? हमारा खून लाल क्यों? किसी का खून काला क्यों? किसी का खून नीला क्यों? एक पत्रिका पढ़ने में आया था कि एक ऐसा भी जन्तु पाया जाता है विश्व में, जिसका खून नीला निकलता है एक

सर्वोदयी चिन्तन

बदला लेने की भावना एवं अवसर आने पर घात करने के संकल्प को मन में छुपाकर मात्र शब्दों से माँगी गई क्षमा या की गई क्षमा-क्षमा नहीं अपितु धर्म के प्रति किया गया महापाप का हेतु विश्वास घात है।

जन्तु ऐसा भी पाया जाता है जिसका खून काला होता है और तीर्थंकर आदि महापुरुष ऐसे होते हैं जिनका खून सफेद होता है और सामान्य मनुष्य का खून लाल होता है। लाल खून में भी अंतर है किसी व्यक्ति का खून जमीन में पड़ जाए तो पड़ते ही एक-दो घंटे के अंदर काला दाग बन जाता है और किसी का खून जमीन में पड़ते ही कुछ काला दाग पूरा काला नहीं बनता किन्तु मटमैला दाग बन जाता है और किसी के खून का दाग लाल ही रहता है तो इसका आशय यह है कि जिसके खून का दाग जमीन पर काला पड़ गया है ऐसा व्यक्ति तीव्र कषायी है। ऐसा व्यक्ति तीव्र कषाय के माध्यम से नरकादि की प्राप्ति करने वाला है। जिसके खून का दाग मटमैला पड़ जाता है ऐसा व्यक्ति तिर्यंच अवस्था के योग्य, मायाचारी से सहित और क्रोध की मध्यम अवस्था से युक्त है और जिसके खून का दाग मटमैले से कुछ कम है, लाल जैसा पड़ जाता है वह मनुष्य अवस्था पाने की योग्यता रखता है, मनुष्य आयु के बंध की योग्यता रखता है और जिसका खून लाल ही रहता है या लालिमा में भी थोड़ी कम लालिमा होती है, गहरा लाल नहीं होता ऐसा व्यक्ति देव तुल्य कहलाता है। इस पर्याय में भी कालान्तर में भी वह देव पर्याय को प्राप्त करने का अधिकारी बन जाता है; देव आयु के बंध करने का वह पात्र हो जाता है।

सर्वोदयी चिन्तन

परिणामों में विशुद्धि, हृदय में सरलता, वाणी में मधुरता, शरीर में विनम्रता, क्रिया में सहजता के बिना माँगी गई या की गई क्षमा कभी क्रोध से भी ज्यादा घातक हो सकती है।

महानुभाव!

इसलिए हमें सबसे पहले उस विभाव को दूर करना है, उस गन्दगी को दूर करना है जिस गन्दगी के माध्यम से हमारी स्वच्छता भी गन्दी हो जाती है वह गन्दगी है, पहली गन्दगी ''क्रोध''। क्रोध को दूर किये बिना अन्य कषायों को दूर करना असम्भव है इसलिए

सबसे पहले क्रोध को दूर किया जाता है और प्राय: करके लोग क्रोध को ही बहुत मोटी कषाय मानते हैं। क्योंकि **क्रोध ही एक ऐसा अग्नि का गोला है जो कि स्वयं को भी जलाता है** और दूसरों को भी जलाता है। अग्नि का गोला फिर भी हो सकता है कि आप सावधानी से फेंकें तो न जल पायें, दूसरा जल जाये किन्तु क्रोध का गोला ऐसा है जो फेंकता है उसे पहले जलाकर भस्म करता है, दूसरा जल पाये या न जल पाये। क्रोध के माध्यम से पहले उस व्यक्ति का अहित हो जाता है जिसने क्रोध किया है, उसका अहित हो गया, उसने अपने गुणों को नष्ट कर दिया इसलिए आचार्यों ने क्रोध को सर्वभक्षी अग्नि कहा है। सम्पूर्ण गुणों को भक्षण करने वाली कोई अग्नि है तो वह क्रोध है। नीतिकारों ने क्रोध को चाण्डाल की उपमा दी है। क्रोध जब आ जाता है तब यह सब तहस-नहस कर देता है। जैसे किसी भरे-पूरे नगर में, किसी उद्यान में यदि आग लग जाए तो सब तहस-नहस हो जाता है, सब ध्वस्त हो जाता है, सब जल जाता है उसी प्रकार क्रोध के आते ही समस्त गुण नष्ट हो जाते हैं। यदि कोई व्यक्ति क्रोध में आपे के बाहार हो जाता है और भले की माता-पिता की कितनी भी सेवा करता हो, रोज पैर छूता हो, रोज शाम को वैय्यावृत्ति करता हो, सम्पूर्ण आज्ञा मानता हो, बड़ा सरल स्वभावी है, कम बोलता है, सत्य बोलता है, सब कुछ अच्छाई उसके अंदर हैं, रोज पूजा करता है, स्वाध्याय करता है, घर के सब काम करता है लेकिन चंद क्षणों के लिए क्रोध कर लेता है और क्रोध में आपे के बाहर होकर अपने माता-पिता के लिए अपशब्दों का प्रयोग करता है, अपने भाई-बहिनों पर हाथ उठाता है तो **उसका क्षण भर का क्रोध उसकी समस्त साधना को ध्वस्त कर देता है** और आप लोग जानते भी होंगे जो व्यक्ति घर में क्रोधी होता है प्राय: घर के लोग

सर्वोदयी चिन्तन

उनसे क्षमा माँगना अनिवार्य नहीं जिनसे हमारी गहन मित्रता है, अपितु उनसे क्षमा माँगना अनिवार्य है, जिनके प्रति हमारी शत्रुता है या जो हमसे शत्रुता रखते हैं।

उससे दूर रहना चाहते हैं। भैया! ये क्रोधी हैं इनका कोई विश्वास नहीं, कोई भरोसा नहीं, न जाने कब ये बदल जायें। अभी ये Normal हैं न जाने कब लाल-पीले जो जायें इनसे दूर रहो, सावधान रहो। तो क्रोधी व्यक्ति जितनी भी साधना करता है, उसे अपनी क्रोधरूपी अग्नि में ध्वस्त कर देता है, इसलिए क्रोध को ''सर्वभक्षी अग्नि'' कहा गया है।

महानुभाव!

सर्वोदयी चिन्तन

पत्रों से, टेलीफोन से या समाचार पत्रों व पत्रिकाओं के माध्यम से या स्वयं पास जाकर हाथ से हाथ मिलाकर ही नहीं अपितु हृदय से हृदय मिलाकर क्षमा माँगो व क्षमा दान दो।

हमें पहले क्रोध को जीतना है। क्रोध पर विजय प्राप्त करना है लोग कहते हैं-''महाराज ही! जब क्रोध आता है तो हमें होश नहीं रहता, हम क्रोध को कैसे जीतें? क्रोध पर कैसे नियंत्रण करें? यह सत्य बात है क्रोध हानिकारक है, हम जानते हैं क्रोध हानिकारक है किन्तु फिर भी क्रोध आ जाता है। यदि क्रोध के आने के बाहर के कोई दरवाजे होते तो हम ताला डाल देते, एक नहीं अड़तालीस ताले डाल देते किन्तु वह तो अंदर से ही पैदा होता है, बाहर से नहीं आता। अब अंदर से ताले कैसे डाले जायें? अन्दर से ताले डालने का आशय है ''सावधान रहना'' बिल्कुल सावधान रहना, बेहोशी में नहीं जाना। **यदि तुम बेहोश हुए, क्रोध आयेगा, यदि होश में रहोगे तो क्रोध नहीं आ सकता।** क्रोध को जीतने के लिए कुछ संकेत करते हैं पुनः क्षमा पर चर्चा करेंगें। क्रोध को कैसे जीता जाये, ये आपकी जीवन सम्बन्धी बातें हैं। क्षमा को आप कितना ग्रहण कर पायेंगे ये बाद की बात है। पहले क्रोध को जीतने के उपाय बताते हैं क्योंकि पल-पल आपको क्रोध आता है, नरक में सबसे ज्यादा क्रोध कषाय ही पायी जाती है, इतनी क्रोध कषाय और कहीं नहीं पायी जाती है, इसलिए **जो मनुष्य अत्यंत क्रोधी है, चण्ड स्वभाव का है, बैर**

को नहीं छोड़ने वाला है, वह क्रोधी व्यक्ति नरक आयु का बंधक होता है या तो नरक से निकलकर के आया है अथवा उसे नरक में जाना है, इसलिए उस क्रोध को जीतना है। क्रोध से कैसे बचें? कभी-कभी लोग कहते हैं, महाराज जी! हमारे अन्दर तो क्रोध बिल्कुल है ही नहीं, अब वे आ गये क्रोध देने वाले अब हम क्या करें, जब वे आ गये तो उसने तमाचा लगा दिया, हमसे बुरा-भला कह दिया तो फिर उसने हमें क्रोध दे दिया, उन्होंने हमें क्रोध दिलाया है, हमारे पास थोड़े ही क्रोध था। वाह! अच्छा मार्ग खोजा तुमने बचने का। तुम्हारे पास क्रोध नहीं था तो तुम्हारे पास कहाँ से आ गया? यदि कोई कुआँ सूखा पड़ा हुआ है उस सूखे कुएँ में तुम बाल्टी डालो, सूखे कुएँ में तुम केन डालो, ड्रम भी डाल दो भरेगा नहीं, सूखा पड़ा हुआ है उसी प्रकार तुम्हारा यदि क्रोध का कुआँ सूखा है और किसी की बाल्टी यदि तुम्हारे कुएँ में आ गई तो उसमें क्रोध की बाल्टी खाली रह जाएगी, क्रोध नहीं आ पायेगा क्योंकि तुम्हारा कुआँ सूखा पड़ा हुआ है परंतु तुम्हारा क्रोध का कुआँ सूखा नहीं है, तुम्हारा क्रोध का कुआँ ढका हुआ है, उस पर तुमने कुछ ढक दिया है और जब कोई निमित्त बनता है पुन: ज्यों की त्यों तुममें क्रोध की अग्नि प्रज्ज्वलित हो जाती है। क्रोध की अग्नि को बुझाया नहीं है, बुझा लिया जाता तो क्रोध की अग्नि न तुम्हें जलाती न दूसरे को जलाती, किन्तु तुम क्रोध की अग्नि को क्षण भर के लिए ढाँक लेते हो इसलिए दूसरा निमित्त बनता है। महाराज जी! हम तो क्रोध करना नहीं चाहते किन्तु सामने वाला कहता ही चला जाए; कहता ही चला जाए, कब तक शान्ति से सुनते जायें। भैया! अपने चूल्हे को ढाँका जाता है। पहले ग्रामीण लोग अपने चूल्हे से रोटी बनाते थे। जब हवा चलती है तो हवा को नहीं रोक सकते, तूफान को नहीं रोक सकते, क्या करते हैं? चूल्हे

> **सर्वोदयी चिन्तन**
>
> जिनके क्षमावीणी कार्ड आपके पास आये, आपने उनके पास कार्ड आदि भेजकर क्षमावाणी पर्व मनाने की यदि पूर्णता समझ ली है तो अभी आप अज्ञानता में जी रहे हैं।

सर्वोदयी चिन्तन

जिस पुण्य पुरुष के पास क्षमा रूपी चिन्तामणि विद्यमान है, ऐसा पुरुष देवेन्द्रों के समूह द्वारा भी अर्चनीय होता है। तीन लोक की विभूति उसके चरणों में वास करने हेतु लालायित रहती है।

को ढाँकते हैं। हमें तो अपना चूल्हा ढाँकना है, हम हवा को कैसे रोक सकते हैं? सामने वाला क्रोध दिलायेगा, खूब दिलायेगा, यही परीक्षा की घड़ी है ताकि तुम कितना क्रोध को जीत सकते हो, सामने वाला कितना भी क्रोध करे किन्तु तुम्हें बिल्कुल क्रोध नहीं करना है तभी तो तुम्हारी विशेषता है।

दृष्टांत–एक अतिथि मेजबान के यहाँ मेहमान बनकर के आये किन्तु वे काले कपड़े पहन करके आये, उनसे पूछा गया कि काले कपड़े पहनकर के क्यों आये हैं? उन्होंने कहा– मैं अभी शोकाकुल हूँ इसलिए काले कपड़े पहन करके आया हूँ। क्यों? क्या बात हो गई तुम्हें किस बात का शोक है? क्या हो गया? बात ये है मेरे यहाँ मृत्यु हो गई? है। किसकी मृत्यु हो गई है? माता-पिता की मृत्यु हो गई या किसी और की मृत्यु हो गई? मेरे अंदर क्रोध की मृत्यु हो गई है। क्रोध की मृत्यु हो जाने से मैंने ये काले वस्त्र धारण कर लिए हैं। अच्छा तो जिसके यहाँ मेहमान बनके गया था उसने उसको फटकार दिया चलो भागो यहाँ से, हमारे यहाँ तुम्हारे लिए स्थान नहीं है काले कपड़े पहनकर के आ गये। वह बेचारा लौट गया धीमे से। पुनः उसने उस व्यक्ति को बुला लिया, चलो आ जाओ खैर कोई बात नहीं, जैसे ही पुनः लौट करके आया पुनः डाँटा, वह वहाँ से चला गया, फिर लौट करके आया, फिर फटकार दिया, बड़े बेशर्म हो तुम। खैर कोई बात नहीं, आ जाओ। फिर लौटकर वह मेहमान आ गया। पुनः बुरी-बुरी गालियों का प्रयोग किया फिर फटकार दिया बेचारा फिर चला गया चौथी बार फिर दुबारा बुला फिर लौट कर आ गया। इस प्रकार उसका सत्तर बार अपमान किया। सत्तर बार अपमान करने के उपरांत पुनः इकहत्तरवीं बार पुनः उसे बुला लिया और उसे

आसन पर बिठा दिया और उसका सम्मान किया, पूजा करने लगा और प्रशंसा करने लगा तो वह हाथ जोड़कर खड़ा हो जाता है कि आप मेरी प्रशंसा मत करो नहीं तो अभी मान आ जायेगा, मेरा क्रोध मर गया है कोई बड़ा काम थोड़े ही किया। जब वह बोला मैंने तुम्हारा सत्तर बार अपान किया तुम्हारे अन्दर क्रोध नहीं आया, तब बोले आता कैसे? मर ही चुका है और मुर्दे कहीं जिन्दा थोड़े ही होते हैं, अपमान सत्तर बार करो या सात सौ बार करो।

कभी-कभी लोग कहते हैं महाराज जी! हम कब तक सहन करें? जब सिर पर आ जाती है तो रहा नहीं जाता, कहाँ तक सहन करें? सामने वाला खूब परेशान करता है तब फिर तो क्रोध आयेगा ही फिर दृष्टांत देने के लिए कह भी दिया जाता है-

''अतिशय रगड़ करे जो कोई, अनल प्रकट चंदन सो होई''

चंदन की लकड़ी बहुत शीतल होती है किन्तु चंदन की लकड़ी को भी घिसें खूब घिसें तो उसमें भी अग्नि पैदा हो जाती है तो लोग कहते हैं महाराज जी कहाँ तक हम धैर्य धारण करें।

सर्वोदयी चिन्तन

क्रोध के आवेश में या मान की पुष्टि के लिए या मायाचारी युक्त परिणामों के साथ या किसी प्रकार के लोभ, लालच में आकर किया गया क्षमा शब्द का प्रयोग क्षमा धर्म नहीं अपितु उसके विपरीत ही है।

क्या आपके कहने का आशय यह है सहन करने की भी कोई सीमा है? नहीं, कोई सीमा नहीं है, सहन शक्ति आपकी आत्मा में असीम है, अनंत है उसका कोई ओर-छोर नहीं है इसलिए क्रोध नहीं करना चाहिए क्योंकि क्रोध में व्यक्ति पागल हो जाता है और कभी-कभी तो अनावश्यक क्रोध कर लिया जाता है बिना प्रयोजन का क्रोध। बिना प्रयोजन का क्रोध कैसे किया जाता है? देखिए उदाहरण के द्वारा बताते हैं-

दृष्टांत–पति-पत्नी में झगड़ा हो रहा था, एक महाशय के द्वारा पूछा गया क्यों झगड़ रहे हो? बहुत दूर-दूर तक आवाज जा रही थी। नहीं, मैं डॉक्टर बनाऊँगी, नहीं, मैं वकील बनाऊँगा और झगड़ा हो रहा है। बाहर वाले लोगों ने सुना बात क्या है? आखिर में किसी ने बताया कुछ नहीं इतनी सी बात है। यह कहती है कि मैं अपने लड़के को डॉक्टर बनाऊँगी, मैं बीमार रहती हूँ तुम मुझे डॉक्टर के पास नहीं ले जाते। यदि मेरा लड़का डॉक्टर बन जाएगा तो कम से कम मेरी सेवा तो करेगा, उचित औषधि मुझे देता रहेगा और उसका पति कहता है नहीं, मेरे बहुत सारे केस पड़े हुए हैं मैं वकील को पैसे देते-देते परेशान हो गया, मैं वकील बनाऊँगा जिससे वह मेरे केसों को निपटा देगा। ये कहती है डॉक्टर बनाऊँगी, मैं कहता हूँ वकील बनाऊँगा इसी बात का झगड़ा है। सामने वालों ने कहा झगड़ते क्यों हो? इतनी छोटी सी बात तुम्हें शोभा नहीं देती, तुम आपस में झगड़ रहे हो, इसका निपटारा कर लो। निपटारा तो तुम कर दो क्या करना है? वह पति सोच रहा था पति की बात मानी जायेगी, वह पत्नी सोच रही थी मैं अबला हूँ इसलिए मेरी बात स्वीकार कर ली जाएगी किन्तु उस निर्णय देने वाले ने कुछ और ही निर्णय दिया। उसने कहा जिसे तुम वकील या डॉक्टर बनाना चाहते हो थोड़ा एक बार उसकी राय भी ले ली जाए आखिर में वह क्या बनना चाहता है? वकील बनना चाहता है या डॉक्टर बनना चाहता है। दोनों शर्मा गए और बोले उसका तो अभी जन्म ही नहीं हुआ है, राय किससे लेंगे? अभी बात का जन्म तो हुआ ही नहीं, उसने कहा संसार में तुमसे बड़ा मूर्ख और कोई नहीं मिलेगा। जब उसका जन्म ही नहीं हुआ तो पहले से ही लड़ाई क्यों कर रहे हो? जब जन्म हो जाता, तब भी लड़ना सार्थक था।

दृष्टांत–''ऐसे ही दो किसानों में झगड़ा हो गया था और एक किसान ने कहा–देखो! सावधान रहना, मेरे खेत के बाजू में ही तेरा खेत है और तेरी भैंस चरते-चरते कभी-कभी मेरे खेत में भी आ

जाती है। अभी तो सामान्य फसल खड़ी थी अब मैं अपने खेत में ईख बोऊँगा, अपने खेत में मैं ककड़ी, खरबूजे, तरबूज के बीज बोऊँगा या और भी अच्छी फसल बोऊँगा, तेरी भैंस यदि मेरे खेत में आयी तो समझ लेना। उसने कहा–क्या समझ लेना? तू क्या करेगा? बोले–करेगा क्या? तुझे बता दूँगा, क्या करूँगा। बोला–क्या करेगा? अगर भैंस भूल से आ गयी तो मैं क्या कर सकता हूँ? भैंस तो भैंस है, पशु है और कोई मनुष्य थोड़े ही है। भैंस तो रस्सी तोड़कर के भागकर के आ सकती है। बोला– आ जायेगी तो तुझे मजा चखाऊँगा। बोला– ले मेरी भैंस आयी, बो तू अपनी ईख। तो उसने (जहाँ वो दोनों आमने-सामने बैठे थे एक लकड़ी ली उसने लकड़ी से चार लाइन खींच दी) कहा– लो ये मेरा खेत हो गया, मैंने ईख बो दी, मैंने अपनी सब्जी बो दी। तब दूसरे ने एक सेंध (छोटा सा फल) उठायी, चार लकड़ी लगायी, चार पैर बना करके कहा– ले यह मेरी भैंस बन गई। प्रथम किसान ने कहा मैंने अपना खेत बना दिया, अब तेरी भैंस को आने दे। उसने सेंध उठाकर रख दी बोला– ये आ गई भैंस। उसने गाल पर तमाचा लगा दिया, बोला– मेरे खेत में भैंस कैसे आयी? उसके एक तमाचा लगाया, उसने दूसरा लगा दिया, रस्सा तोड़कर आ गयी, मैं क्या करूँ? अब बात इतनी बढ़ गयी कि जब तमाचे से काम नहीं चला तो लाठियाँ चलने लगीं, लाठियों में दोनों घायल हो गये। रिपोर्ट की गई। बाद में रिपोर्ट लिखने के उपरांत पूछा गया कि आप में इतना झगड़ा क्यों हुआ? किस बात से झगड़ा हुआ, खोज करने के उपरांत पाया गया, ये चर्चा चल रही थी। संसार में ये भी बहुत बड़े मूर्ख ही कहलायेंगे कि जो खेत में ईख बोई नहीं, उसकी भैंस अभी आयी नहीं। वह भी नई भैंस लेने जा रहा था, पहली भैंस बेच दी थी। इसने भी अभी ईख नहीं बोयी, झगड़ा पहले से हो गया। दोनों आपस में निपट गये चाहे घायल हुए या मर गए बात वही हो गयी–**''सूत न कपास, जुलाहे से लट्ठम-लट्ठा।''**

सर्वोदयी चिन्तन

क्षमा वही पुण्य पुरुष माँग सकता है जो गुणों से अपने सामने वाले से श्रेष्ठ है, क्योंकि क्षुद्र प्रकृति वाले क्षमा नहीं माँग सकते।

अभी सूत कपास कुछ है ही नहीं, झगड़ा वैसे ही हो गया। महानुभाव! कभी-कभी ऐसा भी क्रोध आ जाता है जो निष्प्रयोजन क्रोध कहलाता है। इस क्रोध में कोई प्रयोजन तो नहीं है और कोई क्रोध करने की बात भी नहीं है, फिर भी क्रोध आ जाता है। कभी-कभी क्रोध ऐसा आ जाता है कि सामान्य गलती को छिपाने के लिए क्रोध कर दिया, कोई नुकसान हो गया, किसी से अल्पज्ञतावश, अज्ञानतावश या कषायवश कोई अपराध हो गया किन्तु क्रोध में तुमने बहुत बड़ा अपराध कर लिया। कैसे अपराध कर दिया, माना कि

दृष्टांत - ''एक व्यक्ति बैंक से रुपये लेकर आया था। उसके पास 50,000 रुपये की एक गड्डी थी, 500-500 के सौ नोट। अब हुआ क्या? गड्डी वह एक बाल सखा के हाथ से दूसरे बाल सखा के हाथ आ गयी। बालक तो बालक हैं, कुछ जानते तो हैं नहीं, अब हुआ क्या गड्डी लेकर वह खेलने लगा। खेलते-खेलते वह चूल्हे के पास पहुँच गया। संयोग से रुपयों की गड्डी उसके हाथ से चूल्हे में गिर पड़ी और वह पचास हजार रुपये की गड्डी चूल्हे में जल गई। उस बालक की माँ आई और उसने देखा पचास हजार रुपये बालक ने जला दिये हैं, उसको इतना गुस्सा आया कि उसने आव देखा न ताव देखा, बालक के दोनों पैर पकड़े और उसको पछाड़ दिया, बालक छोटा था उसका प्राणांत हो गया। संयोग की बात तत्काल ही उस स्त्री का पति आया। उसने स्त्री को रोते और बालक को मरा हुआ देखा, पुनः पूछा तो पाया पचास हजार रुपये की गड्डी जला दी थी, इसलिए ऐसा हो गया। उसको भी बड़ा गुस्सा आया और उसने भी तलवार लेकर के स्त्री पर वार कर दिया कि तुमने मेरे इकलौते बेटे को क्यों मार दिया, स्त्री भी मर गई। तुरंत किसी ने रिपोर्ट कर दी पुलिस आयी उस व्यक्ति को पकड़ लिया और थाने

ले जाया गया पुनः उसको दस साल के कारावास की सजा सुनायी गई। उसे भी इतना दुःख हुआ मेरा सब घर बर्बाद हो गया। उसने भी जेल में जा करके किसी प्रकार से जैसे-तैसे रात्रि में आत्महत्या कर ली। सब बर्बाद हो गये।'' कहने का आशय यह है कि जब क्रोध आया तब यदि कहीं थोड़ी सी समता धारण कर लेते, क्षमा का पाठ सीख लेते तो मुझे लगता है उसका घर बर्बाद नहीं होता।

महानुभाव!

''क्रोध ऐसा होता है जब आता है तब आँखों पर पहले पट्टी बाँध देता है; जब आता है तब पहले आपके मन को अज्ञानता से रंग देता है, जब आता है तो अंदर अशांति रूपी अपने दूतों को भेज देता है जो अलग-अलग नाके पर खड़े हो जाते हैं और अपना कार्य करना प्रारम्भ कर देते हैं।'' महानुभाव! क्रोध एक ऐसा भूत है जिस पर भी एक बार सवार हो तो पुनः सहजता से नहीं उतरता है।

सर्वोदयी चिन्तन

क्षमा माँगना तो अपनेआप में श्रेष्ठ है ही, किन्तु इससे भी अधिक श्रेष्ठ है, निश्छल भाव से क्षमा प्रदान करना।

दृष्टांत :- ''दो भाईयों में बहुत ज्यादा प्रेम था। किसी कारण दोनों भाईयों में खटपट हो गई, खटपट छोटी सी बात पर हो गई। इतनी सी बात कि बड़ा भाई जब घर आया तो कुछ फल लेकर के आया। दो फल उसके हाथ में थे या लड्डू उसके हाथ में थे। छोटे भाई का बालक भी सामने खेल रहा है, बड़े भाई का बालक भी सामने खेल रहा है। दोनों खेलते-खेलते आये पापा-पापा, ताऊ-ताऊ कहते हुए सामने आये, उसके हाथ में फल या लड्डू थे उसने बालकों के लिए दिए। एक तरफ उसका स्वयं का बालक था और दूसरी तरफ उसके भईया का लड़का था। हुआ ये इस हाथ में लड्डू था थोड़ा छोटा था, इस हाथ का लड्डू थोड़ा बड़ा था। उसने लड्डू दिया तो उसे ऐसे करके लड्डू दिया, कैंची बनाकर के बड़ा लड्डू

अपने पुत्र के पास, छोटा लड्डू भाई के लड़के के पास। ये दृश्य छोटे भाई ने देख लिया कुछ नहीं कहा। आया भैया के पास। भैया से बोला–हमें न्यारा होना है। भैया बोले–क्यों क्या हो गया? बात और कुछ नहीं है बात ये है तुम्हारे मन में, परिणामों में कुछ अंतर आ गया है इसलिए हमें न्यारा होना है, वे न्यारे हो गये। न्यारे होने के उपरान्त बड़े भाई को लगा मुझसे गलती तो हो गई, किन्तु बड़े ही वे क्या जो गलती स्वीकार कर लें? क्योंकि गलती स्वीकार तो छोटे करते हैं। बड़े थोड़े ही करते हैं बड़े तो गलती करने पर भी ये कहते हैं हमने थोड़े ही गलती की है तुमने गलती की, तुमने मेरी गलती बताई क्यों? बड़े तो गलती करने के उपरान्त भी यही कहते हैं मेरी गलती है ही कहाँ, तुमने मेरी गलती देखी यह तुमने एक अपराध किया है? इसका प्रायश्चित लो, मेरी गलती देखने का तुम्हें कोई अधिकार नहीं है, ठीक है। छोटे भाई को भी क्रोध आया, उसने भी कुछ खरी-खोटी सुना दी। छोटे भाई तो न्यारे हो गये। अब दोनों में इतनी कषाय उमड़ी कि एक ने कहा मैंने तेरे लिए इतना किया है कि कोई तेरे लिए कर नहीं सकता। छोटे भाई कहता है मैंने भी तेरी सेवा नौकर के समान बनकर की है, बहुत सेवा की है और तूने मेरे लिए क्या किया? उसके उपरान्त इतना बैर बढ़ा कि एक-दूसरे को मारने के लिए तैयार हो गए। मौका देखने लगे कब मौका मिले और एक-दूसरे को मार दें। छोटे भाई का दाव लग गया। रात्रि में बड़े भाई के पास जाता है, बड़ा भाई चद्दर तान के छत पर सो रहा था। छोटा भाई धीमे से गया अपनी तलवार लेकर बड़े भाई का गला काट दिया। गला तो कट गया अब उसके उपरांत वह गला काट करके वहीं गिर पड़ता है। छोटा भाई स्वयं गिर पड़ा अब बड़े भाई का गला कटा तो चादर थोड़ा खिसक गया। उसने बड़े भाई का मुँह देखा तो उसका भ्रातृत्व प्रेम उमड़ आया, विलाप करने लगा वहीं रोने लगा, भीड़ इकट्ठी हो गई क्या बात है? क्या हो गया? पूछा गया उसने स्वयं कह दिया मैंने अपने बड़े भाई का कत्ल किया है, मैं हत्यारा

हूँ। पुलिस आयी तो पुलिस से भी कह दिया, मैंने बड़े भाई का कत्ल किया है। मुझ जैसा हत्यारा और कोई नहीं होगा उसे गिरफ्तार कर लिया गया और बाद में उसे सजा भी दी गई। कहने का आशय यह है– इतनी बड़ी कटुता इतना बड़ा बैर छोटी सी बात पर हो गया।

क्रोध को जीतने के उपाय

महानुभाव!

थोड़ा सा भी गम खायें, अगर व्यक्ति में थोड़ी सी भी सहनशीलता आ जाये तो मुझे लगता है कम से कम नब्बे प्रतिशत अनिष्टों को टाला जा सकता है। थोड़ी सी बात बहुत बड़ा हंगामा पैदा कर देती है। **जो व्यक्ति कम खाता है और गम खाता है वह व्यक्ति जीवन में बहुत सुखी रहता है।** महानुभाव! क्रोध को जीतने के चार उपाय हो सकते हैं–

पहला उपाय है, क्रोध जो तुम्हें आ रहा है तो उस द्रव्य में परिवर्तन किया जाये, जहाँ तुम्हें क्रोध आ रहा है जिस व्यक्ति के सामने खड़े होकर क्रोध आ रहा है, जिससे चर्चा करने पर क्रोध आ रहा है उस व्यक्ति से कह दीजिए भैया ''मैं तुम्हारे से चर्चा अभी नहीं करूँगा क्योंकि मुझे अभी क्रोध आ रहा है, देखो! अभी गुस्से में मेरे द्वारा तुम्हारे प्रति कहीं अपशब्द निकल सकते हैं इसलिए मैं तुमसे अभी वार्ता नहीं करूँगा और तुम्हें कोई बात करनी भी है तो अपने पापा जी को भेज देना मैं उनसे चर्चा कर लूँगा या हम तुम्हारे लड़के से चर्चा कर लेंगे, तुम्हारे भैया से चर्चा कर लेंगे, तुमसे चर्चा करते समय मुझे क्रोध आ रहा है। इसलिए तुम चले जाओ यहाँ से। इस प्रकार द्रव्य परिवर्तन कर लेना चाहिए। यदि वह व्यक्ति कहे नहीं चर्चा मैं तुमसे ही करूँगा, चाहे क्रोध आये

सर्वोदयी चिन्तन

यदि तुम नग्न दिगम्बर दीक्षा लेकर साधना नहीं कर सकते तथा नित्य ही तपस्वी जनों को आहार (भोजन) नहीं दे सकते, तब भी तुम्हारा कल्याण एक निश्छल क्षमा से हो सकता है।

सर्वोदयी चिन्तन

क्रोधोत्पत्ति के कारणों का त्याग किये बिना क्षमा का बीज अंकुरित करने का भाव उसी तरह है ज्यों खेत में बीज बोकर पत्थर की शिला से ढाँक देना।

चाहे कुछ भी आये, क्रोध कैसे आ रहा है? जब मेरे पास तुम रुपये लेने के लिए गए थे तब मैंने तुम्हें रुपये दिए थे। आज वापस करने के लिए क्रोध आ रहा है। नहीं! आपको कुछ कहना पड़ेगा, क्या कहते हो? चलो भैया! ठीक है, तुम्हें चर्चा मुझसे ही करनी है, कोई बात नहीं, चलो यहाँ नहीं, कहीं मंदिर में जाकर चर्चा करेंगे या और भी कहीं पुण्य क्षेत्र में जाकर चर्चा करेंगे या कहीं अन्यत्र चर्चा करेंगे, पंचायत के बीच में चर्चा करेंगे जहाँ पर हमारा क्रोध थम जाये, हमारे परिणाम कुछ विशुद्ध हों, जिस संगति में जाकर के हम आपे के बाहर न हो पायें तो क्षेत्र को परिवर्तन कर देना चाहिए और यदि क्षेत्र भी परिवर्तन न हो तो पुनः काल का परिवर्तन कर देना चाहिए। भैया ठीक है यदि तुम्हें चर्चा करनी है तो चलो चर्चा चाय के बाद करेंगे, पहले चाय पी लें, नाश्ता कर लें फिर चर्चा करेंगे। नहीं तो अब हमें देर हो रही है, चर्चा शाम को करेंगे या सवेरे चर्चा करेंगे। ऐसे टालने से भी क्रोध टल जाता है। कभी-कभी तीव्र क्रोध आता है बाद में टाल दो क्रोध ठंडा पड़ जाता है।

दृष्टांत :- ''किसी एक मित्र के पास दूसरे मित्र का इतना बुरा पत्र आया कि उसमें इतनी शिकायतें लिखी थीं, इतने तीखे कटु शब्दों का प्रयोग किया था कि वह मित्र पत्र को पढ़कर के आग बबूला हो गया। उसने भी उसी आवेश में क्रोध में पत्र लिखा, इतना भद्दा पत्र लिखा कि जीवन में कभी कल्पना नहीं कर सकते किन्तु किसी महात्मा के पास गया। महात्मा ने कहा-उस पत्र को अभी डालना नहीं, एक सप्ताह बाद डालना। ठीक है।

एक सप्ताह बाद जब डालने के लिए गया तो महात्मा ने कहा कि पत्र जो तुमने लिख लिया है उसे एक बार पढ़ लो। जब उसने

वह पत्र पढ़ा तब तक व्यक्ति नॉरमल हो चुका था। उसने कहा–धिक्कार है मेरे लिए मैं कैसे शब्दों का प्रयोग कर रहा हूँ अपने मित्र के प्रति, मुझे गलती नहीं करनी चाहिए। कहने का आशय यह है कि काल को परिवर्तित करने पर भी क्रोध परिवर्तित हो जाता है। क्रोध के परिणामों में अंतर आ जाता है। इसके उपरांत अपने परिणामों को परिवर्तित कर लें, परिणामों को परिवर्तित करने के उपरांत भी क्रोध के परिणाम परिवर्तित हो जाते हैं। अपने परिणामों को हम स्वयं रोक सकते हैं। क्रोध आ रहा है, हम भगवान् का ध्यान करना प्रारम्भ कर दें, भाव सहित भगवान के दर्शन, पूजन करना प्रारम्भ कर दें, जहाँ पर बैठे या खड़े हैं वहीं से, अपने आप क्रोध के परिणाम तुम्हारे उपशमित हो जायेंगे, परिवर्तित हो जायेंगे अथवा क्रोध के समय अपने उपयोग को परिवर्तित करने के लिए उस समय तुमसे कुछ भी न आये तो उल्टी गिनती पढ़न प्रारम्भ कर दो, क्रोध के समय उल्टा ''णमोकार मंत्र'' पढ़ना प्रारम्भ कर दो, मुझे लगता है क्रोध तुम्हारा शमित हो जायेगा क्योंकि मन तुमने उसमें लगा दिया है। जब-जब भी क्रोध आये तो आप दर्पण के सामने जाकर के अपना चेहरा एक बार देख लिया करो कि इस समय मैं कैसा लग रहा हूँ क्रोध में, फिर उस समय कहना देखो मुझ पर भूत सवार हो गया और भूत आ गया मैं नहीं रहा, क्रोध आ गया और मैं मर गया हूँ। क्रोध मेरे ऊपर हावी हो गया है, ये आपको ख्याल आ जायेगा तो क्रोध भाग जायेगा। अगला उपाय है क्रोध को जीतने का, जब भी क्रोध आये आप दर्पण के सामने जा करके मात्र पाँच बार मुस्कुरा दीजिए, पहली बार में तुम्हारा क्रोध लगभग पचास प्रतिशत भाग जायेगा, दूसरी बार बीस प्रतिशत, तीसरी बार दस प्रतिशत पुनः धीमे-धीमे पूरा क्रोध चला जायेगा पाँच बार में। क्रोध को जीतने का अगला उपाय है–जब भी क्रोध आये

सर्वोदयी चिन्तन

क्षमा प्रदान करना कोई अहसान नहीं, अपितु आत्म विशुद्धि का एक साधन है।

सर्वोदयी चिन्तन

तराजू का जो पलड़ा भारी होता है, वही झुकता है, इसी प्रकार जो जितना अधिक विशाल व्यक्तित्व का धनी होगा वह उतना ही अधिक क्षमाशील होगा।

तो कस के अपनी मुट्ठी बाँधें और खोलें, शक्ति आपकी आपे के बाहर हो रही है वह शक्ति बर्बाद हो जायेगी, क्रोध आपका शमित हो जायेगा। अगला उपाय क्रोध को जीतने के लिए है–जब आपको क्रोध आ रहा हो और तुम्हारे हाथ में कोई हथियार हो तो पहले उस हथियार को दूर कर दो, तुम्हारा क्रोध आधा रहा जायेगा। यदि तुम खड़े हो तो बैठ जाओ, क्रोध आपका और कम हो जायेगा, बैठे हो तो आराम से लेट जाओ, तुम्हारा क्रोध और कम हो जायेगा। पुनः आँखें बंद कर लो तो क्रोध और कम हो जायेगा क्योंकि जब क्रोध आता है तब आँखें स्वतः खुल जाती हैं, जब क्रोध आता है तो लेटा हुआ व्यक्ति बीमार भी होगा तो उठकर बैठ जायेगा, जब क्रोध आता है तो बैठ हुआ भी खड़ा हो जायेगा। जब क्रोध आता है तब न तो हाथ बँधते हैं, न आँख बंद होती है, न मुँह बंद होता है तो पुनः क्या करें? जब क्रोध आये तो खड़े होने से क्रोध बढ़ जाता है। यदि क्रोध में खड़े हो गए तो और बढ़ गया और हाथ में यदि कोई अस्त्र-शस्त्र आ गया तो क्रोध और बढ़ गया अतः उल्टे चलें, यदि अस्त्र-शस्त्र हैं तो उन्हें फेंक दें। अगला उपाय क्रोध को जीतने के लिए है–जब क्रोध आये उस समय जितनी तुम्हें प्यास लगी हो या न लगी हो उससे कुछ ज्यादा पानी पी लें। यदि एक गिलास पानी पी सकते हैं तो क्रोध में दो गिलास पानी पी लें, तीन गिलास पानी पी लें, खूब पानी पी लें, जब टंकी आपकी भर जायेगी लबालब हो जायेगी तो तुम क्रोध नहीं कर सकोगे इसलिए जब खूब ज्यादा क्रोध आये, तो खूब ज्यादा पानी पी लीजिए तो क्रोध आपका शमित हो जायेगा। यह भी क्रोध को जीतने का उपाय हो सकता है।

महानुभाव!

इत्यादि प्रकारों से क्रोध को जीता जाता है। प्रायः करके आये दिन भाई-भाई में, माता-पिता का अपने पुत्रों के प्रति, पुत्रों का अपने माता-पिता के प्रति या पति-पत्नी में या बहन-भाई में, सास-बहू में, ननद-भाभी में, माँ-बेटे में, बाप-बेटे में, देवरानी-जेठानी में या दामाद-ससुर में इत्यादि प्रकार से नोंक-झोंक हो जाती है। क्रोध आ जाता है और बढ़ता जाता है, रुक नहीं पाता इत्यादि। क्रोध को जीतने के उपाय जीवन में स्वीकार करेंगे तो आप क्रोध को बहुत कुछ जीत सकते हैं। कभी-कभी क्रोध आकर के आपके ऊपर हावी हो जाता है, जब क्रोध के ऊपर तुम हावी हो जाओगे तो क्रोध बहुत जल्दी भाग जायेगा। महानुभाव! क्षमा की प्राप्ति क्रोध को जीतने के बाद ही होती है, तो क्षमा क्रोध को जीतकर ग्रहण करना है और क्षमा के बाद कह दिया पुनः ''उत्तम क्षमा''। उत्तम क्षमा का आशय होता है-

''सत्यपि सामर्थ्ये अपकार सहनं,
सः क्षमाया उत्तम क्षमा''
''दुष्ट जनाक्रोश प्रहसनावज्ञा-ताड़ न शरीर,
व्यपादनादीनां सन्निधाने कालुस्यानुत्पत्ति क्षमाः॥''

यानि कोई आपका अपकार कर रहा है उसका बदला तुम ले सकते हो, शक्ति होने पर भी सहन कर लेना क्षमा कहलाती है। परिणामों में कोई अन्तर नहीं आये ये क्षमा कहलाती है। ज्यों के त्यों सामान्य परिणाम बने रहें, क्योंकि जो ज्ञानी पुरुष होता है वह अपने स्वभाव को छोड़ता नहीं है, अज्ञानी पुरुष होता है वह स्वभाव को छोड़ देता है, जैसे **दृष्टांत :-** ''एक महात्मा नदी में स्नान करने के लिए गए उन्होंने देखा एक बिच्छु बहता हुआ चला जा रहा है और उन्हें दया आ गयी। उन्होंने बिच्छु को हाथ में लिया। हाथ पर जैसे ही बिच्छु को लिया बिच्छु ने डंक मार दिया और जैसे ही डंक बिच्छु ने मारा उनका हाथ हिल गया बिच्छु नीचे गिर गया और पुनः

बिच्छु बहता हुआ दिखाई दिया। पुनः उन्होंने इसे हाथ पर ले लिया पुनः बिच्छु ने डंक मार दिया और पुनः गिर गया और पुनः तीसरी बार जब बिच्छु बहता हुआ दिखई दिया, उसे पानी में से पुनः हाथ में ले लिया पुनः डंक मारा और पुनः गिर गया। इस बात को एक व्यक्ति नदी के बाहर खड़ा हुआ देख रहा था। महात्मा जी का प्रयास था कि बिच्छु को निकाल कर मैं बाहर कर दूँ जिससे इसके प्राण बच जायें अन्यथा ये मर जायेगा। बाहर खड़े व्यक्ति ने कहा लगता है महात्मा जी आप तो मूर्ख हो। क्या ये नहीं जानते बिच्छु का स्वभाव डंक मारना होता है? वह बार-बार डंक मार रहा है तुम बार-बार निकाल रहे हो। महात्मा जी ने बहुत अच्छा उत्तर दिया-"भैया जब ये तिर्यंच, ये तीन इन्द्रिय जीव-बिच्छु, अपने स्वभाव को नहीं छोड़ रहा है तो मैं एक संज्ञी पंचेन्द्रिय मुनि साधु होकर अपने स्वभाव को कैसे छोड़ दूँ? कहने का आशय ये है-क्षमा ये कहलाती है। क्षमा-शील के ऊपर कितने भी उपसर्ग आ जायें भगवान् पार्श्वनाथ की तरह, सुकौशल की तरह तो कभी उसका बहिष्कार नहीं करता, सहन करता है और जिसने क्रोध को जीत लिया है क्षमा को प्राप्त करने का प्रयास कर रहा है ऐसा व्यक्ति यदि देव शास्त्र गुरु पर आँच आती है तो उसका भी खून खौल जाता है।

महानुभाव!

किन्तु फिर भी क्षमा को धारण करने का प्रयास करना चाहिए, क्योंकि साधु लोग ऐसा ही सोचते हैं। एक बार एक स्कूल के बालक अपने स्कूल के बगीचे में खेल रहे थे, संयोग की बात उसी बगीचे में एक मुनि महाराज ध्यान कर रहे थे। ध्यान करते समय उनको नहीं मालूम कौन यहाँ खेल रहा है, बच्चों को भी नहीं मालूम कौन यहाँ ध्यान कर रहा है? बच्चे उस बगीचे में आम के पेड़ों के पास गये जहाँ पर आम लगे हुए थे। उन्होंने नीचे से पत्थर उठाये और आम के वृक्षों में मारना प्रारम्भ किया, पत्थर आमों में लगे और

नीचे गिरने लगे। संयोग से एक पत्थर हाथ घूम जाने से तिरछा फिक जाता है और वह बढ़ता हुआ मुनि महाराज के सिर में लगा। उनके सिर से खून की धारा बहने लगी फिर भी महाराज ध्यान में बैठे रहे, जब बालक लोग वहाँ पर पहुँच गये, बालकों ने देखा–अरे! यहाँ तो महाराज जी ध्यान कर रहे हैं। बालक रोने लगे। महात्मा जी हमें क्षमा करो, हमें श्राप नहीं देना, हमसे गलती हो गयी, हमें बहुत दुःख हुआ है कि आपके पत्थर लग गया हम नहीं देख पाये, आप यहाँ बैठे थे। वे क्षमा-याचना करते हैं, मुनि महाराज की आँखों से भी आँसू बह रहे थे। वे बालकों से कहते हैं–आप जाओ हमने आपको क्षमा कर दिया। महाराज आपने क्षमा तो कर दिया लेकिन लगता है आपको बहुत कष्ट हो रहा है। आप सहन नहीं कर पा रहे हैं इसलिए आपकी आँखों में आँसू आ रहे हैं क्योंकि आँसू तभी निकलते हैं जब अन्दर की वेदना सहन नहीं कर पायें, अन्दर की खुशी अन्दर न समा पाये। महात्मा जी ने कहा–नहीं बेटे तुम जाओ अपना काम करो। नहीं महात्मा जी! हम पूछ के ही रहेंगे कि आपकी आँखों से आँसू क्यों आ रहे हैं? बेटे मुझे कष्ट है, मुझे वेदना है। बालक बोले-हम औषधि लेने जाते हैं। नहीं बेटे, पत्थर की इतनी पीड़ा नहीं है, आपने जिस वृक्ष पर पत्थर मारा उसने कष्ट सह कर भी आपके लिए मृदु फल दिए। मेरे पास तुम्हें देने के लिए कुछ भी नहीं है, वही पत्थर तुमने मेरे लिए भी मारा है। मुझे इस बात का दुःख है कि मैं तुम्हें कुछ दे नहीं सकता। मुझसे ज्यादा क्षमाशील तो वह वृक्ष है जिसने पत्थर की चोट सहन करके भी मृदु फल खाने के लिए दिए लेकिन मैं तुम्हारे पत्थर की चोट को सहन करके भी कुछ दे नहीं सका। इस बात का मुझे दुःख हो रहा है इसलिए मेरी आँखों से आँसू बह रहे हैं।

महानुभाव!

ऐसे-ऐसे संत महापुरुष इस धरती पर हो चुके, जिनकी इतनी

क्षमा, इतनी करुणा थी प्राणी मात्र का उपकार करने के लिए। क्षमाशील व्यक्ति को विश्व का सर्वश्रेष्ठ व्यक्ति कहा जाता है और क्षमा किसके समान है, नीतिकारों ने कहा है–

''पुष्प कोटि समं स्तोत्रं, स्तोत्रं कोटि समं जपः।
जपः कोटि समं ध्यानं, ध्यानं कोटिसमं क्षमा।।

''पुष्पकोटि समं स्तोत्रं'' जिनेन्द्र भगवान् की एक करोड़ फूलों से पूजा करने पर जितना पुण्य का आस्रव होता है, जो पुण्य प्राप्त होता है एक स्तोत्र त्रैयोग से पढ़ लेने से उतने पुण्य का आस्रव होता है। **''स्तोत्र कोटि समं जपः''** और एक करोड़ स्तोत्र पढ़ने से जो पुण्य का आस्रव होता है उतने पुण्य का आस्रव 108 बार महामंत्र की मानसिक जाप कर लेने से (मन से जाप की जाती है) हो जाता है। एक जाप करने से उतना ही आस्रव करोड़ स्तोत्रों को पढ़ने से होता है। **''जपः कोटि समं ध्यानं''** एक करोड़ जाप से जो पुण्य का आस्रव या पाप का संवर होता है उतना पाप का संवर या पुण्य का आस्रव या पूर्वबद्ध कर्मों की निर्जरा अंतर्मुहूर्त के निर्विकल्प धर्म ध्यान करने से होती है, **''ध्यानं कोटि समं क्षमा''** और निर्विकल्प ध्यान, अन्तर्मुहूर्त करने पर जितनी कर्म की निर्जरा होती है, जितना कर्म का क्षय होता है उतने कर्म का क्षय अन्तर्मुहूर्त के लिए उत्तम क्षमा को धारण करने से हो जाता है। इसलिए उपसर्ग को समता से सहन करने वाले वे महाप्रभु, वे भगवंत केवल ज्ञान को प्राप्त हो गये क्योंकि उस समय कर्मों की निर्जरा अधिक होती है।

महानुभाव! इसलिए क्षमा को धारण करना है।

क्षमा खड्ग करे यस्य, दुर्जनः किं करिष्यति।
अतृणे पतितो वह्निः स्वमेवोपशाम्यति।।

जिसके हाथ में क्षमा रूपी तलवार है उसका दुर्जन क्या कर सकता है जैसे तृण से रहित अग्नि स्वयं ही शांत हो जाती है और क्षमा जिनके पास होती है, उसे तीन लोक की सम्पत्ति भी मिल

जाती है।

क्षमा रूप चिन्तामणि, रहता जिसके पास।
तीन लोक की सम्पदा, बनती उसकी दास॥
तप करते जो भूख सह, वे ऋषि उच्च महान।
क्षमा शील के बाद ही, पर उनका सम्मान॥

जो छः-छः महीने के उपवास सहन करते हैं, भूख-प्यास सहन करते हैं, बारह प्रकार का तप करते हैं उनका सम्मान क्षमाशील व्यक्ति के बाद है। छः-छः महीने के उपवास करने वाले उस तपस्वी का भी उस क्षमाशील व्यक्ति के बाद ही नम्बर आ सकता है। कहने का आशय यह है, क्षमाशील व्यक्ति सर्वश्रेष्ठ है जो क्षमा को धारण कर लेता है वह व्यक्ति संसार सागर से पार हो जाता है।

महानुभाव!

आज उत्तम क्षमा का पुनीत अवसर है इसलिए क्रोध को जीतने का प्रयास करें, जिसने आपकी जिन्दगी बर्बाद कर दी, जिस क्रोध के कारण व्यक्ति कोट-कचहरी के चक्कर लगा रहा है, जिस क्रोध के कारण व्यक्ति धराशायी हो जाता है, ये क्रोध ही ऐसा होता है जो व्यक्ति को पतन की ओर ले जाता है। अतः क्रोध को जीतने का समीचीन पुरुषार्थ व प्रयास करना है।

अर्थ सहित कुछ छंद

योग केनापि दुष्टेन, पीडितेनाऽपि कुत्रचित्।
क्षमात्याज्या न भव्येन, स्वर्गमोक्षाभिलाषिणा।।

अर्थ–स्वर्ग मोक्ष के अभिलाषी भव्य को जिस किसी दुष्ट के द्वारा कहीं पर भी पीड़ित किये जाने पर भी क्षमा का त्याग नहीं करना चाहिए।

वदति वचनमुच्चैर्दुःश्रवं कर्कशादि।
कलुषविकलता या, तां क्षमा वर्णयन्ति।।

अर्थ–नहीं सुनने योग्य कर्कश, कठोर वचनों के बोलने पर भी जो कलुषता का अभाव है उसे क्षमा कहते हैं।

क्षान्तिरेव मनुष्याणां, मातेव हितकारिणी।
माता कोपं समायाति, क्षान्ति नैंव कदाचन।।

अर्थ–क्षमा मनुष्यों को माता के समान हितकारी है, माता क्रोध को प्राप्त हो सकती है, किन्तु क्षमा कभी भी क्रोध को प्राप्त नहीं होती।

क्षमया क्षीयते कर्म दुःखदं पूर्वसंचितं।
चित्तं जायते शुद्धं, विद्वेषभयवर्जितम्।।

अर्थ–क्षमा से दुःखदायी पूर्व संचित कर्म नष्ट हो जाते हैं तथा विद्वेष और भय से रहित चित्त निर्मल हो जाता है।

कस्यचित् सम्बलंविद्या, कस्यचित् सम्बलं धनं।
कस्यचित् सम्बलं मृत्युं, मुनीनां सम्बलं क्षमा।।

अर्थ–किसी का सम्बल विद्या है, किसी का सम्बल धन है, किसी का सम्बल मरण है और मुनियों का सम्बल क्षमा है।

नरस्याभरणं रूपं, रूपस्याभरणं गुणः।
गुणस्याभरणं ज्ञानं, ज्ञानस्याभरणं क्षमा।।

अर्थ–मनुष्य का आभूषण (अलंकार) रूप है, रूप का आभूषण गुण है, गुण का आभूषण ज्ञान है, ज्ञान का आभूषण क्षमा है।

पतिव्रत्यं स्त्रीणं रूपं, पिकीनां रूपकं स्वरः।
विद्यारूपं कुरूपाणां, क्षमारूपं तपस्विनाम्।।

अर्थ–स्त्रियों का रूप पतिव्रतपना है, कोयलों का रूप स्वर है, कुरूपों का रूप विद्या है, तपस्वियों का रूप क्षमा है।

मनस्याह्लादिनी सेव्या, सर्वकालसुखप्रदा।
उपसेव्या त्वया भद्र! क्षमा नाम कुलंगिना।।

अर्थ–क्षमा मन को आनन्दित करने वाली एवं हमेशा सुखदायी है। हे भद्र! तुम्हें क्षमा रूपी कुलीन स्त्री का सेवन करना चाहिए।

क्षमागुणान् प्रवच्यामि, संक्षेपेण तु श्रूयतां।
धर्मकामार्थमोक्षाणं, क्षमा कारणमुच्यते।।

अर्थ–हे भव्य आत्मन्! मैं संक्षेप में क्षमा धर्म के गुणों को कहूँगा सो सुनो, क्योंकि क्षमा ही धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की कारणभूत कही गई है। क्षमा शान्ति है, शस्त्र है, श्रेयस्कर है, धैर्य है, धन है, रक्षा का बल है, माता है, बन्धु है, लक्ष्मी है, शोभा है, कीर्ति है, सत्य है, शौच, पूजा, दान, मंगल, उत्तम, शरण इत्यादि सारे गुण क्षमा धर्म में समाहित हैं।

क्षमाबलसमक्तानां, शक्तानां भूषणं क्षमा।
क्षमा वशीकृतो लोकः, क्षमाया किं न साध्यते।।

अर्थ–शक्ति हीन जीवों के लिए क्षमा ही बल है, शूरवीरों का क्षमा आभूषण है। क्षमा से वशी-कृत लोक में क्या-क्या सिद्ध नहीं होता अर्थात् सब कुछ सिद्ध होता है।

क्षमासमं तपो नास्ति, क्षमातुल्यं न सद्व्रतं।
क्षमाभं न हितं किंचित्, क्षमाभं न च जीवितम्।।

अर्थ–क्षमा के समान तप नहीं, क्षमा के समान कोई दूसरा सदाचरण नहीं, क्षमा के समान कोई हित नहीं, क्षमाधारियों के समान

कोई जीवन नहीं।

कोहेण जो ण तप्पदि, सुरणरतिरिएहिं करिमाणेवि।
उवसग्गेवि रउद्दे, तस्स खमा णिम्मला होदि।।

अर्थ—सुर, नर, तिर्यंचों के द्वारा उपसर्ग किये जाने पर भी क्रोध से संतप्त नहीं होते हैं और अन्य भी भयंकर उपसर्ग होने पर जो शांत रहते हैं, उनके ही निर्मल उत्तम क्षमा होती है।

धीमन्! धर्मः परः कार्यः, क्षमयोत्तमया त्वया।
उपद्रवे कृते दुष्टेजीतु कोपो न धर्महृत।।

अर्थ—हे बुद्धिमान्! तुम्हें उत्तम क्षमा धर्म धारण करना चाहिए। दुष्टों के द्वारा उपद्रव किये जाने पर धर्म चुराने वाला क्रोध कभी नहीं करना चाहिए।

श्रुत्वा स्वृष्ट्वा च भुक्त्वा च दृष्ट्वा शुभाशुभं।
न हृष्यति ग्लापयति यः, स शान्तं इति कथ्यते।।

अर्थ—जो भव्यात्मा शुभ, अशुभ को सुनकर, छूकर, भोगकर, देखकर जानकर न हर्ष करता है और न दुःखी होता है वही शान्त कहा जाता है।

स शूरः सात्विको विद्वान् तपस्वी च जितेन्द्रियः।
येनाशु क्षान्तिखड्गेन, क्रोधशत्रु र्निपातितः।।

अर्थ—वही शूर है, सात्विक है, विद्वान् है, तपस्वी है, जितेन्द्रिय है जिससे क्षमारूपी तलवार से क्रोध रूपी शत्रु को शीघ्र नष्ट कर दिया है।

सुतबन्धुपदातीना, मपराधशतान्यपि।
महात्मनः क्षमन्ते हि तेषां तद्विभूषणम्।।

अर्थ—महापुरुष पुत्र, बन्धु, सेना आदि के द्वारा किये गये, सैकड़ों अपराधों को भी क्षमा कर देते हैं, क्योंकि उनका आभूषण क्षमा ही है।

पावं खवड़ असेस खमाए परिमंडिओ य मुणिपवरो।
खेयर अमरणराणं, पसंसणिओ धुवं होई।।
इय णाऊण खमागुणं खमेहि तिविहेण सयल जीवाणं।
चिरसंचिय कोहिसिहिं वरखमसलिलेण सिंचेह।।

अर्थ– उत्तम क्षमा से परिमण्डित मुनि पुंगव, सम्पूर्ण पाप को नष्ट कर देते हैं, वे मुनि ही देव; मनुष्य और विद्याधरों में निश्चय से प्रशंसा के पात्र होते हैं। ऐसा जानकर सभी जीवों को मन, वचन, काय से क्षमा गुण को धारण करना चाहिए। चिरकाल से संचित क्रोध रूपी अग्नि को, उत्तम क्षमा रूपी पानी के सिंचन से शांत करना चाहिए।

क्रोध को जीतने के आध्यात्मिक उपाय

धर्मे स्थितस्य यदि कोऽपि करोति कष्टं,
पापं चिनोति गतबुद्धिशयं वराकः।
एवं विचिन्त्य परिकल्पवृत्तं त्वमुष्य,
ज्ञानान्वितेन भवति क्षमितव्यमत्र।।

अर्थ–धर्म में स्थित रहने वाले व्यक्ति को यदि कोई कष्ट देता है तो वह बेचारा अज्ञानी व्यर्थ में पाप का संचय कर रहा है, ऐसा विचार करके ज्ञानियों को क्षमा करना चाहिए।

कोपने कोऽपि यदि ताडयतेऽय हन्ति,
पूर्वं मयाऽस्य वृत्तमेतदनर्थबुद्धया।
दोषो ममैव पुनस्स्य न कोऽपि दोषो,
ध्यात्वेति तत्र मनसा सहनीयमस्य।।

अर्थ–यदि कोई व्यक्ति क्रोध से ताड़ित करता है, तो उस समय ऐसा विचार करना चाहिए कि मैंने पहले अज्ञानता से इसका अनर्थ किया है इसलिए यह कष्ट दे रहा है इसमें मेरा ही दोष है, इसका नहीं, ऐसा विचार करके मन से सहन करना चाहिए।

व्याध्यादिदोषपरिपर्णमनिष्टसंगं,
पूतो दमंगमपनीय विवर्ध्य धर्मं।
शुद्धं ददाति गतबाधमनल्पसौख्यं,
लाभो ममाऽयमिति घातवृत्तो विषह्यम्।।

अर्थ–क्रोध व्यक्ति को, यदि कष्ट दे रहा है तो ऐसा विचार करना चाहिए कि ये शरीर व्याधि आदि दोषों से सहित है इसका संग अनिष्ट है, अपवित्र है, इससे मोह हटाकर और धर्म को बढ़ाकर सहन करना चाहिए। यह तो हमको लाभ ही है क्योंकि यह बाधा से रहित बहुत भारी सुख को देने वाला है।

दोषेषु सत्सु यदि कोऽपि ददाति शापं,
सत्यं ब्रबीत्ययमिति प्रविचिन्त्य सह्यम्।
दोषेष्वसत्सु यदि कोऽपि ददाति शापं,
मिथ्या ब्रबीत्ययमिति प्रविचिन्त्य सह्यम्।।

अर्थ– यदि कोई व्यक्ति अपने को श्राप देता है (श्राप-दुर्वचन) तो ऐसा विचार करना चाहिए कि यदि ये दोष मेरे में हैं तो यह सत्य ही कह रहा है और यदि ये दोष मेरे में नहीं हैं, यह मिथ्या कह रहा है तो भी सहन करना चाहिए।

शप्तोऽस्म्यनेन न हतोऽस्मि नरेण रोषात्,
नो मारितोऽस्मि मरणेऽपि न धर्मनाशः।
कोपस्तु धर्ममपहन्ति चिनोति पापम्,
संचित्य चारुमतिनेति तितिक्षणीयम्।।

अर्थ– इस व्यक्ति ने क्रोध से दुर्वचन ही तो कहा है, मारा तो नहीं। यदि मारा भी है तो मेरा धर्म नाश तो नहीं किया, ये बेचारा क्रोध करके धर्म को नष्ट कर रहा है और पाप का संचय कर रहा है, ऐसा विचार करके बुद्धिमानों को सहन करना चाहिए।

यदि वाक्यकण्टके विंद्धो, नावलम्बे क्षमाम्यहं,
ममप्याक्रोशकादस्मात्, को विशेषस्तदा भवेत्।।

अर्थ– वचन रूपी काँटों से विद्ध हुआ मैं अगर क्षमा रूपी कवच का आलम्बन नहीं लेता तो, मुझमें और इस क्रोध करने वाले में क्या अंतर रहा। इसलिए मुझे क्रोध नहीं करना चाहिए।

मया दुरात्मना तेऽहा, मनोवाक्कायकर्मभिः।
यदनिष्टं कृतं सर्वं, तत् त्वं क्षमस्व सर्वथा।।

अर्थ– मुझे दुरात्मा ने मन, वचन, काय से जो अनिष्ट किया है, उस अपराध को आप क्षमा करें।

क्षमतव्यं देव् यत् किंचि-दस्माकमिति दुष्कृतं।
विधातुंशक्यते केन, योग्यं सर्वं भवादृशाम्॥

अर्थ—हे देव! मैंने जो अपराध किया उसको क्षमा करें। क्योंकि आप जैसे योग्य महापुरुष को छोड़कर, मेरे दुष्कृत और किसके द्वारा नष्ट किये जा सकते हैं।

यदकार्षमहं दुष्टमति कष्टकरं त्रिधा।
तत्सर्वं सर्वदा सद्भिः क्षम्यताम् मम दुष्टताम्॥

अर्थ—यदि मन, वचन, काय से अति कष्ट करने वाले दुष्टता मैंने की हो तो सज्जन पुरुष क्षमा करें।

कोपादि रहितां सारां सर्व सौख्यकरां क्षमां।
पूजया श्रेष्ठया भक्त्या, पूजयामि तदाप्तये॥

अर्थ—कोपादि से रहित, सब धर्मों का सार, सब सुखों को करने वाली उत्तम क्षमा को मैं क्षमा धर्म की प्राप्ति के लिए श्रेष्ठ भक्ति से पूजा करता हूँ।

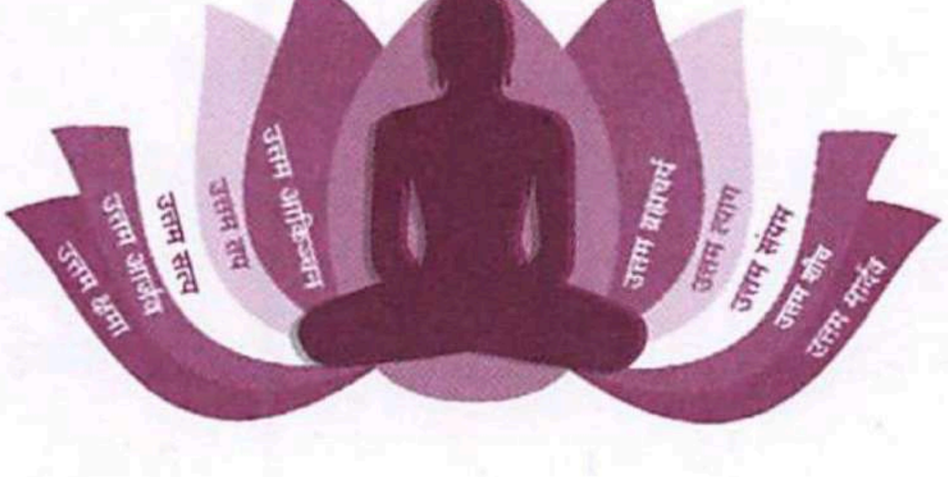

अमृत दोहावली

मित्र क्षमा सम जगत् में, नहिं जीव का कोय।
अरु शत्रु नहीं क्रोध सम, निश्चय जानो सोय।।1।।

सर्व मनोरथ भव्य के, सदा फलें भरपूर।
क्षमाशील बनकर सदा, रहे क्रोध से दूर।।2।।

जो तेरी निन्दा करे, क्यों करता उस पर रोष।
तू स्वयं क्रोध का पिण्ड है, क्या कम है यह दोष।।3।।

को शत्रु है क्रोध सम, सब गुण देय जलाय,
संप्रति में सुख ना मिले, आगे नरक पठाय।।4।।

गृह त्यागी ऋषि वर्ग से, उसकी ज्योति अपार।
सहते हैं जो शांति से, दुर्जन वाक्य प्रहार।।5।।

यश, वैभव, गुण सम्पदा, जो चाहो भरपूर।।
क्षमा, विनय, ऋजु तोष धरि, रहो क्रोध से दूर।।6।।

निंदक नियरे राखिये, आँगन कुटी छवाय।
बिन पानी साबुन बिना, निर्मल करे सुभाव।।7।।

क्षमा शील को न लखे, बैर, विरोध तनाव।
शांति चित्त नित ही रहे, निर्मल ताके भाव।।8।।

क्षमा सिंधु गुण वृन्द का, क्रोध प्रज्ज्वलित आग।
क्षमा धारि, तत्त्वज्ञ बन, लखि क्रोधादि भाग।।9।।

मारना है गर किसी को, मार दो अहसान से।
क्या मिलेगा गर किसी को, मार दोगे जान से।।10।।

जान से मारा गया, वापिस कभी आता नहीं।
और अहसान का मारा गया फिर सिर उठा सकता नहीं।।11।।

गर शत्रु अग्नि बने, तुम बनो जलद परिपूर।
हर्षानन्द लुटाय तुम, करो अग्नि चकचूर।।12।।

एकत्व स्वभाव नित ही लखो, पर को मत दो दोष।
निज गलती को खोज लो, मिट जायेगा रोष।।13।।

क्रोध कभी आये नहीं, आ जाये गर होश।
क्षमा भाव को जो धरैं, बन जाते गुण कोश।।14।।

मान भंग जब भी हुआ, हो क्रोध उदय तत्काल।
मान, मान को छोड़ दो, क्यों होता पीला-लाल।।15।।

चिंगारी सम क्रोध है, क्षमा सिंधु सम जान।
स्व-पर नाश क्रोधी करे, क्षमा शील भगवान्।।16।।

क्षमा के सम्बन्ध में विचारणीय व अनुकरणीय बिंदु

1. कमजोर व्यक्ति का स्वभाव चिड़चिड़ा, उदास, क्रोधादि कषाययुक्त कंजूस होता है, बलवान् व्यक्ति का इसके विपरीत हो सकता है।

2. कुछ लोग कहते हैं कि क्रोध करने के लिए शक्ति चाहिए, किन्तु हमारा मानना है कि क्रोध से ज्यादा शक्ति क्षमाशील को चाहिए।

3. **जो अपने और शत्रुपक्ष के क्रोध को सहन करने की सामर्थ्य से युक्त होता है, वही क्षमाशील होता है।**

4. क्षमाशील की शक्ति सदैव क्रोधी की शक्ति से अधिक होती है, क्योंकि क्षमाशील गंभीर, उदार व दीर्घजीवी होता है।

5. तराजू का जो पलड़ा नीचे जाता है, वही पलड़ा भारी माना जाता है, जो व्यक्ति सैकड़ों (नाना) उपसर्गों को सहन करके भी क्षमा माँगने झुक जाता है, वह संसार का महान् व्यक्ति है वह चाहे कोई भी हो।

6. विरोध करने वाला, बदला व प्रति बदला लेने वाला या ईंट का जवाब पत्थर से देने वाला, या आरोप-प्रत्यारोप लगाने वाला, मिथ्यादोष लगाने वाला या उसका जवाब देने वाला, अपनी निर्दोषता के प्रमाण-पत्र देने वाला कभी महानता की श्रेणी में सम्मिलित नहीं हो सकता।

7. जो क्षिति-पृथ्वी के समान क्षमाशील है, वही पृथ्वी के समान सभी धर्मों व धर्मात्माओं के लिए आधारभूत है।

8. **क्रोधी व्यक्ति पहले अपना अहित करता है, बाद में दूसरे का हो या नहीं भी हो। किन्तु क्षमाशील अपना और दूसरे**

का भी नियम से हित/कल्याण करता है।

9. क्रोधी के पास मानो साक्षात् नरक है या पापों का व दुःखों का पुंज है, समस्त कषायों का आमंत्रण पत्र है, किन्तु क्षमाशील देवतुल्य है, उसकी संगति स्वर्गवत् है, उसका व्यवहार धर्म है, उसके जीवन में विद्यमान सुख व आनंदानुभूति धर्म का साक्षात् फल है।

10. यथार्थ आलोचक की समीपता व निन्दकों की संगति हमें क्षमा के लिए भी प्रेरित करती है।

11. स्वावलम्बी, तत्त्वज्ञ, आध्यात्मिक प्रिय, संयमी व आत्मा के ध्याता पुरुषों को क्रोध कदाचित् ही आता है, वे सदा क्षमा के सागर में ही डुबकियाँ लगाते हैं।

12. जैसे समुद्र, नदी, तालाब, झरने आदि का पानी सूर्य के प्रचण्ड ताप से कदाचित् अल्प काल के लिए ऊपर ही गर्म होता है, नीचे (अन्दर) नहीं, उसी प्रकार सज्जन पुरुषों को क्वचिद् कदाचित् क्रोध आता भी है तो ऊपर से ही, अन्दर में से क्षमा से परिपूर्ण होते हैं। सज्जनों का क्रोध अल्पकालिक ही होता है, वह भी प्रबल निमित्त कारण मिलने पर, अकारण नहीं।

13. बिना क्षमा माँगे क्षमा करना सर्वोत्तम है, क्षमा माँगने पर क्षमा करना उत्तम है, क्षमा मँगवाने पर क्षमा करना मध्यम है, दूसरों के झुकने पर, पश्चाताप करने पर, उनके द्वारा आपकी प्रशंसा व चापलूसी करने पर क्षमा करना जघन्य है और क्षमा माँगने पर भी क्षमा न करने वाला व्यक्ति निन्द्य होता है।

14. क्षमाशील को संसार के प्रत्येक व्यक्ति चाहते हैं, यहाँ तक कि शत्रु भी। वह भी (शत्रु भी) क्षमाशील/गुणग्राही को अपना मानता है, कहता है, किन्तु क्रोधी या दुष्ट स्वभावी, कुटिल परिणामों से युक्त और दुर्जनों को उसके पुत्र तक भी छोड़ देते हैं।

15. क्रोध अज्ञानता से शुरू होकर पश्चाताप पर जाकर समाप्त होता है, जबकि क्षमा विवेक से प्रारम्भ होकर, आत्म शांति व सर्वस्वात्मोपलब्धि पर्यन्त अनन्त काल तक रहती है।

16. शीतल जल की स्थिति अनादि-अनंत व आदि-अनंत या दीर्घकाल तक होती है तथा उष्ण जल की अंतर्मुहूर्त इसी तरह क्षमाशील व्यक्ति दीर्घजीवी होता है। क्रोधी अल्पायुष्क! क्रोध विभाव परिणाम है और क्षमा हमारा स्वभाव है।

17. **ठण्डे लोहे के घन से गर्म लोहा पीटा जाता है, ठण्डा लोहा गर्म लोहे को काटता है, ठण्डे (शीतल) लोहे की समीपता सब चाहते हैं, गर्म की नहीं तथा मानव के लिए ठण्डा लोहा उपयोगी है गर्म नहीं।**

18. क्रोधोत्पत्ति के निमित्तभूत साक्षात् बाह्य कारणों के मिलने पर भी जो आत्म नियंत्रण करके क्रोध नहीं करता है, वही यथार्थ में क्षमाशील है।

19. क्रोधी व्यक्ति के जीवन में अहिंसादि पाँच महाव्रतों का यथार्थभाव सहित पालन नहीं हो सकता, कारण-क्रोध भी समस्त पापों का जनक हो सकता है, हिंसादि पाप प्रत्यक्ष में दिखते भी हैं।

20. क्षमा भाव धारण कर हम दूसरों पर अहसान नहीं करते अपितु अपनी ही आत्मा की सुरक्षा करते हैं।

21. **जो क्रोध में रम गया वह संसार में जम गया, उसका शम-सम गया तथा जिसमें क्षमा भाव जाग गया, वह आत्मा में रम गया, उसका सारा गम और कर्मों का दम गया।**

22. यदि आपको क्रोध करना ही है तो उस क्रोध पर ही क्रोध क्यों नहीं करते, जो निरन्तर आपका अहित कर रहा है।

23. क्रोधी व्यक्ति क्रोध की तीव्रता में कर्म की 148 प्रकृतियों में

से एक का भी क्षय नहीं कर सकता, तत्काल अपनी या पर की भुज्यमान आयु को नष्ट कर सकता है, किन्तु क्षमाशील समस्त कर्मों का क्षय करने में समर्थ होता है।

24. क्रोधी व्यक्ति निस्सीम संसार सागर में अनन्त काल तक गोते लगाता रहता है किन्तु क्षमाशील अपने समीपस्थों सहित पार हो जाता है।

25. उत्तम क्षमादि गुणों की खोज शास्त्रों-शस्त्रास्त्रों में, वस्त्रों, जिनालयों में नहीं, अपितु अपनी आत्मा के अंदर करना है।

26. उत्तम क्षमादि धर्म के सम्बन्ध में शास्त्रों से अच्छी-अच्छी गाथा, श्लोक आदि छंद छाँटकर या उदाहरण, कथानक व महत्वपूर्ण तथ्यों के संग्रह करने से जीवन की सफलता नहीं है और न ही उत्तम क्षमा धर्म के लोकाकर्षक व चित्तहारी उपदेश से, जब तक उत्तम क्षमादि धर्म को अपने जीवन में अंगीकार न किया।

27. क्षमा को न तो लिया जा सकता है और न ही दिया जा सकता है, उसे तो मात्र जीवन में जीया जा सकता है। उत्तम धर्म से युक्त होकर जीने में ही जीवन की सार्थकता है।

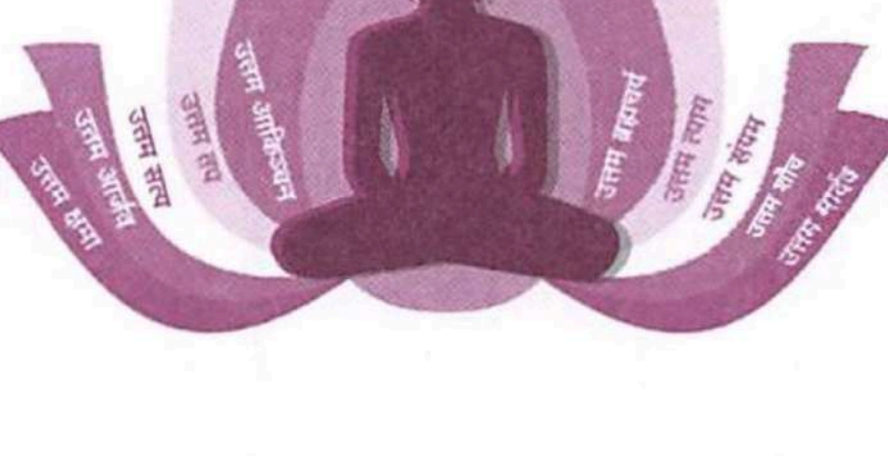

क्रोध के सम्बन्ध में कतिपय उदाहरण

1. **क्रोध में प्रसिद्ध द्वीपायन मुनिराज**–यदुवंशी राजकुमारों ने शराब के नशे में मदोन्मत्त हो द्वीपायन नामक मुनिराज पर घोर उपसर्ग किया, उन्हें अपशब्द कहे, मारा-पीटा, उनके ऊपर लघुशंका, पेशाब, शौच तक कर दी, दुर्गन्धित मल का क्षेपण कर दिया। तब उनकी समता का बांध टूट गया और कषाय के आवेश में मरण कर अग्नि कुमार देव हुए और अपने पूर्व भव का वृत्तांत जानकर द्वारिका को जला दिया अथवा उनके बायें कंधे से अशुभ तैजस निकला जिसने सम्पूर्ण द्वारिका को भस्म कर दिया। **(विस्तार से हरिवंशपुराण या नेमिनाथ पुराण में से पढ़ें)**

2. **तुंकारी की कथा**–इसे 'तू' शब्द से बहुत चिढ़ थी, इसकी शादी भी बहुत मुश्किल से हुई। एक दिन पति ने क्रोधावेश में इसे (भट्टा) तुंकारी (तू) कह दिया–जिससे रात्रि में ही गृहत्याग कर निकल गई, अनेक कष्टों को सहन किया, भाई ने बंधन मुक्त कराया, बाद में बहुत क्षमाशील बन गई। **(इसकी कथा का श्रेणिक चारित्र में से स्वाध्याय करें)**

3. **वायुभूति की कथा**–जो अग्निभूति का भाई था जिसने अपने भाई के साथ सूर्यमित्र नामक पुरोहित (मामा) के यहाँ शिक्षा प्राप्त की। सूर्यमित्र ने कहा कि मैं तुम्हारा मामा नहीं हूँ, यदि भिक्षा भोजन करो तो शिक्षा दे सकता हूँ, शिक्षा दी। बाद में सत्य बात को जानकर वायुभूति ने अपमान किया। अग्निभूति भी दिगम्बर मुनि हो गये। अग्निभूति की पत्नी ने जब वायुभूति से अपने पति को लौटाकर लाने को कहा तो वायुभूति ने अपनी भावज में लात मारी। कालांतर में वायुभूति जब सुकुमाल बना

तब सोमिला-अग्निभूति की पत्नी सियालनी बनी जिसने पूर्व भव के बैर के कारण सुकुमाल मुनिराज पर उपसर्ग किया। **(यह कथा विस्तार से सुकुमाल चरित्र में है, अतः उस ग्रंथ का सम्यक् रीति से स्वाध्याय करके जानें)**

4. **इन्द्रजीत व रावण का क्रोध**–सीता के अपहरण करने के उपरांत जब रावण को विभीषण ने समझाया था, तब भी सभा में रावण व इन्द्रजीत आदि ने उसका अपमान व तिरस्कार किया। क्रोधावेश में रावण ने उसके मुकुट में लात भी मार दी जिसके कारण रावण का लगभग पूरा वंश नष्ट हो गया। **(यह कथा आचार्य सोमदेव कृत रामचरित में वर्णित है, वहाँ से स्वाध्याय करें)**

5. **दण्डक राजा का क्रोध**–दण्डक राजा ने दण्डानुयायी के षड्यंत्र में फंसकर, अज्ञानता से दिगम्बर साधुओं पर घोर उपसर्ग किया। घानी (कोल्हू) में पिलवा दिया, जिससे वह दुर्गति का पात्र हुआ। दीर्घ काल तक दारुण दु:ख भोगकर जटायु पक्षी हुआ। **(इसकी कथा पद्मपुराण में वर्णित है, वहाँ से पढ़ें)**

6. **कमठ का क्रोध**–मरुभूति और कमठ दोनों भाई थे। कमठ ने एक बार मरुभूति की पत्नी के साथ दुराचार किया जिससे राजा ने उसे देश से बाहर निकाल दिया। फिर भी मरुभूति उसे मनाने व क्षमा याचना करने गया। कमठ ने उस पर शिला पटक दी, तब भी उसका क्रोध शांत नहीं हुआ और वह निरंतर दस भव तक बैर करता रहा, उपसर्ग करता रहा। अंत में मरुभूति-पार्श्वनाथ बनकर मोक्ष गए और कमठ भी भगवान के केवलज्ञान उत्पन्न होने पर पश्चाताप करके सुमार्ग का पथिक बन गया। **(इस कथा का पार्श्वनाथ चरित्र/पुराण से स्वाध्याय करें)**

7. इसी प्रकार कपिल ब्राह्मण, राजा श्रेणिक, कुर्युधर, विश्वभूति, राजा इन्द्र, संगमदेव, सात्यकी पुत्र, विद्युद्दृष्ट विद्याधर, अंगधनसर्प, कनकोदरी, परशुराम, पुष्यमित्र, हस्त-प्रहस्त, नारद, कालसंवर, धम्मिल नाई, पंगुल श्रेष्ठी, राजा भोज, राजा शिवकोटि, भरत, बाहुबली, अर्ककीर्ति, चन्द्रगति विद्याधर, कुण्डलमण्डित, सिंहोदर राजा, श्री वर्मा राजा, आदि की कथायें आगम ग्रंथों से जानें।

क्षमाशील महापुरुषों के कतिपय कथानक

1. **यशोधर मुनिराज**–राजा श्रेणिक ने उपसर्ग किया।
2. **अकंपनाचार्यादि 700 मुनिराज**–बलि, नमुचि, प्रहलाद व बृहस्पति ने उपसर्ग किया।
3. **क्षमामूर्ति भगवान पार्श्वनाथ**–संवरदेव ने उपसर्ग किया।
4. **क्षमाशील भगवान् महावीर स्वामी**–स्थाणु रुद्र ने उपसर्ग किया।
5. **युधिष्ठिर आदि पाँच पांडव**–कुर्यूधर (क्रूरकर्मा) ने उपसर्ग किया।
6. **गजकुमार मुनिराज**–पंगुल श्रेष्ठी ने जलती सिगड़ी सिर पर रख दी।
7. **सुकुमाल मुनि**–स्यालिनी ने अपने दो बच्चों सहित तीन दिन तक उपसर्ग किया।
8. **सुकौशल मुनिराज**–पर पूर्व भव की माँ ने सिंहनी बन उपसर्ग किया।
9. **गुरुदत्त मुनिराज**–पर कपिल ब्राह्मण ने उपसर्ग किया, द्रोणगिरि से मोक्ष पधारे।
10. **मर्यादा पुरुषोत्तम रामचन्द्र जी**–की क्षमा सिंहोदर राजा को, कुंभकरण, इन्द्रजीत व राजा मय को बंधनमुक्त कर दिया।
11. **सुभद्रा की क्षमा**–अभिमन्यु की मृत्यु के उपरान्त उसने कहा कि मेरा मरा हुआ बेटा तो अब जीवित नहीं होगा, फिर किन्हीं के बेटों को मार कर मुझ जैसा दुःख उन्हें क्यों दिया जाए। अतः मैं क्षमा करती हूँ।
12. **सकलभूण केवली की क्षमा**–पूर्व भव की रानी किरणमण्डला

ने व्यंतरी बनकर घोर उपसर्ग किया।

13. **सुदर्शन मुनिराज की क्षमा–** अभयमती रानी, कपिला ब्राह्मणी, राजा ने व व्यंतरी ने उपसर्ग किया, तब भी धर्म ध्यान से नहीं डिगे और न ही प्रति बदले की भावना में उत्पन्न हुई। पटना से मोक्ष सिधारे।

14. **देशभूषण कुलभूषण मुनिराज की क्षमा–** उपसर्ग कर्ता देव को क्षमा कर दिया।

15. **श्रीकृष्ण की क्षमा–** स्वयं के बाण लगने पर भी जरत्कुमार को वहाँ से शीघ्र भगा दिया, नहीं तो भाई बलराम जरत्कुमार को मारते।

16. **लक्ष्मण की क्षमा–** वज्रकर्ण को कष्ट देने वाले सिंहोदर को क्षमा कर दिया।

17. **राजा उपश्रेणिक की क्षमा–** सोमशर्मा को क्षमा कर दिया।

18. **आचार्य शांतिसागर जी की क्षमा–** राजाखेड़ा में छिद्दी आदि 500 बदमाशों ने उपसर्ग किया। उन्हें क्षमा कर दिया।

19. **आचार्य महावीर कीर्ति** जी ने स्वयं पर घोर उपसर्ग करने वालों को भी क्षमा कर पुलिस बंधनों से मुक्त कराया।

20. **आचार्य विद्यानंद की क्षमा–** 2600वीं महावीर जयंती के अवसर शासन की ओर से व्यवस्था प्रतिकूल होने पर शांत भाव से वापिस आ गये। प्रधानमंत्री आदि के द्वारा क्षमा-याचना करने पर क्षमा कर दिया।

21. **हरि की क्षमा–** भृगु ने लात मारी फिर भी उसे क्षमा कर दिया।

22. **गौतम बुद्ध की क्षमा–** कुछ ग्रामीण लोग गालियाँ देने आये, जब गालियाँ दे चुके, तब बुद्ध बोले, तुम्हारा काम हो गया हो

तो मैं आगे चलूँ, सभी उनकी क्षमा से प्रभावित हो नतमस्तक हो गये।

23. **डॉ. राजेन्द्र प्रसाद**–प्रथम राष्ट्रपति के सेवक, सीताराम जी के हाथ से काँच का गिलास टूटने पर क्षमा कर दिया। रोने से चुप किया, कहा टूट जाने दो, रोता क्यों है?

24. **ईसा की क्षमा**–जब उन्हें फाँसी दी गई, तब उन्होंने भगवान् से प्रार्थना की कि हे परमात्मा! तू इन्हें क्षमा कर देना, ये जानते नहीं हैं कि वे क्या कर रहे हैं?

25. **महात्मा गाँधी की क्षमा**–जो मारने आया था उसे भी पानी पिलाया।

26. **श्रीमत् रायचन्द्र की क्षमा**–वस्तु के भाव बढ़ जाने से सौदा कैंसल कर दिया, कागज फाड़कर उसे (व्यापारी) भयमुक्त कर दिया।

27. **बनारसीदास की क्षमा**–तमाचा लगाने वाले की वेतन बढ़वा दी।

28. **आचार्य सिद्धसेन (सिद्धसागर जी-आचार्य शांतिसागर जी के गुरु)**–बच्चों ने कमण्डल चोरी किया, उन्हें भी क्षमा कर राजा से उतने रुपये दिलवा दिए।

29. **संजयंत मुनि**–ने विद्युद्दृष्ट विद्याधर को क्षमा कर दिया।

30. **युधिष्ठिर की क्षमा**–विराट राजा ने अहित किया, फिर भी उन्हें क्षमा कर दिया। इसी प्रकार श्रीपाल, मैना सुंदरी, वइरसेन आदि की कथाओं से क्षमा के सम्बन्ध में जानें एवं अपनी आत्मा में क्षमाभाव धारण करें।

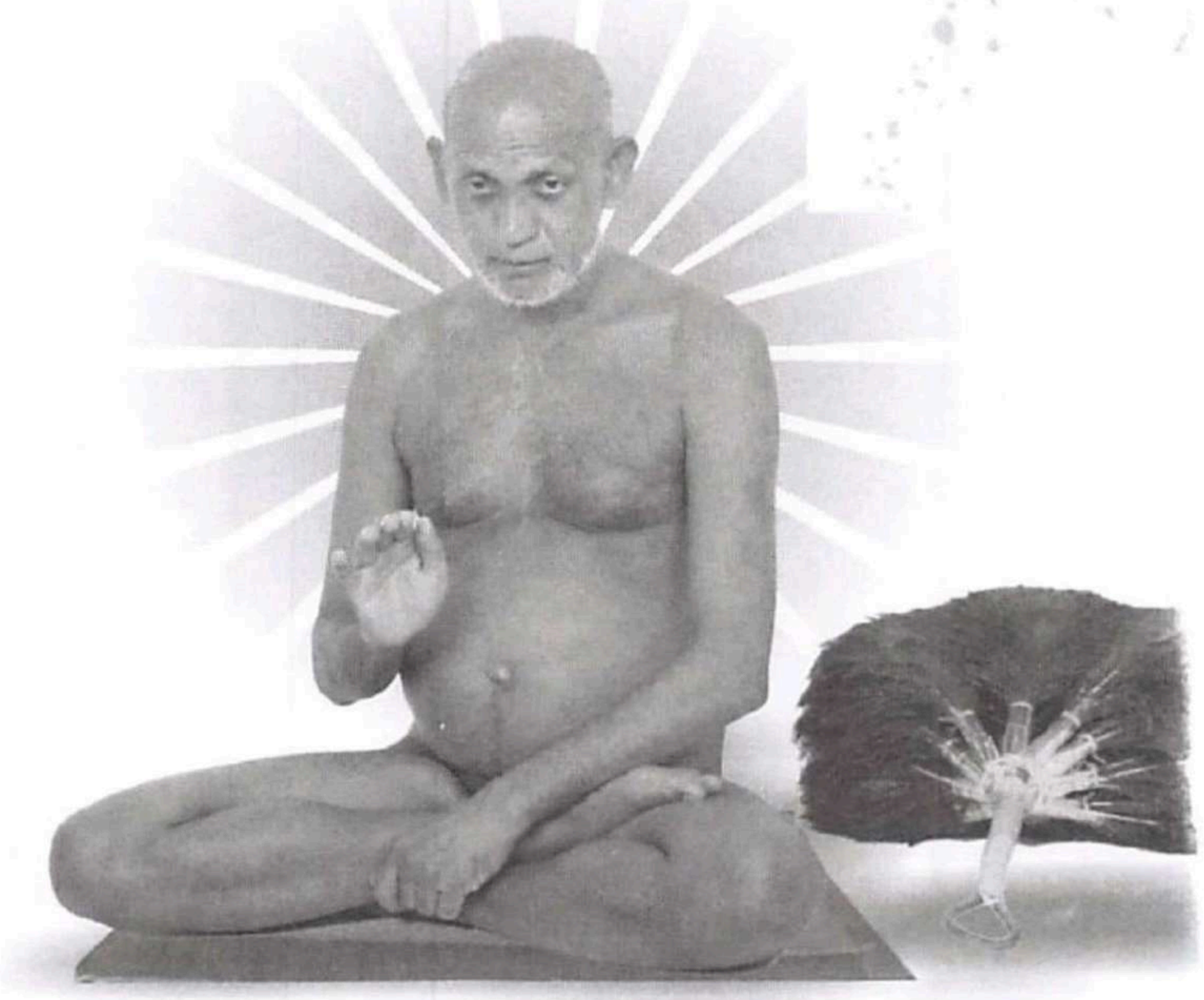

उत्तम मार्दव

किंचि-लद्धीइ जीवा,
कुव्वंति कुलादीण गारवं जे।
जयंति माणदोसं हु,
धण्णा समद्दव-णिग्गंथा॥

दशामृत
अहसास अंतस का

मान महाविष रूप

महानुभाव!

आज पर्यूषण का दूसरा दिन है। क्रोध से जीवन का घात होता है, क्रोध जीवन को बर्बाद कर देता है, एक क्षण में व्यक्ति कहाँ से कहाँ पहुँच जाता है। क्षण भर के क्रोध से व्यक्ति इतना क्रोधित हो जाता है कि मार-पीट करता है, उसे मारने के लिए तैयार हो जाता है, बैर बांध लेता है, नरकादि दुःखों को भोगता है, कालान्तर में बैर न छोड़ने के कारण अनेक भवों तक दुःख भोगता है। यदि क्षण भर के लिए क्षमा भाव धारण कर लिया होता, थोड़ी सी गम खायी होती तो मुझे लगता है उसे दुर्गति की प्राप्ति नहीं होती, किन्तु गम खाना हर एक के वश की बात नहीं है। **गम वही खा सकता है जिसके पास बुद्धि है।**

दृष्टांत :- एक राजा ने अपने मंत्री से पूछा–मंत्री जी दुनिया में सबसे श्रेष्ठ वस्तु क्या है और पूजा किसकी होती है? मंत्री जब उत्तर देने में असमर्थ रहा तो उदास हो गया। उसके बालक ने अपने पिता जी से पूछा–पापा आप उदास क्यों हैं? पिताजी ने कहा–राजा ने इस प्रकार का प्रश्न पूछा है और सात दिन के अंदर उत्तर देना है। अगर उत्तर नहीं दे पाऊँगा तो मेरा सिर काट दिया जायेगा। पापा क्या प्रश्न पूछा है? उन्होंने पूछा है संसार में सबसे श्रेष्ठ वस्तु क्या है और पूजा किसकी होती है? ये दो प्रश्न पूछे हैं। अच्छा! पापा, इनका उत्तर तो

मैं भी दे सकता हूँ। आप राजा से कहिए इतने छोटे-मोटे प्रश्नों के उत्तर तो हमारे बालक ही बता देते हैं और आपने मुझसे पूछ लिया, शोभा नहीं देता। उसका बालक राजा के सामने पहुँच गया। राजा ने पूछा, आप उत्तर देने के लिए आए हैं-''जी'' तो मैं आपसे दो प्रश्न पूछता हूँ। बालक ने कहा आप पूछने वाले हैं, मैं बताने वाला हूँ। तुम जानते नहीं, जानना चाहते हो, तुम सीखना चाहते हो, तुम शिष्य बनना चाहते हो तो तुम्हें नीचे बैठना चाहिए, मुझे ऊपर बैठना चाहिए। पहले तुम नीचे आकर बैठो और आप मुझे ऊपर आसन पर बैठने का स्थान दो तब मैं आपको उत्तर दूँगा। राजा ने सोचा बात तो ठीक है, जब किसी को कुछ ग्रहण करना होता है तो नीचे बैठना पड़ता है। राजा नीचे बैठ गया। बालक को कुछ देर के लिए आसन पर बिठा दिया। अब बताओ-''दुनिया में श्रेष्ठ वस्तु क्या है?'' बालक ने कहा-''बुद्धि''। पुनः राजा ने पूछा-''पूजा किसकी होती है,'' बालक ने कहा-''पूजा बुद्धिमान और चरित्रवान की होती है। जहाँ समीचीन बुद्धि और समीचीन चरित्र होता है, उसकी पूजा होती है।'' बुद्धि खाती क्या है और पीती क्या है? संसार के सभी प्राणी कुछ खाते-पीते हैं बुद्धि क्या खाती पीती है? राजन् बुद्धि गम खाती है और क्रोध को पीती है। ये बुद्धिमान व्यक्ति की विशेषता होती है, बुद्धिमान व्यक्ति गम खाता है। जिसने गम खा लिया हो, वही क्रोध को जीत सकता है, ऐसा व्यक्ति ही नम्र हो सकता है, क्रोध को जीते बिना मान को नहीं जीता जा सकता इसलिए धर्म के दश लक्षणों में विशेषताओं में सबसे पहली विशेषता उत्तम क्षमा धर्म कहा और कषायों की अपेक्षा देखा जाए तो क्रोध कषाय को पहले जीता जाता है, बाद में मान कषाय को जीता जाता है। जब मुनिराज उपशम या क्षपक श्रेणी चढ़ते हैं तो पहले क्रोध का क्षय या उपशम करते हैं, बाद में मान का

सर्वोदयी चिन्तन

उत्कृष्ट मार्दव भाव भी आत्मा का स्वभाव है, धर्म है, गुण है, आत्मा की अदृश्य अचल निधि है।

उपशम या क्षय करते हैं। कल क्रोध को जीतने का प्रयास किया होगा। आज मार्दव धर्म का पुनीत अवसर है लेकिन आप मान को ही नहीं जानेंगे तो मार्दव की बात भी समझ में नहीं आयेगी। मार्दव या क्षमा आदि धर्मों को प्राप्त करने की भावना श्रावक अवस्था में भायी जा सकती है, प्राप्त करना पूर्णतः सम्भव नहीं है तो श्रावक क्रोधादि कषायों को जीतने का प्रयास करें, पुनः जीतने से जो प्राप्ति होगी वहीं उन धर्मों की प्राप्ति होती चली जायेगी। आज मान के बारे में कहना है। संसार के बहुत से प्राणी ऐसे हैं जो क्रोध को तो कषाय मान लेते हैं किन्तु मान को कषाय नहीं मानते। यदि किसी व्यक्ति को क्रोध आता हो तो कहने लगेंगे महाराज जी ये क्रोधी हैं, इन्हें बहुत क्रोध आता है, जैसे कि लोग त्यागी व्रतियों पर लांछन लगाते हैं। कोई व्यक्ति क्रोध तो नहीं करता है लेकिन मान करता है, है बिल्कुल सरल, क्षमाशील किन्तु घमण्ड में चूर रहता है बहुत मानी है तो क्या वह कषायी नहीं है। कषाय करे वो कषायी, जीवों की हिंसा करने वाला तो हिंसक होता है, हत्या करने वाला हत्यारा होता है, आप लोग हिंसा करने वाले को, हत्या करने वाले को कसायी कह देते हैं। आप मुक्त हो जाते हैं कसायी तो वह है, हम थोड़े ही हैं। यदि तुमसे कोई कसायी कह दे तो मुझे लगता है आप लड़ने के लिए तैयार हो जाओगे। तुम्हें कोई पापी, हत्यारा कह दे तो तुम लड़ने के लिए तैयार हो जाओगे। आप स्वीकार नहीं करोगे कि तुममें ये कमी है। 10वें गुणस्थान तक कषाय रहती है। 10वें गुणस्थान तक व्यक्ति साम्प्रायी कहलाता है। कषाय युक्त है वह कषायी है। जब तक व्यक्ति

सर्वोदयी चिन्तन

आत्मा के परिणामों का अत्यन्त मृदु/कोमल हो जाना ही मार्दव है, जैसे कि वीतरागी निर्विकल्प ध्यानी के परिणाम होते हैं।

सर्वोदयी चिन्तन

कोमल मिट्टी ही सुंदर खिलौनों का आकार ग्रहण करने में समर्थ है, उसी प्रकार कोमल हृदय वाले ही आत्मा की मिट्टी से परमात्मा का खिलौना बना सकते हैं।

स्वीकार नहीं करेगा तब तक व्यक्ति आत्म कल्याण के मार्ग में गतिशील नहीं हो सकेगा। मान भी एक कषाय है, क्रोध एक अग्नि की ज्वाला के समान है किन्तु मान तो एक कठोर चट्टान के समान होता है। वह कठोर पत्थर का टुकड़ा है जिसे तोड़ते रहो, तोड़ते रहो टूटता नहीं आसानी से। क्रोध की विशेषता तो ये थी कि वह स्वयं भी जलता है दूसरे को भी जलाता है, पहले क्रोध के माध्यम से व्यक्ति का स्वयं का अहित होता है। जो क्रोध करने वाला है पहले स्वयं का व बाद में दूसरे का स्वयं का अहित करता है। दूसरे का अहित किंचित् मात्रा में होता है, न भी हो पाये। **आचार्यों ने मान कषाय को मीठा बदमाश कहा है।** क्रोध तो कड़वा होता है उसे जब छूते हैं तो पूरा शरीर कड़वा हो जाता है। क्रोध करने के उपरांत शरीर में थकान आती है। क्रोध में चेहरा और आँखें लाल हो जाती हैं, व्यक्ति थककर के चकनाचूर हो जाता है। क्रोध भी विभाव है। विभाव में जीव दीर्घकाल तक नहीं रह सकता। वह क्रोध विभाव की पर्याय है। यदि साथ में स्वभाव पर्याय सम्मिलित नहीं है तो अकेले विभाव में नहीं जी सकता। **यदि जीव के अंदर क्षमा का पूर्ण अभाव हो जाए तो जीव रह ही न पायेगा।** वह क्षमा विभाव रूप में हो गयी और विभाव का भी तीव्र वेग। आचार्य कहते हैं तीव्र वेग मुहूर्त भर के लिए आता है। तुम अड़तालीस मिनट की तीव्र गुस्सा कर सकते हो, उनन्चासवें मिनट तीव्र गुस्सा नहीं कर सकते, उस गुस्से में अंतर आ जायेगा। परिणाम क्रमशः सामान्य हो जायेंगे। एक मिनट के लिए सामान्य हों तो अड़तालीस मिनट के लिए बैटरी चार्ज हो जायेगी, फिर उसके लिए कुछ सामान्य परिणाम हो गये फिर बैटरी चार्ज हो जायेगी। इस प्रकार निरंतर क्रोध नहीं कर सकते, बीच में अंतर आता रहेगा। इसी प्रकार मान में दीर्घ काल तक

सर्वोदयी चिन्तन

कभी-कभी बाहर से झुककर भी अंदर के मान का पोषण कर लिया जाता है किन्तु वह उसी प्रकार घातक है जैसे चेहरे पर शक्कर की चाशनी चुपड़कर जहर पी लेना।

नहीं रह सकते किन्तु नम्रता, क्षमाभाव के साथ जीवन भर रह सकते हैं। क्रोध और मान के साथ जीवन भर नहीं रह सकते। **व्यक्ति जो अज्ञानी होता है वह मान करता है, जो ज्ञानी होता है वह दान और ध्यान करता है।** यदि ज्ञानी श्रावक है तो दान करता है, यदि ज्ञानी श्रमण है तो वह ध्यान करता है, अज्ञानी साधक है तो वह मान करता है, साथ-साथ अपमान भी करता है और अज्ञानी श्रावक भी मान करता है, अपमान करता है, अभिमान करता है। अज्ञान मान का जनक है, अज्ञान अभिमान का जनक है। जिसके पास अज्ञान की खान है, अज्ञान में जो जी रहा है ऐसा व्यक्ति नम्र नहीं हो सकता। महानुभाव! आखिर में मान आता क्यों है? क्रोध आता क्यों है? प्रतिकूलता मिलने पर क्रोध का जन्म होता है, जब भी कोई कार्य आपके अनुकूल नहीं हो तो क्रोध कषाय जन्म ले लेती है। प्रतिकूलता की लू लगते ही, निंदा की लू लगते ही, तिरस्कार की लू लगते ही या और किसी प्रकार से आपके ऊपर लांछन लगा दिए जायें, किसी निर्दोष पर आक्षेप-दोष लगा दिए जायें तो उसका क्रोध भड़क जाता है। निंदा, अपमान, तिरस्कार आदि की लू लगते ही क्रोध का बुखार आ जाता है। प्रशंसा की शीत लगते ही मान का निमोनिया हो जाता है। जब प्रशंसा की जाती है तो ऐसा लगता है मानो अंतर में मिश्री की डली घुल गई हो। वाह! क्या कहना तुम्हारे बारे में तो, तुम जैसा तो धर्मात्मा कोई है ही नहीं, तुम जैसा पुजारी कौन होगा, तुम जैसा दानी कौन होगा, तुम जैसा निःस्वार्थ समाज-सेवी कौन होगा, तुम्हारे जैसा दूसरा नहीं हो सकता। तुम जैसा त्यागी कौन होगा, तुम जैसा तपस्वी कौन होगा। महाराज! आप जैसा सरल साधु आज तक नहीं देखा। जब ये शब्द कान में आते हैं तो अंदर मिश्री सी घुलती है। मान अकड़कर आ जाता है—वाह! मैं ऐसा हूँ? वाह! मैं भी कुछ हूँ। इस प्रकार के शब्दों का अंतरंग में जन्म हो जाना ही मान

सर्वोदयी चिन्तन

उत्तम मार्दव धर्म को प्राप्त करना उनके लिए असम्भव है जिन्होंने मान रूपी विष को ही अमृत मान लिया है।

कहलाता है। मैं भी कुछ हूँ, क्या समझते हो तुम मुझे, जानते हो मुझे, मैं कौन हूँ? दो-चार बार कहोगे तो सामने वाला भी कहेगा-हाँ, जानता हूँ कौन हो? तुम्हारे बाप-दादा को देखा है। **दृष्टांत :-** "एक व्यक्ति रेलगाड़ी में सफर कर रहा था। युवा व्यक्ति था, जोश में था, होश से रहित था और एक वृद्ध व्यक्ति के बाजू में जाकर बैठ गया और देखा भी नहीं उस वृद्ध व्यक्ति का थैला उस सीट पर रखा हुआ था। जाकर उस थैले के ऊपर ही बैठ गया। वृद्ध व्यक्ति ने कहा-बेटा खड़ा हो जा, बोला तुम जानते हो मैं कौन हूँ, वृद्ध व्यक्ति कुछ नहीं कह पाया शांत हो गया। वृद्ध ने फिर दुबारा कहा-बेटा खड़े हो जाओ। उसने कहा-जानते हो मैं कौन हूँ? तीसरी बार उस वृद्ध व्यक्ति ने नम्रता से कहा-बेटा यहाँ से खड़ा हो जा तो पुनः उसके कहने पर वृद्ध व्यक्ति भी अकड़ गया। हाँ जानता हूँ! तेरे पर जवानी का नशा चढ़ा हुआ है, तू मूर्ख है। मालूम है, कहाँ बैठा हुआ है तू? मेरे अंगूरों पर बैठा है। मेरे सारे अंगूर कुचल गए इसलिए मैं कहता हूँ खड़ा हो जा" बार-बार कोई कहेगा तो सामने वाला भी, चाहे बिल्कुल शान्त भी होगा तो वह भी कहेगा-हाँ मैं जानता हूँ तू कौन है, फिर लड़ने के लिए तैयार हो जाता है। बार-बार नहीं कहना, मैं कौन हूँ। तो ऐसे ही

दृष्टांत :- 'एक व्यक्ति जिसकी नई-नई शादी हुई थी उसने भी अपनी पत्नी से कहा क्योंकि शादी होने से पहले वह अपने मित्र से मिला। मित्र से मिलने के बाद उसे कुछ नया अनुभव प्राप्त हुआ। उसने अपने मित्र से पूछा-भैया! तुम्हारी शादी हुए बहुत दिन हो गये, तुम्हें बहुत अनुभव होगा इसके बारे में कि शादी होने के बाद जीवन साथी आता है तो कैसे अपना रुतबा जमता है, हमें क्या करना चाहिए। मित्र बोला-हमें उसका गुलाम नहीं बनना है। अन्यथा वह एक बार अपना दबदबा जमायेगी तो बार-बार भबका जमायेगी। तुमने एक बार भी उसकी बात मान ली, उसके अंडर में हो गये तो जिन्दगी भर दुःख भोगोगे इसलिए सावधान रहना, शुरुआत में तो तुम्हें भबका दिखाना है, दबदबा दिखाना है। जिससे वह नार्मल हो

जाये। वह समझ जाये कि ये भी कोई है तो वह शान्त रहेगी। अगर तुम पहले से ही दब गये, चलो कोई बात नहीं, पर वह तुम्हारे ऊपर हावी हो जायेगी। अभी तो बातों की बौछार करेगी, बाद में फिर लातों की बौछार शुरू हो जायेगी और फिर चिमटा-बेलन की भी मार प्रारम्भ हो सकती है, इसलिए पहले से सावधान रहना। उस व्यक्ति ने कहा–ठीक कहा तुमने, हम सावधान रहेंगे। बोले– सावधान कैसे रहें? वह बोला–कोई भी काम यदि न करे तो बस एक धमकी दे देना, **यदि नहीं किया 'तो'** इतना कह देना, वह डर जायेगी। ठीक है। शादी होकर के आयी उसने अपनी पत्नी को शुरू से ही अपने अंडर में रखना शुरू कर दिया। किसी भी काम की कहता तो यह कह देता– इस काम को जल्दी करो नहीं किया तो! बेचारी पत्नी डर जाती, काँप जाती, जल्दी से काम कर देती। इस प्रकार से चलते-चलते एक साल, दो साल निकल गए। एक दिन श्रीमान! जी को कहीं बाहर जाना था, बहुत जल्दी में थे। उन्होंने कहा–सुनो जल्दी भोजन तैयार करना और पानी गर्म कर देना, सर्दी है मुझे ठंडी लगेगी इसलिए मैं गर्म पानी से नहाऊँगा। उसने हाँ कह दिया, अब थोड़ी देर बाद वह आता है। उसने पत्नी से पूछा–पानी गर्म कर दिया या नहीं किया, पानी जल्दी से गर्म कर दो नहीं किया तो! अब पत्नी बेचारी 'तो ....' सुनते-सुनते परेशान हो गयी थी। दो साल से परेशान थी, कहाँ तक 'तो' सुने, अब उसके अंदर की बात अंदर से उमड़ी। वह कहती है, मैं पानी गर्म नहीं करूँगी तो क्या करोगे, बोले तो मैं ठंडे से नहा लूँगा और क्या करूँगा। ऐसा 'तो' नहीं करना कि तुम्हारी 'तो' का कोई असर ही न हो पाये। उसे मित्र की बस एक ही बात मालूम थी कि तुम इतना कहते जाना। आगे नहीं मालूम था क्या कहना है। उस बेचारे ने कह दिया मैं ठंडे से नहा लूँगा। 'तो' कहने का आशय यह है कि 'तो'

सर्वोदयी चिन्तन

कठोरता सदैव तोड़ने का एवं मृदुता सदैव जोड़ने का काम करती है, तोड़ना पाप है तो जोड़ना धर्म। अब जो चाहो सो करो।

के माध्यम से व्यक्ति संयम की ओर नहीं बढ़ पाता, 'तो' के कारण व्यक्ति धर्म के मार्ग में नहीं बढ़ पाता, 'तो' के कारण व्यक्ति कार्य करने से घबराता है। 'तो' माने, किन्तु, परन्तु, लेकिन, चूँकि इत्यादि। ये शब्द ऐसे हैं जिनसे व्यक्ति सही मार्ग में नहीं बढ़ पाता इसलिए 'तो' को निकाल देना है, संयम के मार्ग में जिसके पास 'तो' है, 'तो' की एक तोप है वह पुन: आगे बढ़ नहीं पाता।

महानुभाव!

सर्वोदयी चिन्तन

सज्जन, धर्मात्मा, प्राज्ञ पुरुष, गुण ग्राहक दृष्टि वाले पुरुष हीन गुण वालों से भी गुण ग्रहण कर लेते हैं और कभी भी अपने गुणों का घमण्ड नहीं करते किन्तु गुण हीन बिना घमण्ड के कभी नहीं रह सकते।

कहने का आशय यह था कि जब-जब व्यक्ति की प्रशंसा होती है तब-तब उसके अंदर मान कषाय जागने लगती है। **यदि अनुकूलता बन गई तो मान, प्रतिकूलता हो गई तो क्रोध।** अब दोनों में समता रखना बहुत टेढ़ा काम है आसान नहीं है, कहना बहुत सरल है। जब अनुकूलता रहती है तो क्रोध नहीं आता है तो लोग कह देते हैं—वाह वे तो बहुत सीधे हैं। बिल्कुल सीधे हैं उनके सामने प्रतिकूलता उपस्थित करके देखो तो मालूम पड़ जायेगा, सीधे हैं कि टेढ़े हैं? अभी तुम्हें मालूम नहीं है। कहने का आशय यह है कि अनुकूलता में तो कोई भी क्षमा भाव धारण कर सकता है और अनुकूलता में ये भी हो सकता है कि जिसके पास कुछ नहीं है, सामान्य व्यक्ति है वह मान नहीं करे। किन्तु जिसके पास सब कुछ हो, जिसकी सामने वाले प्रशंसा कर रहे हों, फिर भी उसके परिणामों में मान कषाय का उदय नहीं आये, ये बड़े आश्चर्य की बात है। जिस प्रकार युवा अवस्था प्राप्त होने पर उसके अन्दर काम वासना जन्म नहीं ले, जो युवा अवस्था की देहरी पर कदम रखे किन्तु उसका पैर भोगों की ओर फिसले नहीं, जो गरीब होकर भी ईमानदार बना रहे। वैभव सम्पन्न होकर के आज्ञाकारिता को प्राप्त करके भी

जिसके अंदर मान न आये ऐसे चार आश्चर्य संसार के अनुपम आश्चर्य हैं, इनसे बड़े आश्चर्य संसार में और कोई नहीं हैं। महानुभाव! **गरीबी में ईमानदारी, युवा अवस्था में भोगों की आकांक्षा न होना, वैभव को, आज्ञाकारता को प्राप्त करके मान न आना ये विश्व के अनुपम आश्चर्य हैं।**

मान मनुष्य गति में सर्वाधिक पाया जाता है, जिस प्रकार क्रोध की अधिकता नरक में होती है उसी प्रकार मान की अधिकता मनुष्य गति में पायी जाती है। यदि समस्त मनुष्यों का मान जोड़ लिया जाये तो मान का जोड़ सब जीवों की अपेक्षा सबसे अधिक रहेगा। मान करने वाला व्यक्ति वह नरक की ओर जाता है। क्योंकि मान कषाय क्रोध को जन्म देती है। यदि मान तीव्रता की ओर होता है तो क्रोध भी उत्पन्न होता है और क्रोध नारकी का सूचक है, चाण्डाल का सूचक है। मान में व्यक्ति अंधा हो जाता है उसे मदान्ध कहते हैं। मद किसी भी प्रकार का हो सकता है। जब मान का उदय होता है उस समय मानी व्यक्ति किसी की बात मानता नहीं, जो किसी की बात मानने के लिए तैयार हो जाए सो मानी ही नहीं कहलाये। उससे कहते हैं–भैया मान-मान, किन्तु मानता नहीं। यदि मान जाए तो मानी नहीं कहलाये फिर तो वह विनयशील कहलाये। ये देखा जाता है जो बड़े लोगों की बात नहीं मानता है, जो पुरुषों की बात नहीं मानता है, देव, शास्त्र, गुरु धर्म के अनुसार नहीं चलता है ऐसा व्यक्ति मानी कहलाता है और मानी व्यक्ति की गति नीच होती है।

''मानी नर नल नीर की, गति एक हि कर जोय''

''मानी मनुष्य की और नल के नीर की गति नीची होती है, ऐसी ही मानी की गति होती है।''

''ज्यों-ज्यों ऊँचो हो चले, त्यों-त्यों नीचो होय।''

''जिस प्रकार नल को ऊँचा करते जायें, कितना भी ऊँचा कर दो, उसका पानी नीचे ही आयेगा। ऐसे ही मानी व्यक्ति भी नीचे आ

जाता है।''

''मान सूरज करता है, आकाश पर चढ़ते हुए।
शाम को देखा उसी को, सिर झुका ढलते हुए॥''

''यदि सूरज भी सुबह से मान कर उगता है तो शाम को वह भी सिर झुका कर ढल जाता है।''

कोई भी अगर मान करे तो उसकी अवस्था एक सी नहीं रहती, अवस्था बदलती रहती है। हर पर्याय क्षणध्वंसी है। जो अज्ञानी व्यक्ति होता है वह मान में जीता है किन्तु जो ज्ञानी व्यक्ति होता है वह मान में नहीं विनयभाव में जीता है, मार्दव भाव में जीता है और अपने विनम्र भाव में जीता है। महानुभाव! आचार्यों ने मान आठ प्रकार के कहे हैं। प्राय: उन आठ मदों से व्यक्ति कहीं न कहीं बंधा हुआ रहता है। जो मद से रहित है वह व्यक्ति जीवन के अनुपम आनंद को प्राप्त कर लेता है, परम आनंद को प्राप्त कर लेता है। मान करने वाला व्यक्ति अपने अलावा दूसरे प्राणियों को तुच्छ मानता है। मान का आशय है-

सर्वोदयी चिन्तन

यदि आपको 2 व्यक्तियों की परीक्षा करी है कि कौन अधिक गुणवान है तो इसका सीधा उपाय है, आप यह देखो कि दोनों में अधिक विनम्र कौन है?

''एकोऽहं द्वितीयो नास्ति। न भूतो न भविष्यति।''

एक मैं ही हूँ दूसरा कोई नहीं है, न तो भूत में हुआ था न भविष्य में कोई हो सकता है, न वर्तमान में कोई है। जबकि ज्ञानी व्यक्ति सबको समान मानता है। प्रत्येक आत्मा में परमात्मा बनने की शक्ति छिपी हुई है। ज्ञानी और मानी में ये भेद होता है। मानी आठ प्रकार के मान करता है; वे आठ प्रकार के मान कहे हैं-

'ज्ञानं पूजां कुलं जातिं बलमृद्धिं तपो: वपु:।
अष्टावाश्रित्य मानित्वं स्मयमाहुर्गतस्मया:॥''(25, र.श्रा.)

पहला मान है ज्ञान का मान यदि किसी को कुछ हो गया तो

पुनः इतना मान आ जाता है कि मेरे समान विद्वान तो कोई है ही नहीं। यदि चार गाथा, चार श्लोक, चार शब्द सीख गए तो मान सिर पर से चलता है। शरीर भी अकड़ता है, चाल में भी अंतर आ जाता है, बोल-चाल, चाल-ढाल, राग-रंग सब बदल जाते हैं। अंदर से जब मान आता है, तो पुनः बाहर से भी अंतर आ जाता है। यदि कोई एक छोटा बालक है जिसने सौ तक गिनती याद कर ली। जब वह घर में आता है पहले दिन ही, तो ऐसा लगता है मानो घर को सिर पे उठा लिया उसने, मैं सौ तक गिनती याद करके आ गया। मम्मी से कहेगा, पापा से कहेगा, भैया से कहेगा, बहिन से कहेगा, अपने मित्रों से कहेगा, अपने सम्बन्धियों से कहेगा, मैंने सौ तक गिनती याद कर ली। भले ही किसी ने एक हजार तक याद कर ली हो। नहीं, मैंने सौ तक याद कर ली, तुमने हजार याद कर ली सो तुम जानो, मैंने सौ तक गिनती याद कर ली हैं, मैं तुमसे श्रेष्ठ हूँ। क्या ज्ञानी व्यक्ति अपने आप में मानसहित हो जाता है? नहीं, ज्ञानी व्यक्ति के जीवन में कभी मान नहीं आता है। शब्द को जिसने ''ज्ञान'' मान लिया है ऐसा व्यक्ति ही मानी हो सकता है, ज्ञानी व्यक्ति कभी मानी नहीं होता। जो मान आता है वह मानी को, अज्ञानी को आता है, चन्द शब्दों को याद करने पर घमण्ड आ जाता है। प्रायः कर देखा जाता है कि लोग जिन्हें कुछ आता हो, याद हो, सामने वाला चर्चा कर रहा हो और तुमसे न पूछा जाए कोई बात तो बिना पूछे तुम बोलोगे। इसलिए आचार्यों ने कहा **''ज्ञानी पुरुषों का मौन लेकर के बैठ जाना ही बहुत बड़ी साधना है।''** ज्ञानी व्यक्ति मौन नहीं रह सकता, उसे आता है तो बतायेगा ऐसा नहीं करो, नहीं, ऐसा करो और सामने वाला कहेगा अपने ज्ञान को रखो अपने पास। जब हमें आवश्यकता होगी तब तुमसे पूछ लेंगे समझे, तुम्हारा ज्ञान

सर्वोदयी चिन्तन

क्या तुमने कभी ठूँठ को झुकते या फलदार वृक्षों को अकड़ते देखा है? यदि नहीं तो फिर तुम गुणों के सागर होकर क्यों पर्वत से अकड़ते हो?

तुम्हारे लिए है। हमें तुम्हारे ज्ञान की आवश्यकता नहीं है। अपने पाण्डित्य को यहाँ मत बिखेरो, तुम्हारा पाण्डित्य हमें नहीं चाहिए, रखो अपने पास, हमारे पास जितना है उतना हम करेंगे, तुम्हारा ज्ञान नहीं चाहिए। क्यों कहता है सामने वाला? क्योंकि बताने वाला अपने अहम् की पुष्टि के लिए बता रहा है। जिससे लोग ये जान लें कि ये बता रहा है, इसके पास भी ज्ञान है। अपनी विद्वत्ता दिखाने के लिए, अपनी शाबाशी दिखाने के लिए, अपनी होशियारी, चतुराई, ज्ञान को दर्शाने के लिए, वह बीच-बीच में बोलने का प्रयास करता है, सज्जन पुरुषों के बीच में भी बोलने का प्रयास करता है। आचार्य महोदय कहते हैं कि **पूज्य पुरुषों की वार्ता के बीच में कभी बिना पूछे नहीं बोलना चाहिए** और कहीं-कहीं यहाँ तक देखा गया है कि लोगों को वह विषय अच्छे से आता भी नहीं है, कोई चर्चा चल रही है सिद्धान्त की, कोई एक शब्द सुन लिया सिद्धान्त का और बीच में बोल पड़े, "अरे! महाराज हम बतायें तीन और तीन ग्यारह होते हैं।" अरे भाई! तुमसे पूछा किसने, तीन और तीन ग्यारह होते हैं या एक और एक ग्यारह होते हैं। पुनः बाद में उससे कहेंगे भैया! ग्यारह तीन-तीन होते हैं या एक और एक मिलकर ग्यारह होते हैं या नौ और दो ग्यारह कितने होते हैं? तीन और तीन तो छः होते हैं, तीन-तीन साथ रहेंगे तो तैंतीस होते हैं। अरे! महाराज हम भूल गए थे, हमने एक-एक समझा था। बीच में टोक भी दिया और जानते भी नहीं हो, इसलिए ध्यान रखना चाहिए कभी भी पूज्य पुरुषों के आगे अपना ज्ञान नहीं बिखेरना चाहिए। यदि कदाचित् पूज्य पुरुषों से कभी भूल हो भी जाए तो विनम्रता के साथ निवेदन कर देना चाहिए। पूज्य श्री कहीं ऐसा तो नहीं है, शायद हमारी स्मृति में ऐसा तो नहीं है या पुनः एकान्त में संकेत कर देना

सर्वोदयी चिन्तन

उत्तम मार्दव धर्म शुद्ध चेतना का अविनाशभावी गुण है, यह चेतना में ही मिलेगा, जिसकी आत्मा जड़ के संयोग से जड़ हो गई है, उसमें कहाँ?

चाहिए परंतु उन्हें टोक दोगे तो ऐसा हो सकता है कि वह तुम्हारे सम्मान की रक्षा न कर पायें, अपने सम्मान की रक्षा में क्योंकि वह जो आपका व्यवहार है वह उसके प्रतिकूल हो रहा है। वह सहन नहीं कर पाये तो उसके माध्यम से आपका अपमान भी हो सकता है। अत: कभी पूज्य पुरुषों के बीच में न बोलकर निवेदन करें, वह भी विधिपूर्वक, तब तो ठीक हो सकता है। ज्ञान का मद करने वाले व्यक्ति भी बहुत हुए और जो ज्ञान का मद करने वाले थे वे कहाँ चले गये? नीचे चले गये। मन्द कषायी संयमी अज्ञानी व्यक्ति का स्वर्ग जाना आसान है किन्तु ज्ञान का जिस व्यक्ति को अहंकार है ऐसे व्यक्ति का नरक से बचना बहुत कठिन है। जिसके पास शब्द ज्ञान का घमण्ड है ऐसे व्यक्ति को नरक से बचाना कठिन है। किन्तु किसी को शब्दज्ञान नहीं है लेकिन मंद कषायी है, सरल-सहज है, बेचारा बहुत सीधा है, पानी के समान है, वह मक्खन क्रीम के समान है तो ऐसे व्यक्ति के नम्र व्यक्तित्व के साथ तो सब Adjust हो सकते हैं और जो मानी व्यक्ति होता है वह Stone Piece के समान है, उसका घमण्ड इतना उभरा हुआ होता है कि उसमें कोई वस्तु प्रवेश नहीं कर सकती। पत्थर की चट्टान में कोई प्रवेश करना चाहे तो प्रवेश नहीं कर सकता और पानी में कोई भी वस्तु डालो प्रवेश कर जायेगी, विनय या मार्दव पानी के समान है। सबको Adjust करने की सामर्थ्य जिसमें होती है, वह विनयशील कहलाता है। विनयशील व्यक्ति का संसार में कोई शत्रु नहीं होता है। इसलिए आचार्यों ने विनय को मोक्ष का द्वार कहा है।

आचार्य कुन्दकुन्द स्वामी ने मूलाचार आदि में और शिवकोटि महाराज ने भगवती आराधना ग्रन्थ में इन गाथाओं को कहा है–

सर्वोदयी चिन्तन

हमारा झुकना किसी पर अहसान लादने के लिए नहीं, अपितु गुणों को प्राप्त करने के लिए ही होना चाहिए, तभी हमारा गुणों का सागर बनना संभव है।

"विनय मोक्ष का द्वार है, विनय से ही संयम है, विनय से ही तप है, विनय से ही ज्ञान है, बिना विनय के न तो ज्ञान है, न संयम है, न तप है और विनय के बिना न मोक्ष का मार्ग है। विनय के द्वारा ही आचार्य आदि सर्व संघ एवं पंचपरमेष्ठियों की आराधना सम्भव है। घमण्ड के माध्यम से कभी भक्ति, पूजा, स्तुति, अर्चना, उपासना आदि कार्य नहीं किए जा सकते।

अतः विनय को सर्वश्रेष्ठ कहा गया है। घमण्ड करने वाले इन्द्रभूति गौतम जो वीर प्रभु के प्रथम गणधर हुए उनको पहले घमण्ड आ गया और घमण्ड में क्या बात कह दी उन्होंने इन्द्र से जब वह वृद्ध ब्राह्मण का भेष बना कर गया था।

सर्वोदयी चिन्तन

यदि तुम झुककर भी गुणों को प्राप्त नहीं कर पाये हो तो अकड़कर/घमण्ड से प्राप्त कैसे करोगे? अहं भाव की अग्नि गुणोत्पादक नहीं, गुणों की दाहक एवं दोषोत्पादक ही होती है।

जब इन्द्रभूति ब्राह्मण से सौधर्म इन्द्र (वृद्ध ब्राह्मण वेषधारी) के द्वारा एक श्लोक का अर्थ पूछा गया, इसका उत्तर जब उनसे नहीं बना तब इन्द्रभूति ने कहा, तुमको किसने पढ़ाया है? चल इसका उत्तर मैं तेरे गुरु के ही पास जाकर के दूँगा। यह घमण्ड की भूमिका है और मान की भूमिका में चलते हैं। आगे-आगे! इन्द्र तो यही चाहता था। इन्द्रभूति ने मानस्तम्भ को देखा, मान स्तम्भित हो गया, चूर-चूर हो गया और नम्रीभूत हुए विनय आयी और उस क्षण भर की विनय ने उन्हें सकल संयमी बना दिया, सम्यक् दृष्टि बना दिया, क्षायिक सम्यक् दृष्टि, सकल संयमी, चार ज्ञानों का धारी और तिरेसठ ऋद्धियों से सम्पन्न बना दिया। यह विनय का प्रभाव है और घमण्ड में यदि चूर रहे तो देखो सात्यिकी पुत्र ग्यारहवें रुद्र अधोलोक की अवस्था को प्राप्त हुए। यम राजा ने एक बार मुनि श्री का अपमान कर दिया था। वाह! उनके पास क्या ज्ञान है उनसे ज्यादा तो मैं जानता हूँ। इतने शब्द विचारने से उनके क्षयोपशम का लोप हो

गया। जब वे मुनि बने तो णमोकार मंत्र भी उन्हें पूरे जीवन में याद नहीं हुआ। शिवभूति मुनि को तो बारह साल में याद नहीं हुआ था किन्तु इन मुनि महाराज को तो पूरा जीवन में णमोकार मंत्र याद नहीं हुआ था, जब याद हुआ तब केवल ज्ञान प्राप्त कर लिया, तब सम्पूर्ण ज्ञान प्राप्त कर लिया था, अनंत ज्ञान प्राप्त कर लिया था।

सर्वोदयी चिन्तन

अग्नि से शीतलता की प्राप्ति असम्भव है, उसी प्रकार बिना मृदु बने तुम गुण सागर नहीं बन सकते। लघुता से ही प्रभुता मिलती है।

महानुभाव!

ऐसे ज्ञान का घमण्ड करने वाले व्यक्ति पुनः अधस्तन अवस्था को प्राप्त हो गये। इसलिए ज्ञान का मद करने वाला भी धराशायी हो जाता है। **दूसरा मद है ''पूजा का मद''।** मैं तो स्वामी हूँ, मैं तो प्रभु हूँ, मैं तो ईश हूँ, मैं तो मालिक हूँ, मेरे पास इतना वैभव है, सब मेरी आज्ञा में रहते हैं, सब मेरी सेवा करते हैं और मैं उन सबका हैड हूँ। इतना बड़ा राजा तो कोई हो नहीं सकता, कौन हो सकता है? कोई नहीं। मैं बहुत बड़ा हूँ मेरी आज्ञा सब मानते हैं, मेरी आज्ञा का कोई उल्लंघन नहीं कर सकता। इस प्रकार का घमण्ड करने वाले व्यक्ति भी अधोगति को प्राप्त हुए। जैसे–

दृष्टांत :-''इन्द्र नाम का एक राजा हुआ मुनिसुव्रतनाथ जी के काल में, जिसका रावण के साथ युद्ध हुआ था। उसने अपना नाम इन्द्र रख लिया, अपने आपको इन्द्र मान लिया। अपने दरबार में भी यम, वरुण, कुबेर इत्यादि लोकपाल नियुक्त कर लिए। रावण ने उस पर आक्रमण किया तो रावण ने उसे जीत लिया और वह रावण की गुलामी को प्राप्त हुआ।'' इसी प्रकार घमण्ड करने वाले रावण को लें। उसे भी घमण्ड था– मैं त्रिखण्डाधिपति लंकेश, तुम भूमिगोचरी, मैं विद्याधर हूँ तुम मेरा क्या मुकाबला करोगे। यदि मैंने तुम्हारी सीता को ले लिया तो तुम क्या करोगे, कुछ भी नहीं कर सकते। मेरे पास

तो विद्याओं का खजाना है, 1008 विद्यायें हैं, मेरे पास राज्य है, मेरी लंका सोने की बनी है उसका परकोटा बना हुआ है, उसमें कोई प्रवेश नहीं कर सकता है, ये भूमिगोचरी मेरा क्या करेंगे, ये सामान्य कीड़े-मकोड़े के समान मेरा क्या करेंगे। इस प्रकार का घमण्ड उसे आ गया था तो–

''इक लख पूत सवा लख नाती। ता रावण घर दिया न बाती॥
स्वर्ण का कोट समुद्र की खाई। ता रावण की जात न पाई॥''

आज रावण का नाम निशान नहीं है। कोई रावण का नाम लेना पसंद नहीं करता, कोई पुरुष अपने बालक का नाम रावण नहीं रखता। रावण नाम से इतनी घृणा हो गयी है। रावण को घमण्ड था अपने ऐश्वर्य का, अपनी पूजा का घमण्ड था। अपनी पूजा का घमण्ड करने वाले, शक्ति का घमण्ड करने वाले भरत चक्रवर्ती हुए, उन्हें भी घमण्ड आ गया, मैं छः खण्ड का राजा हूँ। उस वृषभगिरि पर मेरा नाम लिखकर आओ, दूसरे का नाम मिटा दो।

सर्वोदयी चिन्तन

अविनय करने वाले अपने जीवन को अभिनय रूप बना लेते हैं एवं विनम्रशील अपनी आत्मा को विशिष्ट स्वभाव की ओर ले जाते हैं।

जो वृषभगिरि विजयार्द्ध पर्वत पर विद्यमान है– (उसका क्षेत्रफल 50 योजन चौड़ाई 100 योजन लम्बाई लगभग क्षेत्रफल उसका 5000 योजन है, जहाँ प्रशस्ति लिखी जाती है।) उस वृषभगिरि पर अपनी प्रशस्ति लिखकर घमण्ड से चूर हो गये। छः खण्ड के राजा में कहीं कमी न आ जाए इसलिए उन्होंने अपने भाई को भी प्रेम के साथ नहीं एक सम्राट की आज्ञा के अनुसार बुलवाया तो बाहुबली भी ऐसे नहीं आये। मैं तुझे सम्राट मानकर तो नमस्कार नहीं कर सकता भले ही तू सम्राट बन जा। तू राजाओं का राजा दूसरों के लिए होगा, मेरे लिए तो सहोदर है, मेरे लिए सम्राट नहीं है। अगर भाई के लिहाज से बुलाता तो मैं तेरे चरणों में आ जाता किन्तु तूने मझे आज्ञा एक सम्राट की हैसियत से दी है इसलिए मैं युद्ध में आऊँगा और युद्ध

किया दोनों चरम शरीरी थे। अतः हारने का तो सवाल ही नहीं। दोनों में युद्ध हुए– दृष्टि युद्ध, जल युद्ध, मल्ल युद्ध। तीनों युद्धों में भरत चक्रवर्ती पराजित हुए, उनका मान चूर-चूर हो गया। आवेश में आकर के चक्र भी चला दिया, चक्र बाहुबली की तीन परिक्रमा लगाकर वहीं स्थिर हो गया। अब भरत अपनी निगाह नीची करके रह जाते हैं। वे अयोध्या नरेश रह जाते हैं, उनका मान चूर-चूर हो गया। अब कैसे कहें हम चक्रवर्ती हैं, चक्ररत्न तो दूसरे के पास पहुँच गया। कहने का तात्पर्य है जिन्होंने मान किया, अपनी पूजा, ऐश्वर्य का भी मान किया कि मेरी आज्ञा में इतने लोग रहते हैं तो उनका मान भी चूर-चूर हो गया। मान संसार में किसी का नहीं रहा। **दृष्टांत**-मान करने वाले वे चामुण्डराय हुए। चामुण्डराय जिसने अपनी माँ गुल्लिका देवी की इच्छा पूर्ति करने के लिए भगवान् बाहुबली की मूर्ति बनवायी थी और सब लोग कह रहे थे–धन्य है चामुण्डराय के लिए जिसने इतनी बड़ी मूर्ति बनवायी। चामुण्डराय का हृदय इतना फूल गया कि उनके अंदर की नम्रता-कोमलता चली गई। मान-कषाय ने जन्म ले लिया। वाह! मैंने इतनी बड़ी मूर्ति बनवायी विश्व में इतनी बड़ी मूर्ति और कहीं नहीं है, अब उसका अभिषेक तो पहले मैं ही करूँगा। जब मैंने मूर्ति बनवायी तो पहले अभिषेक भी मैं ही करूँगा। अनेक कलशें डाल दिये, किन्तु वह जल धारा नीचे नहीं आयी। वह धारा बीच में ही समाती रही और पुनः उनकी 'मैं' को तोड़ने के लिए एक यक्षिणी देवी वृद्धा माँ का रूप बनाकर के एक नारियल की नरेली में थोड़ा सा दूध लेकर आती है। लोगों ने धक्का दिया उसको बहुत परेशान किया। जब सब लोग परेशान हो गये, अभिषेक नहीं हुआ तब चामुण्डराय की जड़ से नाक कटने लगी। अब उसने घोषणा करवा दी कि जो कोई भी पुण्यात्मा जीव हो, वह अभिषेक

सर्वोदयी चिन्तन

जो अपनी मान कषाय को मार (नष्ट कर) देते हैं, या दबा (उपशमन कर) देते हैं, वे मार्दव गुण को प्राप्त कर सकते हैं।

कर सकता है। तब अन्य लोग अभिषेक करने आये। फिर वृद्धा माँ का नम्बर आया, सब लोग हँसी कर रहे थे। जब किसी के कलशों से अभिषेक नहीं हुआ तो इसकी नारियल की नरेली से क्या होगा, फिर भी वृद्धा माँ अभिषेक करने चली गयी। कुछ लोग कहते हैं वह वृद्धा माँ यक्षिणी थी, कुछ लोग कहते हैं वह वृद्धा माँ उस शिल्पकार की माँ थी जिसके द्वारा भी बड़ी साधना चल रही थी, बड़ा त्याग चल रहा था कि जब तक ये मूर्ति नहीं बनेगी तब तक के लिए उसने दूध का त्याग कर दिया था। शिल्पकार के मन में तो एक बार पाप आ गया था किन्तु वृद्धा माँ ने कह दिया था ''नहीं बेटे तुझे धन की परवाह न करके मूर्ति बनाना है।'' उस बुढ़िया की नरेली से अभिषेक हुआ, दो धारायें बह गयीं– गंगा और यमुना की तरह और वे कुण्ड जैसे बन गए। उस समय उस माँ ने चामुण्डराय का मान चूर-चूर कर दिया।

वाह! मैं, मैं, मैं तो अच्छे-अच्छों की नहीं रही। 'मैं-मैं' करने वालों के तो गले काटे जाते हैं।

''बकरी मैं मैं करत है, अपनी खाल खिचाय।
और तूती तू तू करत है, रही मजे से गाय॥''

बकरी जो मैं-मैं करती है, उसको मारा जाता है और उसकी खाल निकाली जाती है। एक तांत होती है, पहले रुई धुनने के लिए तांत का प्रयोग किया जाता था। जब बकरी मैं-मैं करती है और मारी जाती है तो शायद उसी की हड्डी या आँतों के माध्यम से तांत बनायी जाती है जिससे रुई धुनी जाती है। जब रुई धुनी जाती है तब उसमें से ''तू ही है''-''तू ही है'' की आवाज निकलती है। वर्तमान काल में रुई धुनने के लिए मशीनों का प्रयोग होने लगा है किन्तु पहले तांत के माध्यम से रुई

सर्वोदयी चिन्तन

मान को मार्दव गुण में बदलने के लिए मात्र दृष्टि को ही नहीं, आचरण को भी बदलना होगा।

धुनी जाती थी तो कहने का तात्पर्य है कि 'मैं' सबकी खत्म हो गई, किसी की स्थायी नहीं रही।

पुन: **तीसरा व चतुर्थ घमण्ड होता है–कुल व जाति का घमण्ड।** कुछ लोगों को जाति का घमण्ड भी आता है। मैंने उच्च जाति में जन्म लिया मेरे समान कोई हो ही नहीं सकता और वे अन्य व्यक्तियों का अपमान करते हैं। तिरस्कार करते हैं इस प्रकार दूसरों का अपमान करने वाला व्यक्ति नीच गोत्र का पात्र होता है इसलिए जाति का मद नहीं करना चाहिए। एक राजा के बारे में कथन आता है–

दृष्टांत :- देवरति नाम का राजा था। उसके पुत्र का नाम था अपरिचर। उन्हें मुनिराज ने बताया कि वे मरकर विष्टा में कीड़ा हो जायेंगे। तब उन्होंने अपने पुत्र से कह दिया कि जब मैं मर कर कीड़ा हो जाऊँ तब तुम मुझे मार देना। किन्तु जैसे ही वह मारने के लिए जाता था वह कीड़ा विष्टा में छिप जाता था, प्राण बचाना चाहता था। कहने का आशय है, देवरति राजा ने घमण्ड किया, विष्टा में कीड़ा हुआ। जो लोग अपनी जाति का घमण्ड करते हैं वे नीच गोत्र के पात्र होते हैं, अपने कुल का घमण्ड नहीं करना, अपनी जाति यानि मातृ पक्ष का, समस्त जाति का घमण्ड न करना। मानी व्यक्ति निंदा तथा अधोगति का पात्र होता है।

पाँचवां–''बल का मद'' जिसके पास बल है, वह बल का मद करता है। इसके लिए तो मैं अकेला ही काफी हूँ और मेरे घर में आठ लट्ठ तो हैं ही, आठ हम घर के युवा भाई हैं। सामने वाले को तो हम चकनाचूर कर देंगे, हमारे सामने कोई कैसे आयेगा?

''जो हमसे टकरायेगा,
वो चूर-चूर हो जायेगा।''

सर्वोदयी चिन्तन

मान रूपी शत्रु का मर्दन करके भी जिनके अन्दर न तो मान है और न ही सम्मान की आकांक्षा, वे ही वास्तव में मार्दव गुण से युक्त हैं।

बल किसी भी प्रकार का हो, चाहे सैन्य बल हो, चाहे आपके पास अस्त्र-शस्त्र का बल हो, चाहे शारीरिक शक्तियों का बल हो। आपके पास जो कुछ भी बल है उस बल का मद कर लेते हैं। ऐसा व्यक्ति पुनः धराशायी हो जाता है। जिस व्यक्ति के शरीर में इतनी सामर्थ्य है कि अकेला व्यक्ति चार व्यक्तियों को पराजित कर सकता है, इतना उसके अन्दर पराक्रम है। ऐसा व्यक्ति यदि चार दिन के लिए बीमार हो जाये, यदि बुखार आ जाये तो फिर उसे सहारा देकर खड़ा करना पड़ता है, स्वयं खड़ा नहीं हो पाता, चक्कर आते हैं लगता है गिरा। जिसे सामर्थ्य का घमण्ड था और यदि किसी पदार्थ से दस्त लग जायें। एक दिन में अड़तालीस बार दस्त के लिए जाये, तो पुनः उसे खड़ा भी करो तो खड़ा नहीं हो पायेगा। वह कहेगा भैया हम जा रहे हैं खड़े नहीं हो पा रहे हैं। इसे इतना घमण्ड था अपनी शक्ति का, सामर्थ्य का। अड़तालीस बार के दस्त में चला गया, शक्ति क्षीण हो गई, तो अब काहे का घमण्ड। इतना तुम्हें घमण्ड है अपनी शक्ति पर। तुम्हारे घमण्ड के नाश के लिए एक छोटा सा तिनका पर्याप्त है। यदि हवा में उड़ता एक तिनका आकर तुम्हारी आँखों में घुस जाये तो तुम रोने लगोगे। तुममें कितनी शक्ति है एक छोटे से तिनके ने तुम्हें परास्त कर दिया। हमें कभी शक्ति का घमण्ड नहीं करना चाहिए, शक्ति का घमण्ड करने वाले चाहे भीम हो, अर्जुन हो, रावण हो, कंस हो और सगर चक्रवर्ती के पुत्र हों, जिसने भी शक्ति का घमण्ड किया उसने नीचा देखा। अतः ध्यान रखना है शक्ति का भी घमण्ड नहीं करना है।

सर्वोदयी चिन्तन
जितना स्थूल मान कषाय को जीतना आसान है, उतना सूक्ष्म मान को नहीं।

अगला मद है–''ऋद्धि का मद''। ऋद्धि का अर्थ है–धन, सम्पत्ति, वैभव इसका घमण्ड करना। इसका घमण्ड करने वाले व्यक्ति भी धराशायी हो गये। जितना उन्हें राज्य वैभव प्राप्त था, उतनी ही उन्होंने नीची अवस्था को प्राप्त किया, चक्रवर्ती आदि जो

ऋद्धि आदि को प्राप्त करके घमण्ड करते हैं वे सप्तम नरकादि को प्राप्त कर लेते हैं और धन का मद भी क्यों करना?

दृष्टांत-एक राजा था, उसने धन का मद किया। एक बार वह कहीं जंगल में गया भ्रमण करने के लिए, उसके साथ उसके मंत्री, सेनापति भी थे। राजा जंगल में शीतल छाया के लिए वृक्ष के नीचे विश्राम करने लेट गया, तब तक सेनापति आदि ने सोचा कि राजा के रथ में बैठकर कभी भ्रमण नहीं किया, राजा अभी सो रहे हैं, तब तक इस रथ में बैठकर देख लिया जाए। वे मंत्री आदि रथ में बैठ कर भ्रमण करने लगे। संयोग की बात भ्रमण करते समय रथ बहुत दूर निकल गया। अब मंत्री सेनापति आदि रास्ता भूल गए। यहाँ पर केवल राजा अकेला सो रहा था। कुछ देर बाद जब राजा की नींद खुली तो वहाँ कोई नहीं दिखा। राजा अकेला है। राजा ने सोचा कहीं मैं स्वप्न तो नहीं देख रहा हूँ, बाद में आँखें मलीं। नहीं, ये स्वप्न नहीं सत्य है। यहाँ कोई नहीं है, सूर्य अस्ताचल की ओर है, राजा बड़ा परोशान होता है कि क्या करें? राज्य में कैसे जाएँ, रथ से आया था। मालूम नहीं कौन से रास्ते से आया था, कहाँ से आया था, अब जाने में वह परेशान हो रहा है फिर भी वह चलता है। खोजते-खोजते, वह रास्ता खोजने के प्रयास में है, ज्यों-ज्यों वह रास्ता खोजता है त्यों-त्यों रास्ता भटकता जाता है। घनी झाड़ियों में पहुँच जाता है। शाम हो चुकी, उसका गला प्यास के कारण सूखा जा रहा है, भूख भी बड़ी जोरों से लगी है। कभी उसने मखमल के नीचे पैर रखे, नहीं आज उसे कंकरीली जमीन पर गमन करना पड़ रहा है, परेशान है। संध्याकाल में एक गरीब की झोंपड़ी के निकट पहुँचता है, आवाज लगाता है। इस घर में कोई है? अंदर से आवाज आती है–तुम कौन हो? उसने कहाँ मैं अमुक देश का राजा हूँ, ठीक है तुम राजा होंगे अपने लिए, मेरे लिए अभी एक भिखारी बन के आये हो, बोलो क्या चाहते हो? बोला मुझे बहुत जोरों की प्यास लगी है, मुझे पानी चाहिए। बोला–यहाँ पानी फ्री में नहीं मिलता है, पानी यहाँ सहज

उपलब्ध नहीं है। मैं आठ मील दूर से पानी लाता हूँ, मेरे पास थोड़ा सा पानी है मेरे लिए। मैं तुम्हें पानी दे सकता हूँ किन्तु फ्री में नहीं और तुम राजा हो तुम्हारे पास तो बहुत कुछ है, मैं ऐसे नहीं दे सकता। एक बार एक सेठ जी आये थे, उनको मैंने पानी दिया किन्तु ऐसे नहीं दिया था, कैसे दिया था? उस सेठ की आधी सम्पत्ति ले ली तब पानी दिया। राजा पूछता है उस सेठ की आधी सम्पत्ति 2-5 लाख की होगी। मैं आपको अपने मुकुट हार आदि सभी देता हूँ। 'नहीं' आप के पास बत्तीस हजार आपके छोटे-छोटे राजा हैं, बत्तीस हजार आपके छोटे-छोटे राज्य हैं तो यदि आपको पानी चाहिए तो मुझे बत्तीस हजार राज्य चाहिए। राजा कहता है-ये तो बड़ा मुश्किल है। बात करते-करते सौदा सोलह हजार में पहुँच जाता है। राजा का आधा राज्य तक तय हो जाता है। मैं आधा राज्य तुम्हें दे सकता हूँ, मुझे तुम पानी दे दो।

''मरता क्या न करता''

जब प्राण निकल रहे थे तो राजा ने सोचा- मैं आधा राज्य दे दूँगा। माना कि ये आधे राज्य का स्वामी बन जायेगा। इसके पास कोई कला तो है नहीं, युद्ध करना जानेगा नहीं पुनः इस पर मैं आक्रमण कर दूँगा, जीत लूँगा। पर हुआ कुछ और, राजा ने केवल आधा लोटा पानी उस व्यक्ति के माध्यम से प्राप्त कर लिया और आधा लोटा पानी लेने के उपरांत वह पानी उसने पी लिया, पानी को जैसे ही पिया, जोरों से पेट में दर्द हुआ क्योंकि पानी बहुत गहरे कुयें का था, जिसमें जीव-जन्तु पड़े हुए थे जो विषैले जीव-जन्तु थे, उसको छानकर पी लिया था लेकिन पानी में तो उसका असर फिर भी रह गया था तो पेट में बहुत जोरों की पीड़ा होने लगी, वेदना होने लगी। राजा कहता है-इसकी दवाई क्या है? आपने भी जब पहली बार पानी पीया होगा तो आपके पेट में भी दर्द हुआ होगा और आपके पास उसकी दवाई होना चाहिए। वह व्यक्ति बोला-मेरे पास दवाई तो है लेकिन मुफ्त में में थोड़े ही मिलती है। दवाई के कितने

पैसे लोगे–2 रुपये, 4 रुपये, 10 रुपये। नहीं, ऐसे नहीं। कभी-कभी डॉक्टर लोग भी देख लेते हैं कि मरीज कैसा है। यदि मरीज का काम आधा अटका हुआ है तो कहेगा पहले इतने पैसे रखो तब मैं तुम्हारा उपचार करूँगा। यदि नहीं दोगे तो मैं तुम्हारा इलाज नहीं कर सकता। क्योंकि डॉक्टर लोग ये जानते हैं अभी इलाज करवाके चला जायेगा बाद में पैसे माँगेंगे तो पुन: आँखें दिखायेगा। डॉक्टर तो लूटता है, बहुत पैसे माँगता है। अगर डॉक्टर कहेगा पहले पैसे यहाँ रखो तब मैं मरीज की नाड़ी पकड़ूँगा तो पैसे रख देंगे। उसी प्रकार उस व्यक्ति ने राजा से कहा– पहले पैसे निकाल कर यहाँ रखो, तब मैं तुम्हें दवाई दूँगा। कितने चाहिए? 'शेष आधा राज्य'। जो शेष राज्य तुम्हारे पास रह गया है वो मुझे चाहिए तो राजा ने वो आधा राज्य भी उसे दे दिया। ''मरता क्या न करता''। पुन: दवाई मिली पुन: राजा जी उठा। कहने का आशय यह है कि उस छ: खण्ड के राज्य की कीमत–आधा लोटा सड़ा पानी के बराबर। जिस पर व्यक्ति घमण्ड करता है, आधा राज्य सड़े पानी के लिए चला गया, लकड़ी की छोटी सी रुखड़ी जो घिसकर के दे दी थी उसमें आधा राज्य चला गया। इतनी सी आपके राज्य की कीमत है, जिस पर आप घमण्ड कर लेते हैं और आपके पास तो छ: खण्ड का राज्य भी नहीं है। तुम्हारे राज्य की कीमत तो कुछ भी नहीं है फिर भी घमण्ड कर लेते हैं। जो धन का घमण्ड करने वाले हैं वे सभी रावण हैं। यदि रावण शब्द की सिद्धि व्याकरण के अनुसार करें तो–रै + उ + अण: = धन उन्माद।

जिसे धन का उन्माद हो और धन के उन्माद में जो अड़ गया हो, वह रावण कहलाता है।

जिन-जिन व्यक्तियों को धन का उन्माद है वे रावण हैं। चाहे नाम से वह रामदास, रामदयाल, रामचंद, रामफूल,

सर्वोदयी चिन्तन

मार्दव गुणधारी श्रमण की सौम्य मुद्रा मिथ्यादृष्टि को भी विनयशील बना देती है।

रामकिशन, रामलाल हों, अगर उन्हें उन्माद है तो वह राम नहीं वह तो रावण हैं। **ऋद्धि का घमण्ड** नहीं करना चाहिए, ऋद्धि का घमंड चाहे कंस ने किया हो, चाहे शिशुपाल ने किया हो, जिसने भी मद किया हो वह धराशायी हो गया। अगला घमण्ड है **''तप का घमण्ड''**। तपस्या का भी मद हो सकता है, वाह! मुझ जैसा तो तपस्वी कोई मिल ही नहीं सकता, मेरी साधना तो सबसे श्रेष्ठ साधना है, ऐसी साधना कोई कर सकता है बताओ? और चार लोगों से बोलेंगे तो वे तुम्हारी प्रशंसा के चार शब्द और बोल देंगे तो तुम्हारा दिमाग और बढ़ जायेगा और किसी ने कह दिया 'तुम अपनी साधना को साधना समझते हो, ऐसी साधना तो कोई भी कर सकता है। धिक्कार है तुम्हारी साधना को।' इतने शब्द सुनकर शरीर के अंदर आग सी लग जाती है। मेरी साधना का तिरस्कार, मेरी साधना की निंदा, मेरी साधना का अपमान। तपस्वी लोगों को भी साधना का घमण्ड हो सकता है। यदि किसी ने उपवास कर लिया तो कहेगा तुमसे अच्छा तो मैं हूँ, मैंने उपवास कर लिया। तुम तो दो बार भोजन करते हो, क्या साधना करोगे तुम? तुम हरी सब्जी भी खाते हो, तुम दो बार भोजन करते हो, उनकी निंदा, अपमान करेगा। कहने का आशय है कि यदि तपस्या के साथ घमण्ड आ जाये तो साधना व्यर्थ है, इसलिए किसी भी प्रकार का घमण्ड नहीं करना चाहिए। कुछ लोग कहते हैं हम तो प्रतिमाधारी हैं, एक-दो प्रतिमाधारी हम तो हरी नहीं लेते, महाराज जी हरी लेते हैं, हम तो रस का त्याग कर देते हैं, महाराज खूब रस पीते हैं। अरे भाई! माना वे ऐसा करते हैं, उनकी कमजोरी है लेकिन तुम अपनी शक्ति का इस प्रकार घमण्ड करोगे तो तुम्हारी साधना धूमिल हो जायेगी। आचार्यों ने कहा है-**नीचे की सीढ़ी पर बैठा व्यक्ति यदि छः-छः महीने के प्रतिदिन उपवास करता है और साधु नित्यशः आहार करता है तो भी दोनों की साधना में असंख्यात गुना अंतर है।** उस श्रावक की साधना से श्रावक की निर्जरा से, श्रावक के संवर से, श्रावक की विशुद्धि से

असंख्यात गुणी विशुद्धि श्रमण की कहलाती है। लब्धि गुणस्थान श्रमण के उस श्रावक की अपेक्षा से सबसे अधिक होते हैं, श्रावकों को कभी भी घमण्ड नहीं करना चाहिए। तप का घमण्ड भी नहीं करना चाहिए। तप का मद करने वाले वशिष्ठ, सातकी आदि ऋषि हुए। वे तप का मद करने से अधोगति को प्राप्त करके संसार में भ्रमित हो गये।

अंतिम मद है वपु अर्थात् 'शरीर का मद'। शरीर का मद ये होता है–मेरा सौंदर्य अनुपम है व मैं सबसे सुंदर हूँ। सतन कुमार चक्रवर्ती को भी कभी घमण्ड आया होगा जब उन्होंने गृह त्याग करके सन्यास ग्रहण कर लिया तब वे कुष्ट रोग से पीड़ित हो गये। अपने रुप का घमण्ड नहीं करना चाहिए। आपका रूप, आपका सौंदर्य, आपका लावण्य क्षणभंगुर है, क्षण भर में नष्ट हो जाता है। लक्ष्मीमति ने घमण्ड किया तो उसने नरक गति को प्राप्त किया था। अत: इन आठ प्रकार के घमण्डों से दूर होना है क्योंकि मद अर्थात् घमण्ड चाहे किसी भी प्रकार का हो दु:खदायी है, अधोगति का कारण है।

'आज सोते हैं कब्र में, पैर फैलाकर वो
कल जिनका सेहरा था जमीं से आसमाँ तक।'

'कल जिनकी दुन्दुभि आकाश में बज रही थी, जमीं से आसमान तक जिनका राज्य था, आज वे धराशायी हो गये, जमीन के अंदर पड़े हुए हैं।'

कोई भी जमीन के अंदर जा सकता है इसलिए किसी भी प्रकार का मद नहीं करना चाहिए। **दृष्टांत :-** एक बार ''एक युवा बालक जिसकी शादी हुई थी, शादी होने के उपरांत उसको उसके मित्र ने सलाह दे दी, आपको अपनी पत्नी के दबाव में नहीं रहना है, पत्नी को अपने दबाव में रखना है और पत्नी भी भर के आयी थी, बिल्कुल तैयार होकर के आयी थी। बस जितनी भी भड़ास है सब

वहाँ जाकर के निकालनी है। दोनों घमण्ड में चकनाचूर, दोनों घमण्ड से सहित। जैसे ही आयी तो पत्नी ने सोचा इनके भाव ज्यादा चढ़ रहे हैं, कुछ ढीले करने चाहिए। वह स्त्री अपने पति से बोली 'मेरे पेट में बहुत जोरों से दर्द हो रहा है'। तो ठीक कैसे होगा? दर्द ठीक ऐसे हो सकता है– मुझे स्वप्न आ गया है, यदि आप एक तरफ की मूँछ मुंड़ा लें तो मेरा ये रोग ठीक हो सकता है। पति ने सहजता से एक तरफ की मूँछ मुड़ा ली, अब तो पत्नी उसे चिढ़ाये।

'मैंने अपनी टेक निभाई, अपने पति की मूँछ मुड़ाई।'

जब भी चक्की चलाए, आटा पीसते समय बस उसका एक ही गीत चले 'मैंने .... मुड़ाई। पति सुनते-सुनते परेशान हो गया कि अब ये ऐसे नहीं मानेगी। उसने अपनी ससुराल पत्र भेज दिया, साले और ससुर के लिए, सब लोगों के लिए ससुराल पक्ष के जितने भी लोग थे कहा आपकी पुत्री का स्वास्थ्य बहुत खराब है। हमने सब जगह दिखा लिया किन्तु ठीक नहीं हो पा रही है। एक सयाने बाबा आये थे, उन्होंने बताया था तुम्हारी लड़की को यह स्वप्न कई बार आ चुका है। हम तुमने कहना नहीं चाहते थे किन्तु आज तुमसे कहते हैं। यदि अपनी पुत्री का मुख देखना हो तो प्रात: काल सूर्योदय से पहले अंधेरे में ही आप सभी लोग अपनी एक तरफ की मूँछ मुड़ा कर के आ जायें और सभी मूँछ मुड़ा कर आ गये। अब वह सुबह चक्की पीसना प्रारंभ करती है, सवेरे-सवेरे वही अपना गीत गाती है कि 'मैंने .... मुड़ाई' उसका पति भी सामने खड़ा था। वह कहता है–

'पीछे को अब देख लुगाई, मुड़िया पल्टन आयी'।

अब तो उसको बड़ा मुश्किल हो गया, देखा उसके पिताजी आधी मूँछ वाले, भैया आधी मूँछ वाले, चाचा आधी मूँछ वाले, सबकी आधी-आधी मूँछ मुड़ी है। अब उसे बहुत शर्म भी लगी और अंदर से आग भी ऐसी जल गई कि अब क्या करना चाहिए, बदला

तो उनसे लेना चाहिए। पुनः वह एक दिन बहाने करके बैठ गई मेरे सिर में जोरों से दर्द हो रहा है, मैं बचूँगी नहीं, मैं मर जाऊँगी इसलिए तुम किसी डॉक्टर को मत दिखाओ, व्यर्थ में पैसा खर्च होगा। पति ने कहा आप चिंता न करें, जो दर्द तुम्हारा है, जैसे भी ठीक होगा मैं ठीक कराने का प्रयास करूँगा। क्या ऐसा दर्द तुम्हारे जीवन में कभी हुआ था? बोली– हाँ हुआ तो था, फिर क्या हुआ? स्वप्न आया उस स्वप्न में उसका उपचार हो गया, स्वप्न में तो अभी भी आया है किन्तु आपको बुरा लगेगा कि आपको ये स्वप्न कैसे आ गया, मैं बता नहीं सकती मुझे मर जाने दो। स्वप्न जैसा भी होगा, जो कुछ भी होगा, हम करने के लिए तैयार हैं। तब उसने कहा स्वप्न यह है तुम्हारी माँ गाँव में रहती है, बहुत दिनों से वे आयी नहीं है। वह सपने में मुझे दिखी हैं, उन्होंने मुझे आशीष दिया है किन्तु वे विचित्र अवस्था में आयी हैं, चण्डिका का रूप बना करके, काले वस्त्र पहन करके, काला मुँह करके, एक हाथ में खप्पर ले करके, एक हाथ में सूपा ले करके, बालों को मुड़ा करके प्रातःकाल आयी हैं। उन्होंने मुझे आशीष दिया है और देते ही मेरा दर्द छू-मंतर हो गया। लड़के ने कहा बस इतनी सी बात है। अरे! क्या हो गया तुम्हारी जिंदगी बच जाए, मेरी माँ को ऐसा काम करना कौन सी बड़ी बात है, बाल मुड़ाने में क्या है? फिर आ जायेंगे। काला वस्त्र पहनने में क्या है, पहन लेंगे, काला मुँह करके आयेगी तो धो लेंगी, कोई बात नहीं है ठीक है। उसने पत्र लिख दिया, समाचार भेज दिया, समाचार के अनुसार वह अमावस्या भी आ गई जिस दिन उन्हें बुलाया था। दरवाजे पर दस्तक दी और वह सामने आ गयी। उसको देखते ही उस युवक की जो पत्नी थी पहले तो हँसने लगी और पुनः कहती है–

"देखो वीरबानी की चालें, सिर के मुंडे मुँह के काले॥

लड़का भी चुप रहने वाला कहाँ था उसने भी कह दिया–

"देखो अब मर्दों की फेरी, अम्मा तेरी है या मेरी।"
पहले तो ये देख लो अम्मा तेरी या मेरी है क्योंकि लड़के ने भी बुद्धिमानी से काम किया था। पत्र अपनी अम्मा के यहाँ नहीं अपनी पत्नी की अम्मा के यहाँ भेज दिया था।"

महानुभाव! कहने का आशय यह है–जो व्यक्ति दूसरों का तिरस्कार करने के लिए घमण्ड करता है, दूसरों का अपमान करता है, उसका स्वयं का अपमान हो जाता है इसलिए आप सभी लोग समधी बनें, कुधी नहीं बनें। समधी "सही बुद्धि रखें, समीचीन बुद्धि से युक्त हों", तो इस प्रकार समीचीन बुद्धि वाला व्यक्ति मान को शमित कर सकता है और वह 'उत्तम मार्दव" धर्म को प्राप्त कर सकता है। उत्तम मार्दव धर्म तभी प्राप्त हो पाता है जब मान नहीं हो। वह उत्तम मार्दव धर्म विनय के पश्चात् प्राप्त होता है और जिसके पास विनय होती है वह सम्पूर्ण गुणों को प्राप्त कर लेता है। इसलिए विनयी बनें, विनयशील बनें, लघुवृत्ति बनायें और नम्र स्वभावी बनें तो कालान्तर में मार्दव भाव को भी प्राप्त कर सकते हो, उत्तम मार्दव धर्म को भी प्राप्त कर सकते हो। यदि आपके जीवन में अनुकूलता भी आये फिर भी आप अनुकूलता में फूले नहीं, अपने आप को भूले नहीं, इन्हीं सद्भावनाओं के साथ आप सभी लोगों के लिए शुभ आशीर्वाद।

अर्थ सहित कुछ छंद

मार्दवधर्मेण समस्तानि व्रतानि सम्पूर्णतां यान्तिः।
मार्दवधर्मेण मुक्ति स्त्री स्वयमेव दृढ़ालिङ् गनं दत्ते॥

अर्थ–मार्दव धर्म के होने पर सभी व्रत सम्पूर्णता को प्राप्त होते हैं और मार्दव धर्म से युक्त भव्यात्मा का मुक्ति लक्ष्मी स्वयं ही दृढ़ आलिंगन करती है।

क्रियते मृदुभावो योऽखिलाहंकारवर्जितः।
तद्धर्मलक्षणं ज्ञेयं, मार्दवं सत्वृपाकरम्॥

अर्थ–सम्पूर्ण अहंकार को छोड़कर जो मृदु भाव किया जाता है, वह प्राणियों पर कृपा करने वाला मार्दव धर्म का लक्षण जानना चाहिए।

इति सन्मृदुकाठिल्य, चित्तयो फलमंजसा।
शुभाशुभं विदित्वाऽहो, हत्वा कठिनमानसम्॥

अर्थ–इस प्रकार कोमल और कठोर परिणाम का वास्तविक फल जानकर कठिन परिणाम को नष्ट करके, सरल परिणाम को धारण करना चाहिए।

विश्वसत्ववृपाक्रान्तं, मार्दवं सुष्ठुयत्नतः।
वुर्वन्तु मुनयो धर्मं, शिवश्रीसुखवृद्धये॥

अर्थ–समस्त प्राणियों में कृपा करने वाला मार्दव धर्म प्रयत्न पूर्वक पालन करना चाहिए। मोक्ष लक्ष्मी के सुख की वृद्धि के लिए मुनि सदा ही मार्दव धर्म का पालन करते हैं।

मादर्ववेनापि सिद्ध्यन्ति, कार्याणि सुमुरूणाऽपि
सतो जलेन भिद्यन्ते, पर्वता अपि निष्ठुराः॥

अर्थ–मार्दव के द्वारा बड़े-बड़े कार्य भी सिद्ध हो जाते हैं जैसे पानी के द्वारा बड़े-बड़े निष्ठुर पर्वत भी भेद दिये जाते हैं।

यो नशे मृदुवाक्यः स्यात् सदर्पानपि विद्विषः।
स निहन्ति न सन्देहो, मयूरो भुजंगानिव॥

अर्थ–जिस व्यक्ति की मृदुवाणी है, उसके आगे दर्प से सहित शत्रु भी नष्ट हो जाते हैं इसमें संदेह नहीं है, जैसे मयूर की वाणी सुनकर अहंकारी सर्प स्वयमेव शांत हो जाते हैं।

मृदुत्वं सर्वभूतेषु कार्यं जीवेन सर्वदा।
काठिन्यं त्यज्यते नित्यं, धर्मबुद्धिं विजानता॥

अर्थ–जीव को सब प्राणियों पर निरन्तर मृदुता रखना चाहिए, धर्म के स्वरूप को जानने वाला कठोरता को हमेशा के लिए छोड़ देता है।

कर्त्तव्य मार्दवं दक्षै,र्मनोवाक्कायकोमलैः।
धर्मार्थं न च काठिन्यं, योगानां धर्मनपाशकृत्॥

अर्थ–बुद्धिमानों को मार्दव धर्म की प्राप्ति के लिए मन, वचन, काय को कोमल करना चाहिए, मन, वचन, काय की कठिनता धर्म के लिए नहीं, किन्तु धर्म को नाश करने वाली होती है।

सुखं प्राप्तुं बुद्धिर्यदि मतमलं मुक्तिवसतौ,
हितं सेवध्वं भो जिनपतिमतं पूतरुत्तितम्।
भजध्वं मा तृष्णां कतिपयदिनस्थायिनि थने,
यतो नायं भव्य! किमपि मृतमन्वेति विभवः॥

अर्थ–निर्दोष मुक्ति रूपी नगर के सुख प्राप्त करने की इच्छा है तो, हे भव्य! पवित्र और हितकारी जिनेन्द्र भगवान् के मत की सेवा करो। कुछ दिन स्थिर रहने वाले धन में तृष्णा मत करो, क्योंकि मरने के बाद वैभव तुम्हारे पीछे जाने वाला नहीं है।

अमृत दोहावली

भाव विशुद्ध हुये बिना, कैसा त्याग विराग।
मान करो मत त्याग का, करो मान का त्याग॥1॥

समझाने में है नहीं, है समझे में सार।
समझाने वाले कई, पड़े बीच मझधार॥2॥

विद्या विवादाय धनं मदाय, शक्ति परेषां पर पीडनाय।
खलस्य साधो विपरीतमेतत्, ज्ञानाय दानाय च रक्षणाय॥3॥

विद्या ददाति विनयं विनयाद् याति पात्रताम्।
पात्रत्वसात् धनमाप्नोति, धनाद् धर्म ततः सुखम्॥4॥

नानक नन्हें बने रहो, जैसे नन्हीं दूव।
बड़े झाड़ कट जाते हैं, दूव रहत है खूब॥5॥

कंचन तजना सहज है, सहज त्रिया का नेह।
मान बढ़ाई ईर्ष्या, दुर्लभ तजनी ऐह॥6॥

जो रहा किसी दिन बादशाह, वह पथ का आज भिखारी है।
जो रोटी को मुहताज रहा, वह बना राज दरबारी है॥7।

जिनकी पैदाइश में खुशियाँ, प्रातः आकाश गुंजाती थी।
कुछ देर बाद मैंने देखा, वे हा-हाकार मचाती थी॥8॥

अयं जिन परो वेत्ति, गणना लघुचेतसाम्।
उदार चित्तानां तु, वसुधैव कुटुम्बकम्॥9॥

यत्र विद्यज्जनो नास्ति श्लाघ्यस्तत्रल्पथीरपि।
निरस्त पादपे देशे, एरण्डोऽपि द्रुमायते॥10॥

आयु हीन नर को दवा, औषधि लगे न लेश।
त्यों ही मानी पुरुष को, वृथा धरम उपदेश॥11॥

मरघट में जाकर जगे, हर मन में वैराग्य।
हर नाते को फूँक दे, वह मरघट की आग॥12॥

कर्मों की गति मन क्या जाने, सबको नाच नचावे।
अपने-अपने कर्मों का फल, तीर्थंकर भी पावे॥13॥

कारज धीरे होत है, काहे होत अधीर।
समय पाय तरुवर फले, केतक सींचो नीर॥14॥

शुद्ध हृदय से कीजिए, मंदिर मांहि प्रवेश।
शुद्ध भाव से कीजिए, दर्शन वीर जिनेश॥15॥

सर्वोदयी चिन्तन

हे भव्य जीवों! यदि तुम अपनी आत्मा को गुणों का सागर बनाना चाहते हो तो सागर के समान झुकना सीखो, पर्वत के समान अकड़ मत दिखाओ।

मान-कषाय, विनय गुण एवं मार्दव धर्म के सम्बन्ध में कतिपय कथानक व दृष्टांत

1. **अभिमानी श्रीकण्ठ–** राजा श्रीकण्ड ने राज्योन्माद से प्रेरित होकर किन्हीं दिगम्बर मुनिराज को कुष्ठी कह दिया तथा तालाब में गिराकर पुनः निकाल दिया, उस पाप के फलस्वरूप श्रीकण्ठ राजा श्रीपाल की अवस्था में कुष्ठ रोगी हुआ, सागर में गिराया गया।
2. **अहंकारी रावण–** रावण ने त्रिखण्डाधिपति अर्धचक्री होने से, वैभव से मदोन्मत्त हो सीता का हरण किया। उसको सताया, बलात् अपनी पत्नी बनाना चाहा, किन्तु वैसा कर नहीं सका। अंत में अहंकार के कारण ही मरकर नरक गति को प्राप्त हुआ। **(विस्तार से पद्म पुराण से जानें)**
3. **अहंकारी राजा इन्द्र–** राजा इन्द्र ने अपने को स्वर्ग के देवाधिपति इन्द्र की तरह स्वयं को इन्द्र मान लिया। रावण से युद्ध में पराजित हो बंधन को प्राप्त हुआ। **(रामचरित या पद्म पुराण से विस्तार से जानें)**
4. **मानी सोमशर्मा–** राजा उपश्रेणिक पर बार-बार आक्रमण करता रहा। उद्ण्ड होकर उसके राज्य व धन को हरण किया, छली घोड़ा दे उपश्रेणिक को ठग लिया, अंत में बंधन को प्राप्त हुआ। **(श्रेणिक चरित्र से विस्तार से जानें)**
5. **अहंकारी राजा सिंहोदर–** हस्तिनापुर के राजा पद्मरथ पर कई बाद चढ़ाई की, जनता को कष्ट देता था, अंत में बालि, नमुचि, प्रहलाद एवं बृहस्पति के षडयंत्र में, फँसकर पराधीनता स्वीकार करनी पड़ी। **(विस्तार से जानने के लिए धर्मामृत ग्रंथ का स्वाध्याय करें।)**

6. **अहंकारी राजा यम**–किसी दिन मुनिराज के आगमन को सुनकर ज्ञानोन्मत्त हो वाद-विवाद करने गया, शास्त्रार्थ में पराजित हुआ, तदनन्तर मुनि दीक्षा ग्रहण की, मुनिराज के अपमान करने से ज्ञान का सब क्षयोपशम जाता रहा, दीर्घकाल में णमोकार मंत्र को भी याद नहीं कर सका। **(विस्तार से आराधना कथा कोश का स्वाध्याय करें)**
7. **इन्द्रभूति ब्राह्मण**–इन्हें ज्ञान का बहुत अहंकार था। अपने युगल अनुज के साथ गुरुकुल में 1500 शिष्यों को शिक्षा देता था। भगवान् महावीर स्वामी के समवशरण में विद्यमान मानस्तंभ को देखते ही मान चूर-चूर हो गया।
8. **मानी राजा देवरति**–जाति व कुल मद में प्रसिद्ध राजा देवरति अन्य मनुष्यों का तिरस्कार व अपमान करके, जाति व कुल से गर्वोन्नत होकर मरा और अपने ही महल में विष्ठा में कीड़ा हुआ। **(विस्तार से जानने के लिए धर्मामृत ग्रंथ का स्वाध्याय करें)**
9. **तमोन्मत्त मुनि**–ग्यारह अंग नौ पूर्व के पाठी भव्यसेन द्रव्य मुनि लिंग को धारण करने वाले, सम्यक्त्व व संयम से च्युत थे। शब्द ज्ञान की अधिकता होने पर भी लोकनिन्दा को प्राप्त हुए। एक छुल्लक जी ने तो उन्हें भव्यसेन से अभव्यसेन ही नाम दे दिया। **(विस्तार से जानने के लिए रत्नकरण्ड श्रावकाचार में वर्णित अमूढ़दृष्टि अंग की कथा का स्वाध्याय करे)।**
10. **रूपमानिनी लक्ष्मीमती**–मुनिराज को कड़वी तूंबड़ी का आहार दिया, जिससे मुनिराज समाधिमरण को प्राप्त हुए। यह एक सप्ताह में कुष्ठ रोग से पीड़ित हो गई, मरकर कई बार दुर्गतियों में गई, कालान्तर में रुक्मिणी हुई। **(विस्तार से जानने हेतु हरिवंशपुराण का स्वाध्याय करें।)**

11. **यौवन व सौंदर्य की मानिनी**–सिंधुमती, गंगदत्त श्रेष्ठी की पत्नी सिंधुमती ने समाधि गुप्त मुनिराज को कड़वी तूंबड़ी का आहार दिया। अहंकार के वशीभूत हो मुनिराज की विराधना व हत्या के पाप से नरकादि दुर्गतियों दुःखों को प्राप्त हुई। कालांतर में रोहिणी व्रत के प्रभाव से रोहिणी हुई। **(विस्तार से जानने के लिए रोहिणी व्रत कथा नामक ग्रंथ व वृहतकथा कोश ग्रंथ का स्वाध्याय करें।)**

12. **अहंकार युक्त कटोरी**–कलश के मस्तक पर रखी कटोरी सदैव रिक्त ही रहती है, चरणों में झुकने वाले बर्तन जलादि से परिपूर्ण हो जाते हैं। विनयी शिष्य, गुणवान् व कल्याणमार्ग के पथिक होते हैं, अविनयी भवसागर में ही डूब जाते हैं।

13. **चन्द्रगुप्त की विनयशीलता**–अंतिम श्रुतकेवली भद्रबाहु स्वामी की विनय भक्ति व सेवा करके उन्होंने देवों से भी पूज्यता को प्राप्त किया तथा आत्मा के अपरिमित वैभव को पाने में सफल हुए।

14. **विनयशील श्रीराम**–विनय, समर्पण, श्रद्धा व भक्ति आदि गुणों से युक्त मर्यादा पुरुषोत्तम राम अपने पिता की आज्ञा पालन करने से, बड़ों की विनय करने से, मुनिराजों की सेवा भक्ति करने से आत्मकल्याण को प्राप्त हुए। **(विस्तार से पद्मपुराण आदि शास्त्रों से जानें।)**

15. **विनयगुण युक्त पुष्पदंत, भूतबलि** अपने शिक्षा गुरु धरसेन स्वामी जी की विनय करने से, सेवा भक्ति करने से, आज्ञा का अनुपालन करने से महान् संत बने, उन्होंने ही षट्खण्डागम आदि ग्रंथों की रचना की।

16. **विनयी शिष्य नारद**–उपाध्याय क्षीर कदम्ब गुरु के पास नारद, पर्वत और वसु पढ़ते थे। नारद विनयशील व आज्ञाकारी

थे। अतः समस्त विद्याओं में निपुण हुए तथा कालांतर में स्वर्ग को प्राप्त हुए। अविनयी शिष्य पर्वत व वसु अज्ञानी मूढ़ ही रहे, अंत में नरक में गये। **(विस्तार से हरिवंशपुराण आदि से जानें।)**

17. **मार्दव धर्म से युक्त पिहितास्रवादि मुनिराज**–अपने स्वाभावित गुण को प्राप्त करने वाले पिहितास्रव आदि अनेक मुनिराज हुए हैं जो कि उस धर्म की आराधना व अनुभव करके आत्म कल्याण को प्राप्त हुए।

18. **विनयी एकलव्य**–अपनी श्रद्धा, भक्ति, विनय व समर्पण के कारण भील पुत्र एकलव्य मिट्टी की द्रोणाचार्य की मूर्ति के सम्मुख धनुष विद्या का प्रसिद्ध धनुर्धारी हुआ। जबकि अहंकार से युक्त दुर्योधन साक्षात् द्रोणाचार्य से शिक्षा प्राप्त करके भी वैसा नहीं बन सका।

19. **मार्दव धर्मधारी वृषभादि तीर्थंकर**–अनादिकाल से आज तक जितने भी तीर्थंकर हुए, सभी ने उत्तम मार्दव धर्म को प्राप्त किया और समस्त कर्मों को क्षय करके सिद्धशिला/मोक्ष को प्राप्त किया।

20. **भरतेशादि महापुरुष**–भरतेशादि चक्रवर्ती, भुजबलादि कामदेव, श्री विजयादि बलभद्र एवं मोक्षगामी सभी महापुरुष विनय व मार्दव धर्म को पाकर ही आत्म-वैभव को प्राप्त हुए। जैनागम में मान, कषाय, विनय गुण व उत्तम मार्दव धर्म सम्बन्धी सहस्रों उदाहरण हैं, शास्त्र स्वाध्याय करके वहाँ से जानें।

मान-कषाय व उत्तम मार्दव धर्म के सम्बन्ध में कतिपय छंद

फूले-फूले मत फिरो, यामें करो न भूल।
पहले तोड़े जात हैं, फूले-फूले-फूल।।1।।

मान बढ़ाई कारणे, जे धन खर्चें मूढ़।
मरिकें हाथी होंय वे, नीचे लटके सूढ़।।2।।

मान करता सूर्य है, क्षितिज पर चढ़ते हुए।
शाम को देखा उसी को, सिर झुका ढलते हुए।।3।।

आज कब्र में सोते हैं, पैर फैलाकर वो।
कल जिनका सेहरा था, जमीं से आसमां तक।।4।।

मान पतन का मूल है, दान कीर्ति का स्त्रोत।
ज्ञान आत्म की ज्योति है, ध्यान भवोदधि पोत।।5।।

बकरी मैं-मैं करत है, अपनी खाल खिंचाय।
मैना नित मैं ना कहे, मेवा-मिश्री खाय।।6।।

विनय बिना विद्या नहीं, विद्या बिन नहीं ज्ञान।
ज्ञान बिना कहुँ सुख नहीं, देखो सब जब छान।।7।।

झुकता तो वही है, जो जीवित इंसान है।
अकड़ तो आखिर, मुर्दे की पहचान है।।8।।

झुके तो आमा आँवली, झुके तो दाड़िम दाख।
एरण्ड बिचारा क्या झुके, जाकी ओछी साख।।9।।

फले तरु सब ही झुके, जामुन आम अनार।
शुष्क ठूँठ वह क्या झुके, जिस पर पत्ते चार।।10।।

बड़ा भया तो क्या हुआ, जैसे पेड़ खजूर।
पंथी को छाया नहीं, फल लागे अति दूर॥11॥

बड़े-बड़ाई ना करें, बड़े न बोलें बोल।
हीरा मुख सों कब कहे, लाख हमारो मोल॥12॥

मान महा विष रूप, करहि नीच गति जगत में।
कोमल सुधा अनूप, सुख पावै प्राणी सदा॥13॥

कुदरत को नहीं पसंद है, सख्ती इंसान की।
इसलिए न लगाई उसने, हड्डी जवान की॥14॥

इक लख पूत सवा लख नाती, ता रावण घर दिया न बाती।
सोने का कोट, सागर सी खई ता लंका की जाति न पाई॥15॥

क्यों घमण्ड करता है मूरख, पाकर तू इस माया को।
क्या शाश्वत कोई रख पाया है, इन्द्र धनुष की छाया को॥16

नाममात्र निःशेष है, बचा नहीं अब वंश।
तीनों मानी मर गये, रावण, कौरव, कंस॥17॥

झुकने में गुण बहुत हैं, सदा झुको सब कोय।
मन विशुद्ध तन स्वस्थ है, अरि हू मित्रा होय॥18॥

मार्दव गुण का कोश है, मान पतन सोपान।
गुण गंभीर नित ही झुके, नहिं पत्थर शैतान॥19॥

वसुमद टारि, निवारि त्रिशठता, षट अनायत त्यागो।
शंकादिक वसु दोष बिना, संवेगादिक चित्त पागो॥20॥

शौरे दरिया से कहता है, समुद्र का शकून।
जिसमें जितना जर्फ होता है, वह उतना ही शांत है॥21॥

सज्जन झुकें सो आपको, परको झुके न कोय।
हिये तराजू तौलिये, झुके सौ भारी होय॥22॥

विनय मोक्ष का द्वार है, मान नरक का द्वार।
मान त्याग विनयी बनो, हो जाओ भव पार॥23॥

सदा न फूले केतकी, सदा न सावन होय।
सदा न यौवन थिर रहे, सदा न जीवे कोय॥24॥

उगै सो नित आथवे, फूले सो कुम्हलाय।
जन्मे सो निश्चय मरै, अमर कौन हो आय॥25॥

मान-कषाय, विनय गुण एवं उत्तम मार्दव धर्म के सम्बन्ध में कतिपय विचारणीय बिन्दु

1. विनयवान, पुत्र को देखकर पिता, शिष्य को देखकर गुरु, स्त्री को देखकर पति, सेवक को देखकर मालिक अत्यन्त प्रसन्न होते हैं।
2. संसारी प्राणी पूर्वबद्ध पाप कर्मों के उदय से कम, वर्तमान कालीन कषायों के परिणामों से अधिक दु:खी होता है।
3. अभिमानी व्यक्ति से कोई मित्रता करना नहीं चाहता है, उसके अकारण शत्रु बनते चले जाते हैं। अभिमानी सदैव निंदा को प्राप्त होते हैं।
4. अभिमान पापों का मूल है, पतन का सोपान है, शत्रुता का जनक है, अशांति का बीज है, सर्व गुणों को नष्ट करने वाला कुठार है।
5. अभिमानी व्यक्ति के व्रत, शील, तप, स्वाध्याय, संयम व ध्यान आदि साधना पूर्ण सफलता को तो प्राप्त होती ही नहीं है, कभी-कभी अनर्थ का ही कारण बन जाती है।
6. विनय परमार्थ का, अभिमान अनर्थ का कारण है, अब तुम्हें जो चाहिए, उसी को प्राप्त करने का प्रयत्न करो।
7. जैन दर्शन विनय पर आधारित है, इस सम्प्रदाय के मूल मंत्र या जगत् उद्धारक महामंत्र णमोकार में पाँच बार झुकने की बात कही है।
8. णमोकार और अहंकार दोनों एक साथ नहीं पल सकते और न ही एक साथ चल सकते हैं।

9. पद, पदार्थ, अर्थ, यौवन और सभी जड़ पदार्थों को प्राप्त करके भी जो अहंकारी नहीं होता, वही परमार्थी होता है।

10. जिसकी दृष्टि द्रव्य की ओर, तत्त्व की ओर, निज स्वभाव की ओर व संसार की अनित्यता की ओर है वह पर्यायों के ऊपर स्वप्न में भी अभिमान नहीं करेगा।

11. जो मान पत्र को पाने को लालायित रहते हैं, प्राप्त कर हर्षित भी होते हैं, यदि कोई आपको क्रोध पत्र दे दे तब आपकी क्या दशा होगी?

12. उत्तम कुल में जन्मा राजा भी कालांतर में मान-कषाय के कारण विष्ठा में कीड़ा हो जाता है तथा विनयशील कीड़ा भी देव हो जाता है।

13. अनादिकाल से चार गति, चौरासी लाख योनि एवं एक सौ साढ़े निन्यानवे लाख कोटि कुलों में जन्म लेने वाला आज जाति का घमण्ड करता है तो वह हास्य का ही पात्र होता है।

14. अंतर्मुहूर्त काल पूर्व को कामदेव सम सुन्दर था, अंतर्मुहूर्त के अनन्तर ही कुष्ठ से पीड़ित हो सकता है, ऐसी दशा में शरीर की सुंदरता का अहंकार करना व्यर्थ है।

15. गामा नामक पहलवान अपने हाथ के बल से चलती हुई बस को रोक देता था, कुछ समय बाद अपने चेहने पर बैठी मक्खी भी न उड़ा सका।

16. अपनी सिंह सम गर्जना से शत्रु के छक्के छुड़ाने वाले, पैर मारकर जमीन में पानी निकालने वो एक दिन के दस्त लग जाने से भूमि पर पड़े देखे हैं, स्वबल से अब खड़े भी नहीं हो सकते।

17. भरत चक्रवर्ती को भी अपने नाम की प्रशस्ति वृषभाचल पर लिखवाने हेतु किसी अन्य नाम को मिटाना पड़ा, इतने चक्रवर्ती

हो गये तुम किस बात का घमण्ड करते हो?

18. कुएँ, नदी, तालाब, झील आदि से जब बर्तन (पात्र) को जल-अमृत प्राप्त करना है, तब पात्र को (प्राप्त करने के अभिलाषी को) नियम से झुकना ही पड़ता है।

19. वृक्ष से गिरे हुए पत्ते, कुम्हलाये हुए फूल, जीर्ण-शीर्ण अधोमुखी पड़े वस्त्रों को देखकर, तुम भी अपने धराशायी होने का अनुमान लगा सकते हो।

20. विनय, शिष्टाचार व मार्दव धर्म को वे ही महानुभाव धारण कर सकते हैं जो महान् हैं।

21. धर्म का प्रारम्भ नम्रता से झुकने से ही होता है, अकड़ करके खड़ा व्यक्ति धर्मात्मा नहीं हो सकता।

22. अहंकारी को जिनबिम्ब में भगवान् नहीं, पत्थर दिखता है तो विनयी व श्रद्धालु भक्त को जिनबिम्ब में भगवान् दिखते हैं, पत्थर नहीं।

23. सारी दुनिया को पानी पिलाने या झुकाने वाला अंत में प्यासा ही मर गया, मृत्यु के समय कोई पास में भी नहीं था।

24. दाँत कड़े होते हैं, इसलिए जन्म के बाद आते हैं और मृत्यु के पहले ही चले जाते हैं। जीभ कोमल व नम्र होती है, अतः जन्म से पहले ही आ जाती है और मृत्यु पर्यंत साथ रहती है।

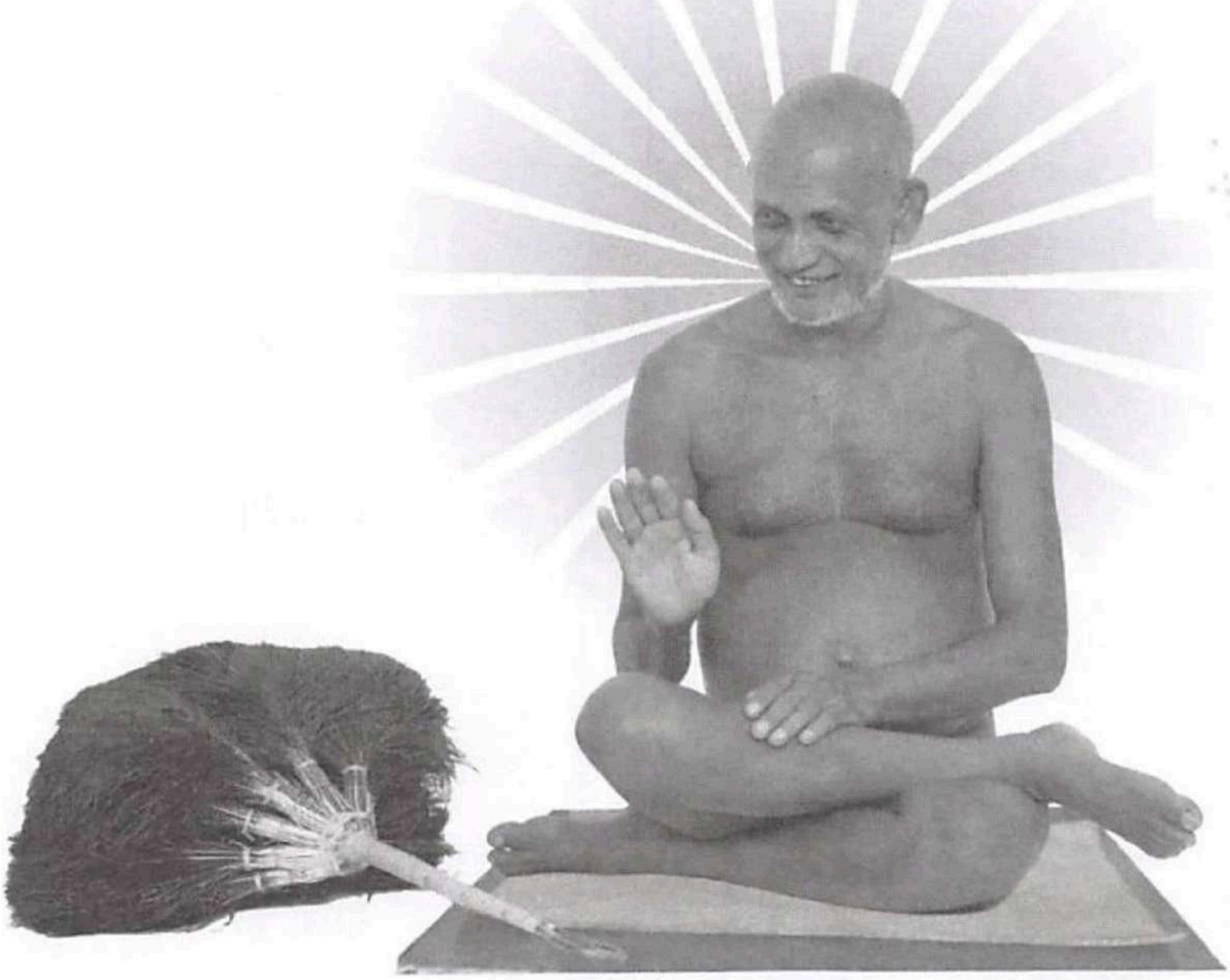

उत्तम आर्जव

कुडिलभावं चागिच्चु,
तिजोगेहिं अज्जवं हु धारंति।
अज्जवं धम्म-मूलो,
णिग्गंथ-सिवमग्गी साहू।।

दशामृत

अहसास अंतस का

रंचक दगा बहुत दुःखदानी

महानुभाव!

आज पर्यूषण पर्व का तृतीय दिन है, अभी विगत दिवसों में धर्म के दो लक्षणों के बारे में देखा। धर्म का प्रथम लक्षण ''उत्तम क्षमा'' जो कि चेतन का स्वभाव है उसके बारे में भी देखा था किन्तु उस उत्तम क्षमा धर्म की प्राप्ति बिना क्रोध को जीते हुए नहीं हो सकती। जब क्रोध आत्मा के अन्दर विद्यमान रहता है तब तक क्षमा का अनुभव, क्षमा की प्रतीति, क्षमा की अनुभूति, क्षमा का आनंद इस चेतना को नहीं आ पाता है। ''उत्तम मार्दव'' धर्म भी चेतना का स्वभाव है किन्तु उस उत्तम मार्दव धर्म की प्राप्ति, बिना मान कषाय को शमन किये हुए बिना मान का अभाव किये हुए असंभव है। अंधकार और प्रकाश दोनों एक साथ नहीं रह सकते जहाँ अंधकार और प्रकाश दोनों एक साथ नहीं रह सकते जहाँ अंधकार होता है वहाँ प्रकाश का सद्भाव नहीं रह सकता। कषाय चेतना के स्वभाव का विध्वंसक है।

> **सर्वोदयी चिन्तन**
>
> मन, वचन, काय की क्रिया के साथ आत्मा के परिणामों का अत्यंत सरल हो जाना ही आर्जव भाव है। यह भाव आत्मलीनता के अभ्यासी व इच्छुक के लिये ही सम्भव है।

''आतम के अहित विषय कषाय, इनमें मेरी परणति न जाये''

विषय और कषाय मुख्य रूप से आत्मा का घात करने वाले हैं। पहले

क्रोध कषाय को देखा था। हम क्रोध कषाय को दूर कर दें तो क्षमा को प्राप्त कर सकते हैं, मान कषाय को दूर करके उत्तम मार्दव धर्म को प्राप्त कर सकते हैं, उत्तम मार्दव धर्म बिना मान के हटाये नहीं हो सकता। आज तृतीय कषाय को जीतने का प्रयास करना है क्योंकि तृतीय कषाय को जीते बिना उत्तम आर्जव धर्म को प्राप्त नहीं कर सकते। उत्तम आर्जव धर्म भी श्रमणों का धर्म है, मुनिराज का धर्म है, श्रावक इसे प्राप्त नहीं कर सकता। इसके लिए सर्वप्रथम यह आवश्यक है वह अपनी मायाचारी को कुछ कम करे। अभी उसका जीवन मायाचारी का अजायबघर बना हुआ है, उसके जीवन में मायाचारी कूट-कूट के भरी है। कल मान के बारे में देखा था, मान मीठा बदमाश है। यह मायाचारी इतनी स्फूर्ति वाली है कि कहीं से भी प्रवेश कर जाती है। इसका रूप कभी-कभी देखने में आता है और कभी-कभी यह अपने रूप को अदृश्य कर लेती है। प्राय: कर लोग मायाचारी करते हुए यह कहते हैं कि हम तो बहुत सरल हैं किन्तु सामने वाला मायाचारी करता है। अपनी मायाचारी किसी को दिखायी नहीं देती कभी-कभी तो व्यक्ति ऊपर से सरल होकर भी अन्दर में मायाचारी को पुष्ट कर लेता है, ऊपर से सरलता का लिबास पहन करके ऊपर से सरलता का मुखोटा पहन करके, ऊपर से सरलता का लेबल चिपका करके अपने आप को सरल मान लेता है, किन्तु उसके अंदर में गरल भरा है, जहर भरा रहता है।

सर्वोदयी चिन्तन

दीर्घ संसारी जीवों के परिणामों का सरल होना उसी प्रकार असम्भव है जैसे अग्नि में शीतलता खोजना, जल मंथन में नवनीत व बालू पेलने से तेल की प्राप्ति।

महानुभाव! जब तक अंदर में सरलता नहीं आयेगी तब तक बाहर की सरलता कार्यकारी नहीं हो सकेगी, बाहर से कितना भी प्रयास किया जाये, बाहर से सरल हो जाने पर भी चेतना के गुण प्राप्त नहीं होते हैं। यदि कोई व्यक्ति बाहर से बिल्कुल सरल और

सीधा है, किन्तु अंतरंग में कपट भरा हुआ है तो वह व्यक्ति अपना कल्याण नहीं कर सकता यदि सर्प बाहर से काँचली को छोड़ दे और अंदर से जहर नहीं छोड़े तब भी सर्प, सर्प ही कहलायेगा। काँचली को छोड़ने के उपरांत सर्प यदि डस लेता है तो भी व्यक्ति मर जायेगा उसका विष चढ़ जायेगा, केवल काँचली छोड़ने मात्र से उसका जहर दूर नहीं होता। कुछ लोग शरीर में बहुत सरल बन जाते हैं, वचनों में बहुत सरल बन जाते हैं किन्तु शरीर और वचनों की सरलता कल्याण नहीं कर सकती, जब तक परिणाम सरल न हों। किन्तु उस सरलता को प्राप्त करना सरल नहीं है। सरल होना सरल नहीं, बहुत कठिन है। यह बात भी सत्य है कि सरलता कठोर बनकर प्राप्त नहीं की जा सकती है। सरल व्यक्ति के लिए सरलता पाना बहुत सरल है, कठोर/कठिन व्यक्ति के लिए कठिन है।

महानुभाव!

जब दो कषायों को जीतने का आपने प्रयास किया था और सफल हुए तो आज तृतीय कषाय, तीसरे शत्रु को भी जीतने का प्रयास करना है क्योंकि जिसके हाथ में आधी विजय आ चुकी, जिसने कषायों की आधी सेना को परास्त कर दिया वह पूरी सेना को भी परास्त कर सकता है और आपको बहुत सावधान हो जाना चाहिए, क्रोध को जीता था उस दिन आपने संकल्प लिया था चाहे कुछ भी हो जाए "कोई एक गाल पर तमाचा लगा दे किन्तु फिर भी मैं क्रोध नहीं करूँगा। चाहे भले ही कोई मुझे दोषी सिद्ध करने का प्रयास करे, कोई मेरे ऊपर झूठा आरोप भी लगा दे फिर भी मैं उस पर क्रोध नहीं करूँगा।" मान के सम्बन्ध में देखा था चाहे कोई मेरी कितनी भी प्रशंसा करे किन्तु मैं फूलूँगा

सर्वोदयी चिन्तन

जब तक परिणामों में सरलता व सहजता नहीं आई, तब तक संसार के अनंतानंत मार्गों में गमन करना तो संभव है किंतु आत्मकल्याण के मार्ग में असम्भव है, निज गृह में प्रवेश बिना सरलता के नहीं हो सकता।

नहीं, प्रशंसा को सुनने के उपरांत भी मेरे परिणाम सम रहेंगे। अत: आज भी यही संकल्प लेंगे, मन, वचन, काय से मन की सरलता को ज्यों की त्यों कायम रखूँगा, मेरी जो ईमानदारी है वह कहीं चली न जलाए। जिस व्यक्ति के पास ईमानदारी नहीं होती, सरलता नहीं होती, सहजता नहीं होती है, समस्त गुण होते हुए भी वह व्यक्ति गुणों से रिक्त माना जाता है। मायाचारी करने वाला व्यक्ति जीवन भर दु:खी रहता क्योंकि मायाचारी काँटे के समान होती है जो उसके जीवन में चुभती रहती है। आचार्यों ने जहाँ तीन प्रकार की शल्य कही है वहाँ उन्होंने मान को शल्य नहीं कहा, लोभ को शल्य नहीं कहा, माया को शल्य कहा है क्योंकि मायाचारी एक काँटे के समान है, वह बाहर दिखायी नहीं देती किन्तु अंतरंग में तीर सी चुभती है। यदि तुमसे कोई गलती हो गई तो उस अपराध को छिपाने का जितना प्रयास करते जाओगे, उतने दु:खी होते जाओगे फिर भी उस अपराध को छिपा नहीं पाओगे। जो व्यक्ति मायाचारी करते हैं वे व्यक्ति जीवन में कितनी भी साधना कर लें, तप, त्याग कर लें ऐसे व्यक्ति उसके फल को कभी प्राप्त नहीं कर पाते। थोड़ी सी मायाचारी करने वाले वे मृदुमति मुनि महाराज तिर्यंच अवस्था को प्राप्त हो गये क्योंकि मायाचारी तिर्यंच अवस्था को प्राप्त कराने वाली होती है। आचार्य भगवन् उमा स्वामी महाराज ने तत्त्वार्थ सूत्र ग्रंथ में कहा है-

सर्वोदयी चिन्तन

यदि आप किसी मूर्तिक वस्तु को तीन लैंसों में देख रहे हैं तो तीनों के छेद एक ही सीध में हों तभी वस्तु दृष्टिगोचर हो सकेगी अन्यथा नहीं, फिर स्वभाव से अमूर्तिक आत्मा की मन, वचन, काय की वक्रता के रहते हुये अनुभूति कैसे हो सकती है?

''मायातैर्यग्योनस्य''

मायाचारी करने से तिर्यंच अवस्था का बंध होता है। कुछ लोग समझते हैं कि मेरी मायाचारी कोई जानता नहीं लेकिन ध्यान रखें मायाचारी पकड़ में जल्द ही आ जाती है, कभी-कभी तो स्वयं प्रकट हो जाती है। ज्यों-ज्यों छिपाने का प्रयास करता है त्यों-त्यों

प्रकट होती चली जाती है। क्योंकि उसका लेबल अधिक समय तक नहीं टिक पाता, कपूर की गंध की तरह उड़ जाता है। यदि प्याज के ऊपर कपूर की गंध डाल दी जाये तो वह प्याज कपूर नहीं हो जायेगी। यदि किन्हीं सड़े-गले पदार्थों पर सेन्ट डाल दी जाए तो वे सड़े-गले पदार्थ थोड़ी देर बान पुनः बदबू देने लगेंगे। सोने का पानी तुम चढ़ा लेते हो, वह सोने का पानी दीर्घकाल तक नहीं टिक सकता वह छूट जाता है, पुनः तांबा दिख कर सामने आ जाता है, लोग कहते हैं– तब क्या करोगे जब तुम्हारी कलई खुल जायेगी फिर तुम क्या करोगे। अभी तुमने ऊपर से जो कलई कर ली है जब वह खुल जायेगी, धुल जायेगी तो तुम्हारी औकात सामने आ जायेगी।

महानुभाव!

इसलिए मायाचारी को जो पहले ही दूर कर लेता है, ऐसा व्यक्ति हमेशा सुखी रहता है। मायाचारी व्यक्ति को पल-पल पर अपमान, तिरस्कार सहन करना पड़ता है। मायाचारी व्यक्ति की जब माया प्रकट हो जाती है तो उसकी आँखें नहीं उठ पाती। वह शर्मिन्दा हो जाता है और जो पहले से ही clear, honest होता है उसके लिए कोई दिक्कत नहीं है। जो कहता है गलती हुई है, मुझसे अपराध हुआ है अब जो कुछ भी प्रायश्चित है मैं लेने के लिए तैयार हूँ। किन्तु जिसने छिपा लिया है गलती को, वह सोचता है मेरी गलती किसी के सामने प्रकट न हो जाए। चोर के पाँव ज्यादा नहीं होते। यदि वह कहीं जा रहा है तुम जोर से उसे आवाज लगाओगे तो वह काँप जायेगा, यदि पत्ते की भी आवाज आयेगी तो वह समझेगा कोई मेरा पीछा कर रहा है, सामने बुत भी खड़ा होगा तो उसे लगेगा कोई मुझे देख रहा है। जो छल-कपट है वह त्याग

सर्वोदयी चिन्तन

उत्तम पुरुष ही आर्जव धर्म को प्राप्त कर सकते हैं, जिन्हें तिर्यंच गति के दुःख या स्त्री पर्याय की विषम वेदनाओं को दीर्घकाल तक सहन करना है, वे आर्जव धर्म को स्वप्न में भी नहीं पा सकते।

करने के योग्य है। यदि त्याग आपने एक बार कर दिया गन्दगी की तरह छोड़ दिया तो आपके जीवन में सुख का मार्ग भी प्रारम्भ हो सकता है, क्योंकि चेतना को प्राप्त करने का केवल एक ही मार्ग है, अनेक मार्ग नहीं। सर्प सागर में चाहे कितना भी भ्रमण कर ले उसे सीधा होने की आवश्यकता नहीं, संसार में चलता है तो टेड़-मेड़ा ही चलता है। तिरछा ही चलता है उसकी वक्र ही गति होती है परन्तु सर्प जब भी अपने बिल में प्रवेश करेगा तो उसे सीधा होना ही पड़ेगा। जब सर्प अपने बिल में वक्र होकर, तिरछा होकर प्रवेश नहीं कर सकता तो तुम अपने बिल में, घर में, अपनी चेतना में कैसे प्रवेश करोगे वक्रता के साथ? और तुम्हारे पास तो तीन-तीन वक्रतायें हैं– मन कुछ सोच रहा है, वचन कुछ कह रहा है और शरीर से क्रिया कुछ और हो रही है ऐसा होता है किन्तु ऐसा नहीं होना चाहिए। कभी-कभी लोग कहते हैं महाराज मैं चालीस वर्ष से पूजा कर रहा हूँ किन्तु मेरे दु:खों का अंत नहीं हो रहा है। किन्तु मुझे लगता है उसने चालीस वर्षों तक पूजा की ही नहीं। यदि एक वर्ष भी पूजा कर लेता, एक दिन भी पूजा कर लेता, एक बार भी पूजा कर लेता तो उसके जीवन में अभूतपूर्व आनंद की प्राप्ति हो जाती ऐसा आनंद best happiness जो उसने कभी प्राप्त नहीं किया। क्योंकि आनंद तब आता है जब हम तीनों योगों से युक्त हो पूजा करें। कहीं ऐसा तो नहीं पूजा में आप धूप डाल रहे हैं, वहाँ धूप सुलगती जाये यहाँ पर तुम्हारे मन सुलगता जाये। यदि वचनों से व मधुर वाणी से आप पूजा कर रहे हैं, शरीर से हाथ भी जोड़ रहे हैं, सिर भी झुका रहे हैं, पर मन में कुछ और भरा हुआ है तो मुझे लगता है वह पूजा, पूजा नहीं है वह पूजा का ढोंग है, पूजा का प्रदर्शन है, वह पूजा का दिखावा है।

सर्वोदयी चिन्तन

आर्जव धर्म को प्राप्त करने से पूर्व हम छल-कपट एवं मिथ्या भाषण का त्याग करें। मिथ्याभाषी एवं मायाचार में प्रवृत्त मनुष्य को आर्जव धर्म रुपी परमात्मा के दर्शन दुर्लभ ही होते हैं।

महानुभाव!

जो यथार्थ व्यक्ति होता है, जो सत्यार्थ व्यक्ति होता है, तीनों योगों से पूजा करने वाला होता है ऐसा व्यक्ति पूजा के फल को प्राप्त कर लेता है।

जो मन से पूजा करते हैं, पूजा उनको फल देती है।
प्रभु पूजा भक्त पुजारी के, सारे संकट हर लेती है॥

यदि पूजा मन से की गयी है तो पूजा का फल प्राप्त हो जाता है। पूजा केवल तन से या वचन से की गयी है तो फल केवल वचन और तन को ही मिलता है। जैसा आपने शास्त्र में देखा था। यदि आपने साधना तन से की है तो तन पूज्यता को प्राप्त हो जाता है, चेतन, मन, वचन, पूज्यता को प्राप्त नहीं होंगे। यदि पूजा तुमने वचन से की है तो लोग तुम्हारे वचनों की प्रशंसा वचन के द्वारा कर देंगें, तुम्हारा चेतन पूज्य नहीं हो सकेगा। यदि तुमने पूजा मन से की है तो लोग तुम्हारी मन से पूजा करेंगे किन्तु चेतना अभी पूज्य नहीं हो पायी किन्तु जिस पूजा में तुम्हारा मन, वचन, तन, चेतन, धन निश्छलता के साथ समर्पित हो जाता है तो तुम्हारा सब कुछ पूज्य हो जाता है, आत्मा का एक-एक प्रदेश पूज्य हो जाता है।

महानुभाव!

उत्तम आर्जव धर्म ही परम पवित्र है वह आर्जवता है, सरलता, सहजता है उसे प्राप्त करने के लिए यदि तुम कदम बढ़ाना चाहो तो बढ़ा लो, ऐसा नहीं सोचना कि महाराज ने कहा था कि वह उत्तम आर्जव धर्म तो मुनि महाराज को ही प्राप्त हो सकता है और अभी हम मुनि बने नहीं तो उत्तम आर्जव धर्म को

सर्वोदयी चिन्तन

जो पुरुष विश्वासघात, मायाचारी, छल-कपट, मिलावट आदि करके सुख-शांति को प्राप्त करने की कल्पना करते हैं, वे अग्नि में शीतलता, बालू में तेल, नरक में शुद्धोपयोग, गृहस्थी में निर्विकल्प ध्यान, गधे सींग की तरह हास्यास्पद ही हैं।

कैसे प्राप्त करें? चलो छोड़ो। नहीं! उत्तम आर्जव धर्म को प्राप्त करने का प्रयास तो किया जा सकता है और उत्तम आर्जव धर्म सम्पूर्णता में प्राप्त न हो तो तब भी कुछ योगों की क्षण भर की भी सरलता, सहजता प्राप्त कर ली, योगों को आपने थोड़ा भी सरल बना दिया तो आपका परिचय सीधा आपकी आत्मा और परमात्मा से हो जायेगा। यदि कहीं आपकी दृष्टि में Speed Breaker आ गया कहीं विराम है तो आप वहाँ तक पहुँच नहीं पाओगे आपकी गति वहीं पर रुक जायेगी। हमें स्वयं को परमात्मा से जोड़ना है। आत्मा के तार परमात्मा को बिल्कुल सीधा जोड़ना है। यदि वहाँ से (मीटर से) स्टार्ट हो जायेगा तो यह बल्ब भी जल जायेगा। इस चेतना में भी सुख, आनंद, ज्ञान का प्रकाश हो जायेगा। यदि Connection नहीं जुड़ा बीच में wire cut हो गया तो अंधकार ज्यों का त्यों बना रहेगा, अतः उस Connection को जोड़ने का प्रयास करना है यहाँ तो तीन एक साथ जोड़ना है।

सर्वोदयी चिन्तन

आत्मा के परिणामों की गतिशीलता में बड़ी विचित्रता है। कभी परिणाम अत्यंत निर्मल हो जाते हैं, कभी अत्यंत मलिन हो जाते हैं, न चाहते हुये भी परिणाम अत्यंत संक्लेशित हो जाते हैं, हम इसे कभी-कभी जान भी नहीं पाते।

तीन पाइप आपके हाथ में हैं। पहले पाइप में बड़ा छेद है, दूसरे में छोटा छेद है, तीसरे में और छोटा छेद है, अब आप सामने वाली वस्तु देखना चाहते हैं, तीनों पाइपों में लेस लगे हुए हैं। यदि तीनों पाइप आपके Correct हैं आगे पीछे नहीं हो रहे हैं तो मुझे लगता है सामने वाली चीज सरलता से दिखाई दे सकती है, यदि तीनों पाइपों में कहीं अंतर आ रहा है तो सामने वाली चीज Clear दिखाई नहीं दे सकेगी। तीनों छेद बिल्कुल एक हो जाना चाहिए। यदि कभी जब Photography आप करते हो तो एक आँख को बंद करके, और दूसरे नेत्र की दृष्टि उस लेंस में से निकालते हैं शरीर की Photography करने के लिए जब तुम चेतना की Photography

करना चाहते हो, चेतना के इस कागज पर परमात्मा की Negative प्राप्त करके आप चित्र बनाना चाहते हो उसके लिए तीनों योगों को एक करने की केवल आवश्यकता ही नहीं अनिवार्यता भी है।

महानुभाव!

जैसे पूजा में आप पढ़ते हो:-

''उत्तम आर्जव रीति बखानी, रंचक दगा बहुत दु:ख दानी''

''यानि उत्तम आर्जव धर्म उत्तम रीति है। यदि क्षणभर भी दगा किया जाता है कपट किया जाता है तो वह भी दु:ख देने वाला होता है। वह दगा क्रमश: बढ़ता जाता है, बढ़ता जाता है और दगा बढ़ते-बढ़ते बहुत बड़ा हो जाता है। यदि बैंक में आपने थोड़ा-थोड़ा धन डाल दिया, यदि उस धन को तुम पाँच साल बाद निकालते हो दुगुना हो जाता है, बीस साल के बाद निकालते हो बीस गुना हो जाता है। आपने छोटा सा, रंचक सा दगा किया था किन्तु जब वह फल देगा तो बहुत बड़ा हो जायेगा। आप उस समय कहेंगे अरे! हमने इतना सा कसूर किया था। यहाँ तो कंकरी के चोर को कटार मारी जा रही है। हमने तो थोड़ी सी गलती की थी इसके लिए इतना बड़ा प्रायश्चित, नहीं ऐसा नहीं हो सकता। किन्तु आपको यह नहीं मालूम उसे Punishment मिलने में इतनी देर हो गयी थी। जब गलती हुई थी उसी समय प्रायश्चित ले लिया होता तो हो सकता एक कायोत्सर्ग में निपट जाते किन्तु आपने उस समय गलती को गलती नहीं माना, गलती को छिपाने का प्रयास कर पुन: गलती की, गलती पर गलती की, गलती बढ़ती गई। जब आपसे पूछा गया कोई गलती तो नहीं की। 'नहीं' हमने गलती कहाँ की, हम गलती करें ऐसा तो कभी

सर्वोदयी चिन्तन

यदि तुम परमात्मा को सर्वज्ञ व सर्वदर्शी मानते हो तो चोरी क्यों करते हों? प्रत्येक बुरे कार्य व परिणाम को छुपाने का यत्न क्यों? इसका आशय यह है कि आपका परमात्मा सर्वदशी या सर्वज्ञ नहीं है यदि है तो आपने उसे उस रुप में स्वीकार नहीं किया- अन्यथा पाप को छुपाते क्यों?

हो ही नहीं सकता। ठीक है कोई बात नहीं जब गलती सामने प्रकट हो जायेगी तब मालूम हो जायेगा गलती किसने की। उस गलती का जब प्रायश्चित बहुत सारा मिलेगा और प्रायश्चित किसी और के द्वारा देय नहीं। यदि लोक व्यवहार में गुरुजनों के द्वारा या गृहस्थाचार्य द्वारा दिया जाता है जो लोक व्यवहार का प्रायश्चित है किन्तु अंतरंग का प्रायश्चित उस समय किये हुए अपराध से आपका जो कर्म बंध होगा, जब वह कर्म उदय में आयेगा वह तुम्हारा प्रायश्चित कहलायेगा।

सर्वोदयी चिन्तन

सरलता एक ऐसा मंगल द्वार है जिसके माध्यम से आत्मा में असीम गुणों का प्रवेश हो जाता है। सरल चित्त प्राणी ही अपूर्व सुख शांति का अनुभाव करते हैं जो कि कुटिल हदय वालों के लिये असंभव है।

महानुभाव!

उस कपट को दूर करना है।

'कपट न कीजै कोय, चोरन के पुर ना बसे,
सरल स्वभावी होय, ता के घर बहु सम्पदा'

उसके घर बहुत सम्पत्ति आती है उस सम्पत्ति को तुम कपट के माध्यम से ग्रहण करना चाहते हो और सौगन्ध भी खाते जाओगे। ये वस्तु दस रूपये की आयी है और साढ़े नौ में तुम्हें दे रहे हैं किन्तु तुम्हारे लिए साढ़े नौ की है किसी और के लिए नहीं। यह मालूम नहीं कि यह वस्तु साढ़े छः रूपये की आयी है और तुम दस की सौगन्ध खा कर दे रहे हो यदि दस की आती तो मुझे लगता है, साढ़े नौ की आप नहीं बेचते, दस की आती तो उस बीस की बेचने का प्रयास करते, 15 की बेचने का प्रयास करते, 20 प्रतिशत मुनाफा तो आप चाहते ही हैं, इससे कम में तो व्यापार आज चलता ही नहीं है। लेकिन जो व्यक्ति ईमानदार होते हैं, सरल होते हैं वे कहते हैं, 'एक रेट की दुकान' एक रेट में मिलता है चाहे लेना होतो लो, नहीं तो वापिस चले जाओ। एक रेट की दुकान रखेंगे तो मुझे लगता है

ग्राहक तुम्हारे प्रति विश्वस्त हो जायेंगे और समझ लेंगे यह बहुत गहरा मुनाफा नहीं ले रहा है और जहाँ मोल भाव किया जाता है जिसने माँगे बीस उसने लगाये दस, तुमने कहा उन्नीस उसने कहा साढ़े दस बड़ी मुश्किल से सौदा पटते-पटते वह साढ़े चौदह में तय हो गया । इसलिये यदि एक दाम की दुकान होगी वह समझ जायेगा इसका मुनाफा सही है। 20 प्रतिशत, 25 प्रतिशत या 50 प्रतिशत फिक्स है इससे कम लेगा नहीं तो पुन: विश्वास हो जाता है। इससे ज्यादा भी न लेगा, इससे कम भी न लेगा। कहने का आशय यह है कि जो कपटी होता है वह चेतना की निधि को जला देता है। कपट अंतरंग से खोखला कर देता है, इस आत्मा की शक्ति को बिल्कुल नष्ट कर देता है। कपटी व्यक्ति के अंदर कोई उत्साह शक्ति नहीं होती, कोई उल्लास नहीं रहता। वह बिल्कुल बुझे दीपक के समान हैं, अंतरंग में कोई विशेषता है ही नहीं। यदि कोई कपटी व्यक्ति हो तो हमेशा उसका चेहरा बुझा-बुझा सा दिखेगा, चेहरे पर कभी रौनक नहीं दिखेगी कि चेहरे पर थोड़ी सी मुस्कुराहट आ जाये। नहीं, ऐसा लगेगा छ: महीने से भोजन नहीं किया, ऐसा लगेगा जैसे इसका परिवार खत्म हो गया हो, शोकाकुल सा बैठा रहेगा। वह मुस्कुरा भी नहीं पायेगा यदि कोई निश्छल व्यक्ति होगा, जो सरल, सहज स्वभावी होता है, मस्त रहता है, अपने आप में चैन से जीता है, उसे किसी प्रकार की चिन्ता नहीं। जो आगे है सो पीछे है, जो कुछ है सब प्रकट हैं जिसके जीवन की पुस्तक खुली है, उसे कहीं कभी विकल्प नहीं होता। उसके मन में कोई शल्य, भय नहीं होता वह तो निश्छल होता है और जिसको कुछ छिपाने की जरूरत होती है वह हमेशा भयभीत रहता है। कोई व्यक्ति भी सामने से आ जाये उसे लगता

सर्वोदयी चिन्तन

जो प्राणी अपने मन को साफ नहीं रखते, उनके धुले हुये वस्त्र एवं चमकता हुआ चेहरा और मधुर वाणी संसार वर्धक ही होती है। तन, वचन, वस्त्रों के साथ-साथ धन व मन की शुद्धि भी अनिवार्य है तभी चेतन शुद्धि की संभावना हो सकती है, अन्यथा नहीं।

है कोई टोक नहीं दे, कोई कह नहीं दे। उसे लगता है कि इसे मेरी गलती का अहसास न हो जाए, यदि इसने किसी से कुछ कह दिया, सबके सामने कुछ कह दिया तो मेरी इज्जत धुल जायेगी। कहीं सभा में भी जाता है, पीछे बैठ जाता है नीचे सिर करके बैठ जाता है, कोई देख न ले, वह मुर्दे के समान जीवन जीता है उसके जीवन में जोश, आनंद नहीं होता है।

सर्वोदयी चिन्तन
अपनी दृष्टि में तुम निश्छल बनने का पुरुषार्थ करो, दूसरों की दृष्टि में निश्चल बनने से जीवन सार्थक नहीं होगा।

महानुभाव!

आप सभी दसलक्षण पूजन में पढ़ते हैं–

कपट ना कीजे कोय, चोरन के पुर ना बसें।
सरल स्वभावी होय, ताके घर बहु सम्पदा।।
उत्तम आर्जव रीति बरवानी, रंचक दगा बहुत दुखदानी।
मन में होय सो, वचन उचरिये। वचन होय सो, तन सो करिये।।
करिये सरल तिहूँ जोग अपने देख निरमल आरसी।
मुख करे जैसा, लखे तैसा कपट प्रीत अंगारसी।
नहीं रहे लक्ष्मी अधिक छलकर, कर्म बंध विशेषता।
भय त्याग दूध बिलाव पीवे, आपदा नहीं देखता।।

कितनी अच्छी बात कही– 'जैसा तुम्हारे मन में आया, वैसा मुँह से कह दो। महाराज जैसा मन में आया वैसा कह देंगे तो सिर पर एक बाल नहीं रहेगा हम न जाने कितनी बातें अपने अंदर छिपाये बैठे हैं, अंदर से सोचते रहते हैं कि किसका घात कैसे करें, मुख में राम कहते हैं।'

'मुख में राम बगल में छुरी, यह नीति है बहुत बुरी'

जो मुख में राम-राम कहते हैं बगल में छुरी चलाने का प्रयास करते हैं, वे बहुत अधम व्यक्ति हैं, बहुत नीच व्यक्ति हैं। उससे

अच्छा व्यक्ति वह है जो कटु शब्दों का प्रयोग कर देता है। जो कुछ मन में आया वह कह दिया। यदि तुम वैसे नहीं हो, माना हमने किसी व्यक्ति से कह दिया तुमने चोरी की है, वह कहता है हमने चोरी नहीं की, कोई बात नहीं हमारे मन में शंका थी चोरी करने की तुमने कह दिया, नहीं की तो ठीक है हमने अपने मन का भाव निकाल दिया। यदि तुमसे कुछ नहीं कहते अंदर में छिपा कर रखते ऊपर से कहते तुम तो ईमानदार हो वाह! तुम तो बहुत ईमानदार हो, तुम जैसा ईमानदार तो कोई हो ही नहीं सकता। अंदर से सोच रहे हैं इसने बेईमानी जरूर की है, पोल सबके सामने खोलना है, अकेले में नहीं समझाना है। इससे अच्छा तो उस समय कह देता, कड़वे शब्दों का प्रयोग कर देता तो बहुत अच्छा होता। तो कहा था- 'मन .... उचरिये' और जब तुम जैसा मन में है वैसा बोलोगे और यदि सामने वाले ने डाँट दिया, कह दिया तुम ऐसा सोच लेते हो तो पुनः तुम अपने मन को बदलने का भी प्रयास करोगे। अरे! कोई मेरे बारे में जान लेगा तो क्या सोचेगा, कोई क्या कहेगा- तुम जैसे व्यक्ति त्यागी व्रती होते हुए भी मन में कषाय रखते हो, ऐसे परिणाम रखते हो तो पुनः वह व्यक्ति अपने अंतरंग से निर्मल हो जाता है, वचन प्रिय होते हैं, हितकारी होते हैं, मधुर होते हैं, और शरीर की चेष्टा भी सरल और सहज होती है, शिष्ट होती है ऐसा व्यक्ति सम्मान का पात्र हो जाता है किन्तु जो व्यक्ति मन से कुछ, वचन से कुछ, शरीर से कुछ करते हैं ऐसे व्यक्ति दुरात्मा कहलाते हैं।

सर्वोदयी चिन्तन

जितना पुरुषार्थ तुम दूसरों की दृष्टि में सरल बनने के लिये करते हो, उतना पुरुषार्थ स्वयं की व परमात्मा की दृष्टि में सरल बनने के लिये करो तो संसार से बेड़ा पार हो जाये।

'मनस्यन्यत् वचस्यन्यत्, कायस्यन्यत् दुरात्मना।
मनस्येकं वचस्येकं, कायमेकं सदात्मना।।'

जो व्यक्ति मन से अन्य, वचन से अन्य, शरीर से अन्य प्रकार की चेष्टा करता है वह दुरात्मा कहलाता है, दुष्टात्मा कहलाता है,

दुर्जन कहलाता है। यदि जिसकी वृत्ति दुष्ट है, जिसके मन, वचन और शरीर में कुटिलता होती है ऐसा व्यक्ति दुष्ट कहलाता है। कुछ लोग कहते हैं, महाराज जी आज जमाना सत्य कहने का नहीं है अपनी गलती बताने का नहीं रहा है।

गर छुपाना जानता तो, लोग मुझे साधु समझते।
आज दुश्मन बन गया है, छल रहित व्यवहार मेरा॥

'यदि मैंने निश्छलता के साथ अपनी गलती को स्वीकार कर लिया, कुछ कह दिया तो निश्छलता ही मेरी शत्रु बन गयी है, दुश्मन बन गयी है किन्तु ऐसा नहीं है। छल रहित व्यवहार कभी चेतना का शत्रु नहीं हो सकता है। ये बात सत्य है छलरहित व्यवहार करने से कुछ समय तक संघर्षों का सामना करना पड़ सकता है क्योंकि आपने जो छल रहित व्यवहार किया है थोड़ी सी कोई गलती की है तो यहाँ निपट जाओगे। यदि आप छिपा-छिपा कर रखोगे और कालान्तर में प्रकट करोगे तो वह बहुत बड़ा रूप धारण कर लेगी। यदि आपके शरीर में छोटी सी फुन्सी हो गयी और आपने वैद्य को, डाक्टर को बता दी कि मेरे शरीर में यह छोटी सी फुन्सी हो गयी है, वैद्य ने, डाक्टर ने उस फुन्सी को ठीक करने के लिए दवा दी। वह दवा बहुत लगती है आप कहते हैं ये दवाई हम नहीं लगायेंगे, ये तो बहुत लगती है। अरे भाई! अभी कम लग रही है अभी नहीं लगाओगे तो उस फुंसी का फोड़ा बन जायेगा वह बहुत गहरा घाव हो जायेगा। जब आपका पैर या कोई अंग सड़ जायेगा, उसमें जब कीड़े पड़ जायेंगे, उसका जब ऑपरेशन करना पड़ेगा। उसमें बहुत गहरा घाव होगा भरने में वर्षों लगेंगे तो तुम्हें पुनः उसका उतना अधिक दुःख भोगना पड़ेगा। इसलिये अभी क्षण-भर का दुःख भोग लो, उससे दीर्घकाल तक सुख प्राप्त होगा। ''वचन....करिये'' जैसा मन में आये

सर्वोदयी चिन्तन

उत्तम आर्जव धर्म की उत्पत्ति उसी हृदय में सम्भव है, जो जल के समान सरल, आकाश के समान निर्मल एवं प्रकृति के समान सहज है।

वैसा वचन से कहिये, जैसा मुँह से बोलो वैसा शरीर से भी करो। ऐसा नहीं ''करो कुछ कहो कुछ'' तो जैसा कहना है वैसा ही करना है। यदि ये प्रवृत्ति आपकी हो जायेगी तो वास्तव में वही साधु कहलाता है जिसका मन, वचन, काय एक हो जाता है, वह सदा अपना कहलाता है। ''करिये.....अंगारसी'' तीनों योगों को वश में करिये, जो अपने तीनों योगों को वश में कर लेता है ऐसा व्यक्ति पूजनीय कहलाता है, सम्मानीय बन जाता है। जिसके अंदर कोई छल-कपट नहीं होता, अंदर बाहर एक हो जाता है उसे सभी लोग पूजने के लिए लालायित रहते हैं।

''एक बार ढोलक और बाँसुरी में वार्तायें हुई, आपस में एक-दूसरे से चर्चायें। की। ढोलक ने बाँसुरी से पूछा- लोग तुम्हें अपने होठों के बीच में रखते हैं और मुझे लोग थप्पड़ मारते हैं। आखिर में इतना व्यवहार में अंतर क्यों? तुम भी एक वाद्ययंत्र हो, मैं भी वाद्य यंत्र हूँ। दोनों वाद्य यंत्र होते हुए भी एक को लोग चूमें, अपने होठों के बीच में रखें और एक को थप्पड़ मारें। ये तो बड़ा मुश्किल है, अन्याय हो गया। बाँसुरी ने कहा- 'ये अन्याय नहीं है, तुम्हें अन्याय दिखाई दे रहा है, जो दोषी होता है उसे न्याय भी अन्याय दिखाई देता है। जो दोष जिसने किया है उसे प्रायश्चित दे दिया जाये तो ऐसा लगता है निर्णायक ने बहुत बड़ा अपराध कर दिया। कंकड़ी के चोर को कटार मार दी ऐसा नहीं करना चाहिए।' ढोलक ने कहा दोनों वाद्य यंत्र होते हुए भी दोनों के साथ अन्याय क्यों? पक्षपात क्यों? बाँसुरी ने कहा- तूने ये तो कह दिया किन्तु तेरे और मेरे स्वरूप में कितना अंतर है तुझे मालूम है? हाँ मालूम है तू इतनी पतली सी है, लम्बी सी है और मैं तुमसे दुगनी तो लम्बी हूँ और इतनी मोटी हूँ और मेरी बहुत दूरी तक ध्वनि जाती है, यहाँ पर लोग थप्पड़ मारते हैं, आवाज बहुत दूर पहुँच जाती है पर तेरी ध्वनि तो पास तक ही रहती है। तेरी आवाज मेरी आवाज के सामने दब जाती है कोई सुन भी नहीं पाता और ये सत्य बात है कभी-कभी

असत्य के नगाड़े की चोट में सत्य की तूती मंद हो जाती है, सत्य की आवाज दब जाती है किन्तु वहाँ सत्य का अभाव नहीं होता। जब उस बाँसुरी ने कहा कि मेरे अंदर जो कुछ भी है स्पष्ट है अंदर छिपा कुछ नहीं है यदि दोनों होठों के बीच रख करके जो कुछ भी बाहर फेंका जाता है मैं ज्यों का त्यों निकाल देती हूँ और उसमें एक मधुर संगीत पैदा कर देती हूँ और अपने पास अंदर कुछ नहीं रखती। जहाँ से भी स्थान है बाहर निकाल देती हूँ किन्तु तेरे अंदर एक कमी है तू क्या करती है। तेरे अंदर दोनों तरफ से छेद बंद हैं अंदर न जाने क्या भरा है। तू अपने अन्दर छिपा कर रखी हुई है, तेरे अंदर कुछ और है, बाहर कुछ और है इसलिए जिसके अंदर कुछ होता है बाहर कुछ होता है वह व्यक्ति ताड़ना का अधिकारी होता है, वे मार-पीट के अधिकारी होते हैं, वे होठों से चिपकाने के अधिकारी नहीं होते। कहने का आशय यह है कि बाँसुरी के अंदर सरलता, सहजता होती है, यदि आपका जीवन भी बाँसुरी के समान सरल और सहज बन जाये तो हो सकता है लोग आपको भी होठों से चूमें। जैसे लोग भगवान् के शरीर को देखकर चूम तो नहीं सकते लेकिन उनके चरणों की धूल-रज मिल जाती है तो उसे ही चूमते हैं, हृदय से लगाते हैं, मस्तक से लगते हैं, नेत्रों से लगाते हैं। ऐसे ही आप यदि सरल और सहज बन जायें तो लोग भी आपके चरणों को चूमने के लिए लालायित रहेंगे।''

महानुभाव!

अपने तीनों योगों को वश में रखना है, जैसे आरसी होता है वह ज्यों का त्यों स्पष्ट दिखा देता है, वैसी कही वृत्ति आपकी हो जाये दर्पण के समान, जैसा परिणाम मन में हो, वैसा की वचन और शरीर से प्रकट कर दिया जाए तो मुझे लगता है व्यक्ति पुनः सुख-शान्ति को प्राप्त कर ले वह स्वयं ही अपने आप में दर्पण बन जायेगा क्योंकि अरहंत परमेष्ठी का रूप एक दर्पण के समान है, उनका

परम औदारिक शरीर होता है जो कि पारदर्शी दर्पण के समान होता है जिसमें व्यक्ति अपना स्वरूप देख सकता है, पंचपरमेष्ठी भी अपने आप में एक दर्पण स्वरूप होते हैं। महानुभाव! आगे कहा है, दर्पण में जैसा मुख करता है वैसे ही लखता है। वह अधिक सम्पत्ति को प्राप्त कर लेता है सरलता, सहजता के माध्यम से, किन्तु कपट से प्रीति करना तो अंगारों से खेलने के समान है, आग के दरिया में तैरना है और अंगारों से होली कौन खेलता है? जो अंगारों से होली खेलता है उसका जीवन सुरक्षित नहीं होता, जो अंगारों के पास भी जाता है तो उसका दामन भी सुरक्षित नहीं रहता। उसके दामन में कहीं न कहीं दाग लग जाता है इसलिए कपट एक अंगारे के समान है, जलती हुई अग्नि के समान है। माना वह अग्नि बुझ भी गई है तो जलायेगी नहीं लेकिन दाग तो लगायेगी ही। यदि आग है तो जलायेगी, यदि कोयला बन गया है तो दाग लगायेगी, उसका दाग जीवन में नहीं छूट पायेगा इसलिए ध्यान रखें प्रवृत्ति सरल और सहज हो क्योंकि आगे भी कही है-

''नहीं लहे लक्ष्मी अधिक छलकर, कर्म बंध विशेषता।
भय त्याग दूध बिलाव पीवे, आपदा नहीं देखता॥''

यदि कोई लक्ष्मी अधिक छल से प्राप्त की जाती है, तो वह लक्ष्मी शाश्वत नहीं रह पाती है, नष्ट हो जाती है। ओस बूंद की तरह दिखाई तो देती है किन्तु पकड़ में नहीं आती, देखते ही देखते नष्ट हो जाती है। कई व्यक्तियों को आपने देखा वे क्षण-भर के लिए लखपति-करोड़पति बने और दूसरे साल दिवालिया निकल गया। जब बेईमानी से धन कमाया जाता है तो वह पुनः पूरा का पूरा निकल जाता है। इसलिए सरलता और सहजता में जीने का आनंद ही कुछ और होता है।

महानुभाव!

यदि आपका जीवन सरलता और सहजता के साँचे में ढलना

प्रारम्भ हो गया है, तो तुम कालान्तर में उत्तम आर्जव धर्म को भी प्राप्त कर सकते हो। किन्तु व्यक्ति को जितना विश्वास उस छल-कपट के प्रति है, मायाचारी के प्रति है, उतना विश्वास ईमानदारी के प्रति नहीं है। आज उसका विश्वास धर्म के प्रति कम, अधर्म के प्रति अधिक हो गया है। महानुभाव! ज्यों-ज्यों बेईमानी बढ़ती जाती है, त्यों-त्यों लक्ष्मी नष्ट होती चली जाती है। बेईमानी कहीं बाहर से नहीं आती। बेईमानी और बीमारी की जड़ यदि है तो अंदर में है। बेईमानी और बीमारी यदि आती है तो अंदर से ही आती है इसलिए बेईमानी और बीमारी की जड़ को साफ करना है, साफ तभी होगा जब आपका पेट साफ हो। **वैद्य लोग कहते हैं अपने पेट को साफ रखो, कभी बीमार नहीं होगे। तो साधु पुरुष कहते हैं अपने हृदय को साफ रखो, मन, वचन, काय की क्रिया को साफ रखो तो आपके अन्दर बेईमानी नहीं आयेगी, चेतना कभी बीमार नहीं होगी।** बेईमानी, मायाचारी करने वाले बहुत से लोग हुए। यदि आपको पता चलेगा तो आपको भी लगेगा हाँ इन्होंने वास्तव में बेईमानी की इस कारण वे धराशायी हो गये। मृदुमति मुनिराज बहुत बडे साधक थे, मायाचारी से पुनः वे मृत्यु को प्राप्त होकर देव गति को गये, वहाँ से आकर के त्रिलोकमंडन हाथी हुए और भी आपने सुना होगा-

''पाटनपुर नगर में पुष्पचूल नाम का राजा था उसकी पत्नी का नाम पुष्पदत्ता था। राजा को किसी समय सिर पर सफेद बाल देखकर वैराग्य हो गया। किन्हीं मुनिराज के पास जाकर दीक्षा ले ली। उसकी पत्नी ने भी उनका अनुसरण किया और ब्रह्मिला नाम की गणिनी आर्यिका से दीक्षा ले ली और साधना करने लगी। पूर्व में वह राजरानी थी इसलिए उसके मन में अभी भी अहम् भाव था और वह चुपके से अपने शरीर में सुगन्धित तेल लगा लेती थी, तब सबके सामने आती। उसके शरीर से खुशबू आती, लोग कहते कितना त्याग और तप है इनका! कि इनके शरीर से खुशबू आने लगी। उसकी

गणिनी आर्यिका ने कहा तुम सुगन्धित तेल लगा लेती हो तो शरीर से खुशबू आती है, तुम्हारा ये कृत्य बहुत दिनों तक नहीं चलेगा। इसलिए सत्य को सत्य प्रकट कर देना चाहिए। उस पुष्पदत्ता ने कहा- नहीं, मेरे शरीर में तो सहज ही अच्छी सुगंधि आती है, तुम जैसा शरीर थोड़े ही है जो कि बदबू आये। कालांतर में उसके शरीर से बदबू आने लगी। जैसा उसने छल-कपट किया वैसा ही कपट करने का बुरा परिणाम उन्हें भोगना पड़ा।

ऐसे ही छल-कपट करने वाला एक राजा था, वह जंगल में गया। जंगल में वह पके हुए फलों को देखता है। उसके मुँह में पानी आ गया। वह उन्हें खाने के लिए बहुत प्रयास करने लगता है, फल बहुत ऊँचाई पर थे। Try again - Try again बहुत प्रयास किया फिर भी वह उन फलों को तोड़ नहीं पाया। जब वह थक गया तो आखिर में हार मान जाता है पुनः नीचे निगाह डाली और नीचे निगाह डालने पर उसे पका हुआ फल दिखाई दे जाता है किन्तु वह पका हुआ फल गन्दगी में पड़ा हुआ था। यहाँ-वहाँ देखा कोई देख तो नहीं रहा है। धीमें से उस पके हुए फल को विष्टा में से उठाया और विष्टा में से उठा कर साफ किया और पुनः देखकर उसे खा लिया। कहीं दूसरी प्रकार से ये कहानी इस प्रकार आती है कि वह राजा अपने पुत्र कें साथ भोजन कर रहा था, पुत्र उसे बहुत प्रिय था। भोजन करते समय संयोग वश उस अबोध बालक को जब लघुशंका की इच्छा हुई उस समय वह कह नहीं पाया और लघुशंका वहीं कर दी। उस समय उसके कुछ छींटें थाली की खीर में भी पड़ गये, राजा ने देख लिया। अब खीर बड़ी स्वादिष्ट थी मेवा-मिष्ठान की खीर है, किसी ने देखा नहीं है एकाध छींटा पड़ा है तो दिखाई भी नहीं दे रहा है। अतः राजा ने उस खीर को खा लिया। एक दिन राजा अपने राजसिंहासन पर बैठा हुआ था। एक सुन्दरी, नृत्यांगना वहाँ नृत्य करने के लिए आयी और नृत्य करने लगी, भक्ति करते समय एक गाना गया-

''ललन की बतिया बताय देहूँ''

राजा के मन में तो वही बात थी कि अवश्य ही मेरा पाप इस नृत्यांगना ने देख लिया है, जो मैंने चोरी की थी इसने देख लिया है। जब बालक ने लघुशंका की उसको भी इसने देख लिया है तो धीमे से उसने उसे पास में बुलाया और अपना हार उतार कर उसे दे दिया। बाद में उस नृत्यांगना को लगा कि मेरा यह गीत राजा को बहुत पसन्द आ रहा है। पुनः वह उसे और गाती है और नाचती है पुनः राजा ने सोचा यह तो गाने के लिए तैयार ही है, उसने कुंडल उतार के दे दिए। पुनः उसे लगा कि राजा को यह बहुत ही ज्यादा पसंद है, वह और गाती है और गाती है उस राजा ने अपने आभूषण उतार कर दे दिये। जब वह सब आभूषण उतार चुके तब तो राजा अपना मुकुट देने के लिए तैयार हो गया। सभा के लोगों ने रोका महाराज आप ये क्या कर रहे हैं किन्तु वह भी दे दिया। वह नृत्यांगना गाती है और मजे से नाचती है, बड़ी आनन्दित होती है और राजा को देखकर कहती है ''ललन...देहूँ''। राजा ने जब सब दे दिया, नृत्य बंद करवा दिया और कहा- बताना है सो बता दो, हमने कौन बड़ी गलती की है। अपने पुत्र की ही तो लघुशंका थी किसी और की थोड़े ही थी। पुनः लोगों ने पूछा, रहस्य खुला, राजा सबके सामने नतमस्तक हो गया और कहा मैंने इतनी बड़ी गलती की। महानुभाव, जब व्यक्ति अपनी गलती छिपाता है तो ऐसा ही लगता है। यद्यपि नृत्यांगना का ऐसा कोई भाव नहीं था न उसे कुछ मालूम था किन्तु राजा को ऐसा लग रहा था कि इसने मुझे देख लिया है इसलिए बार-बार ये ऐसी बात कह रही है। कहने का आशय यह कि लोग पाप करते हैं किन्तु वह छिपा नहीं पाते। तुलसीदास जी ने कहा-

''पाप-पुण्य छुप-छुप करो, सोवत करो चाहे जाग।
तुलसी कब तक छुप रहे, घास घुसाई आग॥''

कहने का आश्य यह है कि अग्नि को यदि रूई में लपेट कर

रखें तो क्या छिपी रहेगी? अरे वह तो अग्नि है रूई को जलाकर बाहर प्रकट हो जायेगी। उसी प्रकार यदि बेईमानी को आप छिपाने का प्रयास करते हो तो छुप नहीं पाती, वह प्रकट हो जाती है। इसलिए छल-कपट को छिपाने का प्रयास नहीं करना है उसे तो प्रकट कर देना है। जो पहले प्रकट कर देते हैं, वे सुखी रहते हैं। पहली बात तो ये है कि ऐसा कोई वचन न बोलें जिसको हमें छिपाना पड़े, ऐसा सोच के बोलें कि आज जिस बात को इसके कान में बोल रहे हैं मौका आ जाए तो दस लाख व्यक्तियों के सामने बोल सकें। कार्य ऐसा करो, जिसे एकान्त में छिपकर भी कर रहे हैं यदि कोई देख ले तो मेरी निगाह नीची न हो जाए। यदि कोई बात सोचो तो ऐसा मान के सोचें कि कोई मनः पयर्य ज्ञानी, केवल ज्ञानी भगवन् जान रहे हैं। यदि किसी ने मेरा भाव पढ़कर के व्यक्त कर दिया तो मेरी इज्जत दो कोड़ी की भी नहीं रहेगी। यदि कोई ऐसा सोच लेता है तो मुझे लगता है वह व्यक्ति कभी बेईमानी नहीं कर सकता। महानुभाव! तो ध्यान रखना है जब भी आप कोई कार्य करो तो ऐसा सोच कर करो कि मेरा ये कार्य प्रकट हो जायेगा और जो वक्ता होता है-

''स्पष्ट वक्ता न वंचकाः''

वह कभी वंचक नहीं होता। वह हमेशा स्वाभिमान के साथ जीता है और जो अस्पष्ट वक्ता होता है, जो बात Clear नहीं कहता कुछ घुमा-फिरा कर बात कहता है ऐसा व्यक्ति गुणी नहीं है। जो व्यक्ति गुढ़ी वाला होता है, छल कपटी होता है वह व्यक्ति गुणी नहीं हो सकता। जिसके पास गुण ही नहीं है वह गुढ़ी है, गुणी नहीं है। छल-कपट ऐसी चीज है जो प्रीति को, प्रेम को निश्छल प्यार को, वात्सल्य को तोड़ देती है क्योंकि प्रेम और प्रीति यदि टूटते हैं, तो केवल दो ही कारणों से टूटते हैं या तो स्वार्थपने से या कपट से। व्यक्ति अपने स्वार्थ की सिद्धि करके या छल-कपट करके, अहम्

की पुष्टि करके प्रेम को छोड़ देता है।

''कपटखटाई पड़त ही, नीर, क्षीर बिलगाय''

''कपट की खटाई पड़ते ही जिनका प्रेम दूध और की तरह होता है वह पानी और दूध की तरह अलग-अलग हो जाता है। जिस प्रकार खटाई की एक भी बूँद पड़ते ही दूध से पानी अलग हो जाता है उसी प्रकार कपट का एक व्यवहार भी जीवन भर परेशान करता है। मुझे लगता है जीवन भर उतना विश्वास नहीं जुटा पाते इसलिए सबसे अच्छी बात तो धार्मिक व्यक्ति की है, वह जो कुछ भी होता है प्रकट कर देता है कुछ छिपाता नहीं है। कार्तिकेय स्वामी ने कार्तिकेयानुप्रेक्षा में कहा है-

''जो चिंतेईण बंकं, कुणादिण बंकं ण जंपए बंकं।
णय गोवदि णिय दोसं अज्जव धम्मो हवे तस्स॥''

''जो वक्र चिन्तन नहीं करता, जो वक्र कार्य नहीं करता है और जो वक्र नहीं बोलता है और अपने दोषों को नहीं छिपाता है, उसको आर्जव धर्म प्राप्त होता है। जो छिपा लेता है उसे उत्तम आर्जव धर्म की प्राप्ति नहीं होती''। कपट की खटाई पड़ते ही मित्रता टूट जाती है। जहाँ कभी भाई-भाई के बीच में थोड़ा सा भी कपट आ जाता है, क्रोध तो दिख जाता है और मान भी कभी-कभी प्रकट हो जाता है किन्तु कपट को छिपाकर रख लेता है। वह बाहर से दिखाई नहीं देता और बाहर से सरलता और सहजता का लिबास पहन लेते हैं, अन्दर में कपट रख लेते हैं तो उन दोनों भाइयों की प्रीति टूट जाती है, अंदर से टूट जाती है ऊपर से भले ही औपचारिकता निभाते रहें किन्तु अंदर वो बात नहीं रह पाती है। दूध फट जाता है फिर भी फटा हुआ दूध सफेद कहलाता है पानी भी उसके साथ भरा हुआ है, दोनों अलग-अलग हो गये अब एक बात नहीं रही। यद्यपि ये बात भी सत्य है कि श्रद्धा-भक्ति, समर्पण ये दिखाने की नहीं ये तो अंदर की चीज होती है। किसी शायर ने कहा था-

"इश्क को दीवार का इस्तहार मत समझो।
ये तो दिल की वस्तु है दिल में ही रहने दो॥"

क्योंकि श्रद्धा-भक्ति समर्पण दिखाने की नहीं होती हैं ये तो दिल की अंतरंग की वस्तु होती है। यह नहीं कि पोस्टर लेकर इस्तहार लेकर चिपका दिया ये मेरी तुम्हारे प्रति भक्ति है, श्रद्धा है, समर्पण है, मेरा तुम्हारे प्रति इतना प्रेम है, इतना वात्सल्य है ये अंतरंग की वस्तु होती है। किन्तु कभी-कभी कपट का द्वार खुल जाता है तो निकल कर बाहर भाग जाती है फिर पकड़ में नहीं आती है। पिंजड़े में बंद पक्षी की तरह कपट के द्वार से ही वह प्रीति, प्रेम, आस्था या वात्सल्य का पक्षी उड़ जाता है। मुक्त गगन में जब पहुँच जाता है तो पुनः पकड़ में नहीं आता है।

एक बार दो छोटे-छोटे मित्र जो कि एक ही कक्षा में पढ़ते थे। एक बार पिकनिक मनाने किसी Holy-Place पर गये, वहाँ पर उन्होंने अच्छी तरह से अपने परमात्मा की, इष्ट की खूब पूजा-भक्ति की। उसके उपरांत वे जब लौटने लगे तो रास्ते में जंगल पार करना पड़ता था, सामने से एक शेर दहाड़ता हुआ आया। एक मित्र ने सुन लिया शेर आ रहा है, दूसरे मित्र ने नहीं सुन पाया शेर आ रहा है। जिस मित्र ने देख लिया था वह मित्र जल्दी दोड़कर पेड़ पर चढ़ जाता है। तब तक शेर उस दूसरे मित्र के पास आ जाता है। उसने देखा अब तो शेर पास में आ गया, हमला बोलने वाला है। उस दूसरे मित्र को कुछ नहीं सूझा, दौड़ भी नहीं सकता है, अपने प्राण नहीं बचा सकता है। वहीं जमीन पर गिर पड़ता है और गिर करके श्वाँस खींच लेता है, मृत जैसा पड़ जाता है। शेर आया आकर के उसे सूँघा, चक्कर लगाता रहा पुनः शेर ने समझा ये तो मरा हुआ है और शेर कभी मरे हुए को मारता नहीं। जो शेरदिल वाले होते हैं वे कभी मरे हुए को नहीं मारते वे तो जिंदा का शिकार करते हैं। जो कुत्ते होते हैं, जो गीदड़ होते हैं, जो चील और कौवे की तरह होते हैं वे मरे हुए को नोचते हैं और मारते हैं। क्षत्रियों ने कभी मरे हुए को नहीं

मारा, कायरों पर कभी वार नहीं किया। क्षत्रियों ने कभी क्षमायाचना करने वालों के प्रति बुरा भाव नहीं किया। क्षत्रिय यदि वार भी करते हैं तो सामने से करते हैं पीठ पीछे से वार नहीं करते हैं। शेर सूँघ कर चला गया अरे! ये तो साँस भी नहीं ले रहा है, लगता है ये तो मर गया। अब यहाँ से चला जाना चाहिए हो सकता हैं मुझे देखकर डर के मारे इसके प्राण निकल गये हों तब पुनः उसे छोड़ कर चला जाता है। जब शेर चला गया दूसरा मित्र पेड़ पर चढ़ा देख रहा था, पुनः वह उतर कर आया आवाज लगायी उस मित्र के लिए मित्र भी खड़ा होकर आया। उस मित्र से पेड़ पर चढ़े वाले मित्र ने पूछा- ''एक बात बताओ भैया! तुम्हारे पास शेर आया था, बोले हाँ आया था, तुम्हारे चक्कर लगा रहा था, बोले हाँ चक्कर लगा रहा था, तुम्हारे कान में कुछ कह रहा था, हाँ कह रहा था। बोले ये बता दो शेर तुम्हारे कान में क्या कह रहा था? बोले शेर मेरे कान में कह रहा था- **''धोखेबाज मित्रों की कभी संगति नहीं करना चाहिए, जो छल-कपट की मूर्ति हों उन पर कभी विश्वास नहीं करना चाहिए''**, यह कहकर शेर चला गया। आज से हमारी तुम्हारी मित्रता टूट गई। तुम कहते थे मैं तेरे लिए प्राण भी दे दूँगा और मुझे लगता है इस बात को व्यक्ति पहले से कह देता है कि तेरे लिए मेरे प्राण समर्पित हैं और प्राण क्या, जब कोई थोड़ी सी बात आ जाये प्राण की बात तो बहुत दूर रही यदि कोई ये कह दे मुझे प्यास लगी है पहले तुम मुझे पानी पी लेने दो बात में तुम पी लेना, तो कहेगा नहीं, इस पर झगड़ा हो सकता है। या छोटी सी बात पर तुम आगे कैसे बैठ गये, मुझे पीछे क्यों बिठा दिया? मेरा नाम पीछे क्यों लिखा? तुम्हारा नाम आगे कैसे लिखा? यानि छोटी-छोटी बातों पर इतनी छोटी बातों पर जिनका कोई सार नहीं, बेतुकी बातें इन बातों पर भी झगड़ा हो जाता है, प्रेम टूट जाता है।

महानुभाव!

कहने का आशय यह है- कहना अलग होता है, वास्तविकता अलग होती है कहने भर में तो दो तोले की जीभ हिलानी पड़ती है, जो कुछ भी कह दो क्या फर्क पड़ता है, किन्तु करने के लिए दो मन का शरीर हिलाना पड़ता है और हिलाना ही नहीं पड़ता इसे जीवन भर चलाना पड़ता है तब कार्य किया जाता है। दो तोले की जीभ वहाँ बैठे-बैठे हिला दो तुम कह सकते हो सामायिक, ऐसे नहीं ऐसे करनी चाहिए, उपवास करना चाहिए सामायिक तीन घंटे की करनी चाहिए। किसी भी कार्य के लिए कोई भी कह सकता है क्योंकि भारतवर्ष में ही नहीं पूरे विश्व में सलाहकार, वकील, डॉक्टरों की संख्या सबसे अधिक है, बहुत सारे मिलेंगे, जगह-जगह मिलेंगे, सलाह करने वाले चार नहीं चालीस मिल जायेंगे। रोग को दूर करने वाले Specialist Doctor जिन्होंने कभी किसी की नाड़ी नहीं पकड़ी हो, कभी किसी को इन्जेक्शन नहीं लगाया हो फिर भी वे Specialist बनकर तुम्हारा Treatment करने आ जायेंगे। अरे! हम बताते हैं, हम ठीक करते हैं दो मिनट में।

''पर उपदेश कुशल बहु तेरे, जे आचरहिं ते नर न घनेरे''

दूसरे को उपदेश देने वाले मनुष्य संसार में बहुत हैं, किन्तु स्वयं आचरण करने वाले कम होते हैं, बिना आचरण के किसी का कल्याण नहीं होता।

महानुभाव!

कहा गया है- मायाचारी करने से तो उस कार्य को खोला जाये तो वह बहुत अच्छा है क्योंकि मायाचारी यदि बगुले की तरह की जाती है तो वह बगुला लगता तो ऐसा है बहुत बड़ा साधक है, किन्तु बगुले के बारे में मछलियों से पूछो कि बगुला कितना बड़ा साधक है। एक पैर पर खड़े होकर के कितना ध्यान करता है, कितना

परमात्मा का स्मरण करता है।

''जब राम और लक्ष्मण पम्पा नामक सरोवर के पास से गुजर रहे थे तो लक्ष्मण कहते हैं भैया देखो तो ये कितना बड़ा साधक, महात्मा खड़ा हुआ है, आँख बंद करके, सूर्य की ओर खड़ा है, देख रहा है, और ध्यान में मस्त है इस कुछ मालूम नहीं है। राम ने कहा भैया इसके बारे में तुम नहीं जानते, इसके बारे में मछलियाँ जानती हैं। उन्होंने एक दोहा बोला उसका आशय ये था; जिसने हमारे कुल का नाश कर दिया उस बगुले के लिए तुम धर्मात्मा साधक कहते हो अरे! उसकी हकीकत जानना है तो हमसे पूछो जो उनके पास रहते हैं।''

''व्यक्ति परखो बसै, और सोना परखो कसैं।''

''सोना कसकर के और व्यक्ति के पास रहके, बैठकर के परखना चाहिये।' कहने का आशय ये है उसने कहा– ये बगुला है और इस बगुले को देखकर बगुले का अनुकरण करने वाले बहुत हैं। उस समय भी बहुत थे किंतु उस समय राम ने कहा– ''पंचम काल आयेगा तो पंचम-काल में बगुलाभगत् बहुत मिलेंगे। उसका तन उजला रहेगा ओर मन मैला।'' कहा भी है–

''तन उजला मन सांवला, यह बगुला का भेष।
यासे तो कौआ भला, बाहर भीतर एक॥''

'कम से कम काला है बाहर-भीतर एक जैसा तो है; ऊपर से कोई सफेद चादर तो नहीं ओढ़ी, कोई धर्म क लिबास तो नहीं पहना, ठगने का षडयंत्र तो नहीं रचा। कम से कम बाहर भीतर एक है। वह कह रहा है मैं तो पापी हूँ, दुष्ट हूँ, दुरात्मा हूँ, मायाचारी हूँ, छली हूँ, जड़बुद्धि हूँ स्वयं कह रहा है। वह ये तो नहीं कर रहा मैं धर्मात्मा हूँ, वह धर्मात्मा का लिबास पहनकर के अधर्मी तो नहीं है। कहने का आशय है वह कौआ अच्छा होता है उस बगुले की अपेक्षा से। किन्तु आपको न कौआ बनना है, न बगुला बनना है तो क्या

बनना है? आपको तो हंस बनना है जो दूध और पानी में से दूध-दूध पी लेता है। जो दूध को पी लेता है पानी में से, वह चैन से जी लेता है। जो पानी और दूध में से दूध को नहीं पी पाता,, वह जीवनभर चैन से नहीं जी पाता।

महानुभाव!

बगुला भी मान सरोवर में रहकर दूध नहीं पी पाता, हंस दूध भी पीता है और मोती भी चुगता है। वह कंकड़-पत्थर नहीं खाता चाहे वह हंस भूखा ही क्यों न मर जाए, किन्तु चुगेगा तो मोती ही चुगेगा। ऐसे ईमानदार व्यक्ति चाहे संघर्षों में अपने जीवन को व्यतीत कर दें, अपने पूरे जीवन को दाँव पर लगा दें, चाहे अपने समूचे जीवन को नष्ट कर दें, किन्तु जीवन में कभी असत्य का पक्ष नहीं ले सकते, ये धर्मात्मा की पहचान होती है। किन्तु जो गिरगिट जैसे होते हैं वे सच्चे धर्मात्मा नहीं होते ।

''गंगा गये तो गंगाराम, और जमुना गये तो जमुनादास।
जै गंगा माई की और जमुना गये जै जमुना माई की।।''

न गंगा से सरोकार, न जमुना से सरोकार, सरोकार तो उससे है जब जहाँ पहुँच गये, वहाँ नहा लिया, वहाँ पानी पी लिया और जयकार कर रहे हैं, चाहे गंगा सूखी हो चाहे जमुना सूखी हो, उन्हें अपना मतलब सिद्ध होने से है। ऐसे व्यक्ति जो सिद्धान्तहीन होते हैं, गिरगिट जैसा रंग बदलने वाले होते हैं, ऐसे व्यक्ति जीवन में कभी सफल नहीं हो पाते। महानुभाव! आपके लिए इतना ही संकेत है आप छल-कपट, मायाचारी को छोड़ें जिससे आपका जीवन सुखमय हो। आप उस आर्जव धर्म को प्राप्त करने में समर्थ हो सकें। आचार्य कुन्दकुन्द स्वामी ने कहा-

मोत्तूण कुडिलभावं, णिम्मलहिदएण चरदि जो समणो।
अज्जवधम्मं तड़ओ, तस्स दुसंभवदि णियमेण।।

"कुटिल भाव को छोड़कर के जिसका हृदय निर्मल जल के समान हो गया है, निर्मल जल में अपना चेहरा देखा जा सकता है जिसका हृदय निर्मल है वह आत्मा का अनुभव कर सकता है। जिसका हृदय समल है, मन समल है, समल मन में आत्मा का दर्शन नहीं किया जा सकता। जहाँ पानी में कीचड़ घुली हो तो पानी में परछाई दिखाई नहीं देती। मन जल के समान निर्मल होना चाहिए जिससे उसमें सबका समावेश हो जाए। मन आपका पाषाण की तरह न बने, पानी की तरह नम्र हो जाए जिसमें कहीं से प्रवेश करें, किसी भी मार्ग से प्रवेश करें और वहाँ तक पहुँच जाएँ। यदि ऐसा आपका हृदय बन जायेगा तो मुझे लगता है आप उत्तम आर्जव धर्म को प्राप्त कर सकते हैं। जो श्रमण इस प्रकार निर्मल हृदय के साथ आचरण करता है उसके आर्जव धर्म होता है। नियम से उसके ही तृतीय धर्म सम्भावित है जिसे **Honesty, Simplicity, Supreme upper rightness या और कोई भी नाम दे सकते हैं। ये उत्तम आर्जव धर्म के ही पर्यायवाची नाम हैं।** इनको प्राप्त करने का सीधा उपाय है तीनों योगों की सरलता, सहजता और अपने आप में जीने का उपाय, सभी अपने आप में जीने का सत्पुरुषार्थ, सत्प्रयास करें। मुझे लगता है आप आत्मिक स्वभाव, आत्मिक गुणों को प्राप्त कर सकते हैं। सभी लोग अपने स्वकीय स्वभाव को प्राप्त करें, स्वकीय गुणों को, स्वकीय निधि को प्राप्त करें और आप भी एक दिन सिद्ध परमेष्ठी की गिनती में आयें, सिद्धों के बीच जाकर विराजमान हो जायें और अपने स्वभाव को प्राप्त करें। इन्हीं सद्भावनाओं के साथ अपनी वाणी को विराम देता हूँ।

अमृत दोहावली

कपट छुपाये न छिपे, छिपे न मोटा भाग।
दावा-दावी न रहे, रूई लपेटी आग॥1॥

नमन नमन में फेर है, अधिक नमें बेईमान।
दगाबाज दूना नमें, चीता चोर कमान॥2॥

मन मैला तन ऊजला, या बगुला की टेक।
यासे तो कौआ भला, भीतर बाहर एक॥3॥

लाख छपाओ छुप न सकेगा, राज ये कितना गहरा।
दिल की बात बता देता है असली नकली चेहरा॥4॥

आर्जव भाव अमर पद लावैं, आर्जव में औगुन नहिं पावै।
कुटिल भाव विष जिन नहिं पीवा, आर्जव भाव धरैं जे जीवा॥5॥

धूर्त नहीं है त्यागता, मन से कोई पाप।
पर निष्ठुर रचता बड़ा, त्यागाडम्बर आप॥6॥

धर्मात्मा का रूप रख, जो नर करता पाप।
झाड़ी भीतर व्याध सा, बैठा वह ले चाप॥7॥

आर्जव जन में इष्ट है, आर्जव सुख करतार।
आर्जव बिन या जीव को कोई न उधारन हार॥8॥

सरल भाव धारे सरस सुर-नर पूज्य महान्।
तातै तनजी कुटिलता, आर्जव भाव लहान॥9॥

छल कपट जो नित करें, वे दुःख लहै अपार।
सत्य, सरलता, सहजता, सम्यक् सुख आधार॥10॥

जो पर को नित ठगत है, निज को ही ठग लेय।
सरल चित्त बनि जो रहें, निश्चय शिव मग लेय॥11॥

पापी-पाप निश दिन करे, फिर ले तसु सम्मान।
दगा देयगर जगत् में, निश्चय नरक-निदान॥12॥

आर्जव सुख का कोश है, माया दुःख की खानि।
जो जन पर को ठगत है, निज की करते हानि॥13॥

भेष साधु का धारि कर, ठगे जगत को नीच।
पापी से भी निंद्य दुठ, पड़े श्वभ्र के बीच॥14॥

विष देना फिर भी भला, पर विश्वास ना देय।
विष से मृत्यु एकही, छल नंता दुःख देय॥15॥

माया ठगनी ने ठगा, ये सारा संसार।
पर माया जिनने ठगी, उनकी जय-जयकार॥16॥

छल-कपट व्यवहार से, माया को मत जोड़।
नाक कटे व्यवहार में, तन से निकले कोड़॥17॥

पुण्य-पाप छुप-छुप करो, सोवत करो या जाग।
लाख छुपाये न छुपे, घास घुसारी आग॥18॥

छल-कपट की सम्पदा, कभी न आवे काम।
क्यों पर को ठग कर वृथा, पड़ो पाप के धाम॥19॥

अर्थ सहित कुछ छंद

जो चिंतेइ ण वंकं, ण कुणदि वंकं ण जंपदे वंकं।
ण य गोवदि णियदोसं, अज्जवधम्मो हवे तस्स॥

अर्थः- जो न कुटिल चिंतन करता है, न शरीर से कुटिलता करता है, न कुटिल बोलता है और न ही अपने दोषों को छिपाता है उसके आर्जव धर्म होता है। जो भव्य निज कृत अतिचार आदि दोंषों को नहीं छुपाते हैं तथा किये हुये दोषों की निंदा, गर्हा प्रायश्चित आदि करते हैं उनके आर्जव धर्म होता है। आर्जव धर्म का यह लक्षण सर्वज्ञ भगवान् ने कहा है। इसे निकट भव्य सरल बुद्धि से धारण करते हैं।

धर्मांगमार्जवं धार्य, मववैः यॉगकर्मभिः।
न वक्रता विधेयाऽत्र, क्वचिद् धर्मविनाशिनी॥

अर्थः- धर्म का अंग आर्जव धर्म सरल मन, वचन, काय से धारण करना चाहिये तथा धर्म को नाश करने वाली मायाचारी कभी नहीं करनी चाहिये।

चित्तमन्वेति वाचा, येषां वाचामन्वेति च क्रिया।
स्वपरानुग्रहपराः, सन्तस्ते विरला कलौ॥

अर्थः- जिनके वचन, मन एवं क्रिया का अनुसरण करते हुये अपने और पर के उपकार करने वाले होते हैं वे सज्जन इस कलि काल में दुर्लभ हैं।

हदि यत् तद्वाचि बहिः, फलति तदेवार्जवं भवत्येतत्।
धर्मो निकृतिरधर्मो, द्वाविह सुरसद्मनरकपथौ॥

अर्थः- जो हृदय में होता है वही वाणी में होता है, यह आर्जव धर्म कहलाता है और इसका फल स्वर्ग है और मायाचारी अधर्म है इसका फल नरक है।

कुटुम्बपरिवारादि, कायगृहधनादिषु।
विनश्वरेष भोगेषु, मायां का कुरुते सुधीकः॥

अर्थः- कुटुम्ब, परिवार, शरीर, घर, धनादि नश्वर भोगों के लिये कौन बुद्धिमान् मायाचारी करता है अर्थात् कोई बुद्धिमान नहीं।

पिता प्रियश्चैव सखादिबन्धुः,
माताऽपि मान्या भगिनी सुशीला।
भार्या मनोज्ञा स्वजनोऽपि बन्धुः,
दासी च दासः सचिवोऽसि भव्यः॥

अर्थः- हे भव्य! पिता, मित्र, बन्धु, माता, बहिन, पत्नी, प्रिय सहयोगी, दास, मंत्री, हाथी, घोड़ा, घर तुम्हारे साथ नहीं जाते हैं, ऐसा जानकर उनके विषय में मायाचारी छोड़कर परिणामों की शुद्धि करो जिससे आत्मा की सिद्धि हो।

विद्यादम्भः क्षणस्थायी, ज्ञानदम्भो दिनत्रयम्।
मन्त्रदम्भस्तु षड्मासान्, मौनदम्भो हि दुस्तरः॥

अर्थः- दम्भ युक्त विद्या क्षणस्थायी होती है, दम्भ युक्त ज्ञान तीन दिन रहता है, दम्भ युक्त मंत्र छह महीने रहता है एवं मौन युक्त दम्भ को जानना बहुत कठिन होता है।

कुशलजननबन्ध्यां, सत्यसूर्यास्तसन्ध्यां,
कुगतियुवतिमालां, मोहमातंगशालां।
शमकमलहिमानी, दुर्यशोराजधानी।
व्यसनशतसहायां, दूरतो मुंच मायाम्

अर्थः- कल्याण को उत्पन्न करने के लिये वन्धया स्त्री के समान, सत्य रूपी सूर्य को अस्त करने के लिये सन्ध्या के समान, खोटी गति रूपी युवती को वरने के लिये माला के समान, मोह रूपी चाण्डाल की शाला के समान, संतोष रूपी कमल को नष्ट करने के लिये तुषार के समान, अपयश की राजधानी स्वरूप, सैकड़ों कष्टों की प्राप्त करानें में सहायीभूत मायाचारी को दूर से छोड़ देना चाहिये।

दौर्भाग्यजननी माया, माया दुर्गतिवर्धिनी।
नृणां स्त्रीत्वप्रदा माया, ज्ञानिभिः त्यज्यते ततः।

अर्थः- माया दुर्भाग्य को उत्पन्न करने के लिये माता के समान है, दुर्गति को बढ़ाने वाली है, मनुष्यों को स्त्री पर्याय प्राप्त कराने वाली है। इसलिये ज्ञानियों द्वारा माया छोड़ दी जाती है।

मायाचारी एवं उत्तम आर्जव धर्म सम्बन्धी कतिपय कथानक

1. **मायाचारी में प्रसिद्ध मृदुमति-** गुणनिधि नामक मुनिराज के विहार कर जाने पर वहाँ पधारे, लोगों ने वर्षा योग स्थापित करने वाले, देवेंद्रों से पूज्य गुणनिधि मुनिराज समझ धूम-धाम से पूजादि की। मृदुमति मुनिराज ने सत्यता प्रकट नहीं की कालान्तर में मायाचारी के फल से भरत के त्रिलोक मण्डन हाथी हुये। **(विस्तार से जानने हेतु पद्म पुराण जी का स्वाध्याय करें)**

2. **आर्यिका पुष्पदत्ता-** पाटनपुर के राजा पुष्प चूल की रानी थी, राजा ने सफेद बाल देख वैराग्य से अभिभूत हो जिन दीक्षा ले ली, पुष्पदत्ता ने भी ब्रह्मिला आर्यिका से दीक्षा ले ली। शरीर में चोरी से सुगंधित तेलादि लगाती थी, पूछने पर कहती कि मेरे शरीर में स्वाभाविक ही सुगंध है, इस तरह की मायाचारी करके दुर्गति को प्राप्त हुई।

3. **धूर्त ब्रह्मचारी-** उपगूहन अंग की कथा में वर्णित धूर्त सूर्यचोर नामक चोर नकली ब्रह्मचारी बन गया। बाद में सच्चा छुल्लक बन गया।

4. **मायाचारी मंत्री पुत्र-** विचित्रमती नाम का मंत्री पुत्र अपने साथ राजपुत्र के साथ मुनि बन गया। बाद में मायाचारी करके अपने पद से भ्रष्ट हो दुर्गति को प्राप्त हुआ।

5. **मायाचारी साहस गति विद्याधर-** किष्किंधापुर के राजा सुग्रीव की पत्नी सुतारा के साथ भोग भोगने हेतु विद्या सिद्ध करके, नकली सुग्रीव बन गया। बाद में श्री राम चन्द्र जी के भय से उसकी विद्या भाग गई। राम व सुग्रीव से क्षमा याचना की।

6. **कपट जाल में निपुण चन्द्रनखा (सूपनखा)**- रावण की बहिन खरदूषण की पत्नी अपने पुत्र शंबूक कुमार की मृत्यु के बाद छल से षोडश वर्षीय बाला बनकर राम-लक्ष्मण के पास मोहित होकर गई, विवाह प्रस्ताव रखा। राम, लक्ष्मण के द्वारा विवाह प्रस्ताव को अस्वीकार करने पर अपने पति को झूठ-मूठ कहकर युद्ध के लिये उकसाया। राम-रावण के युद्ध की भूमिका यहीं से प्रारम्भ हुई।

7. **मायाचारिणी मंगी**- वज्रमुष्टि की पत्नी मंगी थी, सास ने उसे विषधर से डसवा दिया, शमशान में फिकवा दिया। वज्रमुष्टि ने मुनिराज के प्रसास से पुनः प्राप्त किया, कमल पुष्प लेकर मुनिराज के चरणों में झुका, तब तक वह शूरसेन चोर पर मोहित हो वज्रमुष्टि पर ही तलवार का प्रहार करने लगी। अंत में पछतायी। **(हरिवंश पुराण)**

8. **कुटिलता की खान गोपमती**- लंगड़े गवैया में आसक्त हो, अपने पति को मनोरंजन में/ बातों ही बातों में बांधकर नदी में डाल दिया। बाद में गाँव-गाँव घूमती हुई सभी से कहती मैं सती हूँ, पतिव्रता हूँ। अपने लंगड़े पति को ही अपना परमेश्वर मानकर पूजती हूँ। कालान्तर में दुर्गति को प्राप्त हुई। **(आराधना कथा कोश)**

9. **कुटिलता की पुतली कुट्टिनी**- अमरसेन का अनुज वइरसेन जिस वेश्या में आसक्त हुआ, उसकी माँ ने वइरसेन को तीन बार ठगा। वइरसेन ने गंध पुष्प सुंघा कर उसे गधी बना दिया। **(अमरसेन चरिउ)**

10. **बसंत माला**- चारुदत्त जिसमें आसक्त था उस बसंत तिलका की माँ बसंत माला थी, जिसने चारुदत्त को द्रव्यहीन जानकर, धोखे से नशा करा कर, बेहोशी में बांधकर गटर (शौच कूप) में डाल दिया। **(चारुदत्त चरित्र)**

11. **कपटी ब्रह्मचारी**- अकृत पुण्य से भी कई पूर्व भव पहले वह नकली ब्रह्मचारी बन गया। सेठ द्वारा दी गई पूजा के द्रव्य का भक्षण कर नरकादि के दु:ख भोगे। मरण के समय कुष्ठ रोग की तीव्र वेदना से युक्त हुआ। संक्लेशता से प्राण छोड़ नरकादि दुर्गतियों में गया कालान्तर में अकृत पुण्य हुआ। **(धन्य कुमार चरित्र से)**

12. **लक्ष्मी मती**- सोमदत्त की पत्नी थी, अपने जेठ सोमशर्मा में आसक्त हो दुराचार करने लगी, सोमदत्त को दिखावटी अत्यधिक स्नेह करने लगी, सोमदत्त को ज्ञात होने पर सोमदत्त ने दीक्षा ले ली। लक्ष्मीमती मर कर दुर्गति को प्राप्त हुई। **(वृहत कथा कोश में रोहिणी व्रत कथा से)**

13. **अभयमती रानी**- सुदर्शन सेठ पर मोहित होकर उसे शमशान से उठवा लिया, उसके साथ विकृत चेष्टायें, हाव-भाव किये। किंतु सुदर्शन ने कहा कि मैं तो नपुंसक हूँ, तब उसने राजा के आने से कपट जाल रच चिल्लाना प्रारम्भ किया। यथार्थ का भेद खुलने पर राजा ने उसे दण्डित किया। मरकर दुर्गति को प्राप्त हुई **(सुदर्शन चरित्र से)**

14. **मायाचारिणी विमला**- चित्रसेन की सौतेली माँ थी, वीरसेन की पत्नी थी। चित्रसेन को मारने हेतु विष के लड्डू आदि भी बनाये। निमंत्रण दे बुलाया, किंतु पुण्यात्मा चित्रसेन नहीं मरा। **(चित्रसेन पद्मावती चरित्र से)**

15. **पम्पा सरोवर पर विद्यमान बगुला**- जो ध्यान करता हुआ दिख रहा था, किंतु यथार्थ ध्यानी नहीं था, मछली पकड़ने के लिये ही छल से ध्यानी बन गया।

16. **वैश्या और भांड**- जैसा छली संन्यासी वैसी ही मायाचारी की खान वह वेश्या थी। जैसा धन आया वैसा ही गया।

17. **खाई खोदे और कूँ, ताकौं कूप तैयार**- सेठ पुत्र व ठाकुर का कथानक, ठाकुर ने सेठ पुत्र को मारने के भ्रम में अपने ही पुत्र का मार दिया।

18. **सन्यासी व कुटिला का दृष्टांत**- कुटिला ने सन्यासी को भीख में विष मिश्रित भोजन दे दिया, जिससे कुटिला का पुत्र ही मर गया।

19. **राजपुत्री व कपटी साधु की कथा**- राजपुत्री को नदी में छुड़वा दिया, बाद में कपटी साधु ने पकड़ने का उद्यम किया। राजपुत्रों ने पेटी में भालू को बंद कर दिया। भूखे भालू ने बाबा को खा लिया। ''जो जिसको करता वदी, वदी ताहि खा जाय। कन्या वसावे राजघर, बाबा भालू खाय।'

20. **पानी का धन पानी में नाक कटी बेईमानी में**- ग्वालिन ने दूध में पानी मिला-मिला कर बेचा, जो पैसे बेईमानी से कमाये उसकी सोने की नथ (नाक का गहना) बनवाई। नाव से नदी पार करते समय, नाक से नथ पानी में गिर गई, नाक भी कट गई। तभी से यह कहावत चल रही है। ''पानी का धन पानी में नाक कटी बेईमानी में।''

21. **रीछ, बंदर व मनुष्य**- बंदर ने मनुष्य को डाली से नीचे गिराने को कहा, कि इसे गिरा दे तो शेर चला जायेगा, जब मनुष्य सो गया तब रीछ से शेर ने नीचे गिराने को कहा तब रीछ बोला मैं शरणार्थी को नहीं दे सकता। भले ही मेरे प्राण चले जायें। धोखेबाज मनुष्य से तो विश्वासी पशु अच्छा है।

22. **श्री भूति बाह्मण (सत्यघोष) की मायाचारी**- भद्र मित्र ने पाँच रत्न धरोहर स्वरूप रखे थे, बाद में नीयत बदलने से देने से इन्कार कर दिया, रामदत्ता रानी ने अपनी युक्ति से दिलवाये, तब राजा सिंहसेन ने श्रीभूति को बत्तीस मुक्के या 3 थाली

गोबर खाने को कहा, या सम्पूर्ण सम्पत्ति छीन ली जाये। श्री भूति ने क्रमशः तीनों दण्ड सहे। अपमान, निंदा, तिरस्कार सहन कर संक्लेशता से मरण कर सर्प हुआ। अनेक भवों तक दुर्गति के दुःख भोगे।

23. **जमींदार की मायाचारी-** एक श्रेष्ठी पुत्र विदेश से धन कमाकर अपने देश की ओर लौट रहा था, मार्ग में रात्रि हो जाने पर एक जमींदार के यहाँ (सराय) में ठहरा। जमींदार ने उस श्रेष्ठी पुत्र से सब कुछ पूछ लिया, श्रेष्ठी पुत्र ने भी निश्छलता से बता दिया। प्रातःकाल होने के पूर्व ही श्रेष्ठी पुत्र वहाँ से चल दिया, जमींदार ने अपने पुत्र को श्रेष्ठी पुत्र को मारने के लिये भेजा, बहुत देर तक जब बंदूक की गोली चलने की आवाज नहीं आई तब जमींदार स्वयं उसी मार्ग से गया, जिस मार्ग से श्रेष्ठी पुत्र व जमींदार का पुत्र गया था। श्रेष्ठी पुत्र मार्ग में शौच या शुद्धि हेतु चला गया तब मार्ग में दौड़ते हुये अपने ही पुत्र पर (अंधकार में पूर्णतः न देख पाने) गोली चला दी। जमींदार ने जब पास में जाकर देखा तब तक उसका पुत्र मर चुका था। इसलिये कहा भी है- जो खाई खोदे और कूँ, ताकों कूप तैयार।

24. **मायाचारी सेठ-** राजगृही नगरी में मायाचारी नागदत्त श्रेष्ठी था, वह धर्म ध्यान का बहाना करके बैठ जाता, किंतु अंतर में उसके परिणाम मायाचारी के, दूसरों को ठगने के व धोखा देने के ही रहते थे। एक दिन उसने दीपक का पूरा तेल जलने तक सामायिक का नियम लिया किंतु जल के लिये आर्तध्यान करता हुआ, मायाचारी से तिर्यंच आयु का बंध करके मेंढ़क हुआ, बाद में भवदत्ता सेठानी (अपनी पत्नी) को देख कर जाति स्मरण को प्राप्त हुआ, 'भगवान् महावीर स्वामी का समवशरण विपुलाचल पर्वत पर आया है' ऐसा सुन राजा श्रेणिक के साथ

जाते हुये सभी महानुभावों के साथ निश्छलता से, प्रमुदित मन से, कमल की पांखुड़ी मुख में दबाकर चला, किंतु मार्ग में राजा श्रेणिक के हाथी के पैर के नीचे दबकर मर गया फिर भी वह अपनी निश्छल भक्ति के कारण- सौधर्म स्वर्ग में देव हुआ। अतः अल्प धर्म साधना भी करो तो सार्थक है, किंतु मायाचारी के साथ दीर्घकाल तक व कठोरतम तप करना भी व्यर्थ है, तथा अनर्थ का कारण भी हो सकता है। उत्तम आर्जव धर्म ही प्रत्येक जीवात्मा का स्वभाव है, उसे ही प्राप्त करने का पुरुषार्थ करना चाहिये।

25. **आर्जव धर्म सम्बन्धी कथायें-** वारिषेण, भीम, जम्बूस्वामी, राम, द्रोण, विभीषण, गुणनिधि, अंजना, वज्रकर्ण इत्यादि महापुरुषों की कथायें प्रचलित हैं, जिन्हें आगम ग्रंथों से जानना चाहिय।

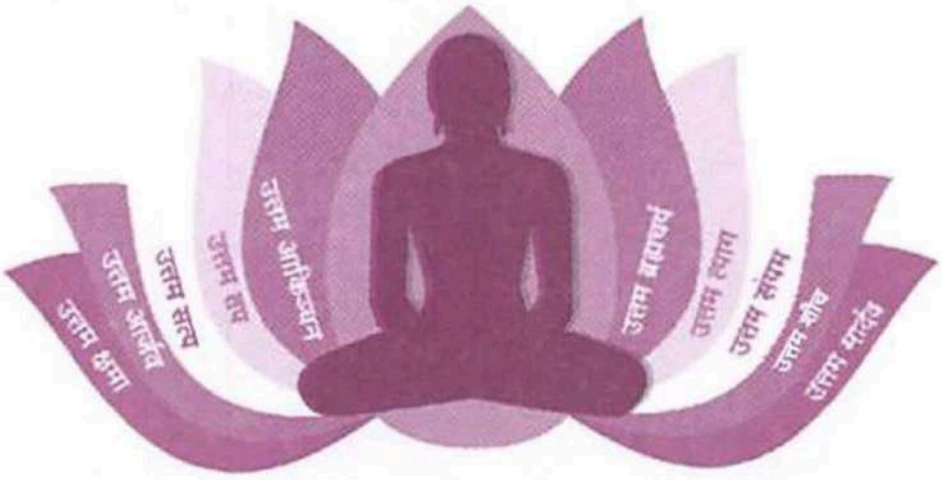

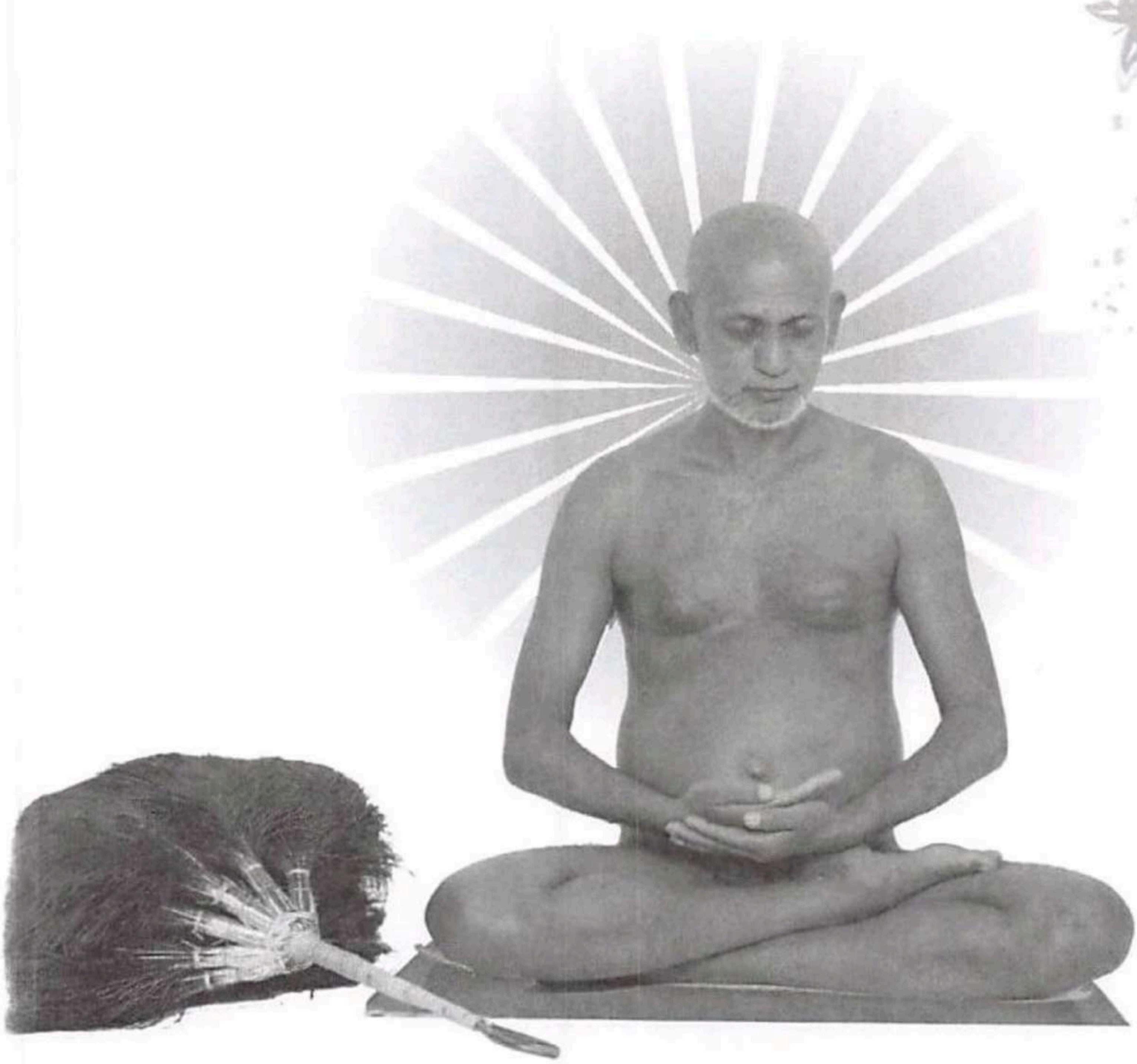

उत्तम शौच

लोहो हु महापार्व,
लोयम्मि भमणस्स कारणं होदि।
मुंचित्ता लोहं तं,
सोचं धारंति णिग्गंथा।।

दशामृत

अहसास अंतस का

लोभ पाप को बाप बखाना

महानुभाव!

आज पर्वराज पर्यूषण पर्व का चतुर्थ दिन है। तीन सीढ़ियाँ चढ़ने का प्रयास विगत तीन दिवसों में किया था। आज चतुर्थ सोपान को प्राप्त करना है। आज उत्तम शौच धर्म को समझने का दिन है। उत्तम सत्य धर्म को उत्तम शौच के बाद क्यों कहा? उत्तम शौच धर्म को प्रथम कहने का कारण है– कषाय पहले शमित होती है, क्षपित होती है, तब सत्य की उपलब्धि होती है। लोभी व्यक्ति कभी सत्य धर्म को प्राप्त नहीं कर सकता इसलिए आचार्यों की अपेक्षा है। पहले चार कषाय का क्षय किया जाता है। क्षीणमोह गुणस्थान में उत्तम शौच धर्म की परिपूर्णता हो जाती है और तेरहवें गुणस्थान में सम्पूर्ण सत्य धर्म की उपलब्धि हो जाती है। इसलिए आचार्यों ने उत्तम शौच धर्म को प्रथम कहा। कषायों का क्रम भी यही है, किस प्रकार क्रोध पर काबू किया जाए पुनः मान के बारे में भी बहुत कुछ सूत्र खोजने का प्रयास किया, मायाचारी जो कि दिखाई नहीं देती है किन्तु अंदर ही अंदर वह जीवन को खोखला कर देती है। उस मायाचारी को नष्ट करने के लिए भी आपने एटमबम तैयार किये। आज अन्तिम कषाय लोभ कषाय है जिसे जीतने का भी समीचीन पुरुषार्थ करना है। लोभ

सर्वोदयी चिन्तन
पर वस्तु को प्राप्त करने का भाव ही लोभ है, स्वद्रव्य में सदैव लीनता का सम्यक् पुरुषार्थ ही शौच धर्म है।

कषाय के जीते बिना यदि अन्य तीन कषायों को जीत भी लिया तो पुनः लोभ के आते ही अन्य तीन कषाय भी लौट कर आ जाती हैं। यह अन्तिम लोभ, कषाय का प्रतिनिधि है जो अपना पैर एक जगह जमा लेता है तो अपने साथियों को भी बुला लेता है। जब तक लोभ शेष रहेगा तब तक व्यक्ति नीचे की ओर गिर सकता है। लोभ कषाय को दबा दिया है तो अन्तर्मुहूर्त के लिए ही सही उपशान्त मोह गुणस्थान में वीतरागता की प्राप्ति हो जाती है। जहाँ सूक्ष्म लोभ का क्षय कर दिया जाता है वहाँ क्षीण मोह की अवस्था प्राप्त हो जाती है और क्षीण मोह वाले मुनिराज अन्तर्मुहूर्त में ही केवलज्ञान को प्राप्त करके नियम से उसी भव से मोक्ष जाते हैं। उस लोभ को जीतना है जिसके कारण व्यक्ति संसार में परिभ्रमण करता है। आचार्यों ने लोभ को दोषों की कुंजी कहा है। एक ऐसी चुम्बकीय शक्ति इस लोभ के अंदर है कि जिसके माध्यम से सभी दोष चले आते हैं। तीर्थंकर प्रकृति में एक ऐसी चुम्बकीय शक्ति है कि जिससे संसार के समस्त गुण प्राप्त हो जाते हैं। इसलिए आचार्यों ने लोभ को दोषों का सागर कहा, अवगुण की खान कहा। आचार्य भगवन् ने यहाँ कहा है–

सर्वोदयी चिन्तन

उत्तम शौच धर्म के बिना आत्मा की शुद्धि असंभव है। कपड़े में लगे मल को दूर करने के लिए जल की आवश्यकता होती है उसी प्रकार आत्मा की पवित्रता के लिए शुचि परिणाम, पर वस्तुओं के प्रति अनासक्त भाव रूपी जल अनिवार्य है।

त्रैलोक्योऽपि ये दोषास्तेः, ते सर्वे लोभ संभवाः।
गुणास्तथैवयेकेऽपि ते सर्वे लोभ वर्जनात्॥

तीनों लोकों में अधोलोक में, मध्यलोक में, ऊर्ध्वलोक में जो भी दोष विद्यमान हैं वे सभी लोक लोभरूपी चुम्बकीय शक्ति के माध्यम से खिंचे चले आते हैं इसलिए लोभ को पाप नहीं, महापाप कहा है–

'लोभ पाप का बाप बखाना'

समस्त पापों का यदि कोई जन्मदाता है तो वह है लोभ, सभी कषायों की यदि जननी है तो लोभ है, समस्त संसार के दुर्गुणों को देने वाला लोभ होता है, सप्त व्यसनों में प्रवृत्ति कराने वाला लोभ होता है। बिना लोभ के कोई भी प्राणी संसार में कोई भी पाप नहीं कर सकता। लोभ ही सब पापों को कराता है। चाहे वह लोभ अपने जीवन का हो, चाहे वह लोभ भोगों का हो, चाहे वह लोभ आरोग्यता का हो, चाहे वह लोभ यश-कीर्ति का, धन, मान, प्रतिष्ठा का हो। लोभ प्राणी से न जाने कौन-कौन से पाप नहीं करा देता। भूखा व्यक्ति फिर भी कम पाप करेगा किन्तु लोभी व्यक्ति बहुत पाप करता है, भूखा व्यक्ति एक बार ईमानदार हो सकता है, गरीब व्यक्ति ईमानदार हो सकता है किन्तु लोभी व्यक्ति कभी ईमानदार नहीं हो सकता। वह नियम से बेईमान होगा। चाहे वह गरीब हो चाहे वह अमीर हो। निश्चित वह बेईमान होता है। कहने का आशय यह है कि लोभ को जिसने जीत लिया है, ऐसे व्यक्ति के लिए संसार में कोई भी दुःख नहीं हो सकता क्योंकि वह लोभ को जीतने वाला व्यक्ति राजाओं का राजा कहलाता है। वह तो राजाओं का सम्राट है। बहुत बड़ा राजा है उसके सामने तो चक्रवर्ती को भी नतमस्तक होना पड़ता है, क्योंकि उसे लोभ ही नहीं है, इच्छा ही नहीं है इसलिए उसे दुनिया का सबसे बड़ा व्यक्ति कहा है। वास्तव में देखा जाये तो वह दुनिया का प्रधानमंत्री है। तीन लोक का नाथ वही है जिसके अंदर रंच मात्र भी लोभ नहीं रहा और लोभ को जिसने क्षय कर दिया है। ऐसा व्यक्ति अन्तर्मुहूर्त में तीन लोक का नाथ केवली भगवान बन जाता है और केवली भगवान को त्रिलोकाधिपति कहते हैं क्योंकि वे तीन लोक के नाथ बन चुके।

"गुणास्तथैव ...... " जिसके पास तीनों लोकों में जो कोई भी गुण

सर्वोदयी चिन्तन

तन की पवित्रता से चेतना की पवित्रता नहीं होती किन्तु चेतन की पवित्रता से तन भी पवित्र हो जाता है। जो जल तन को ही पवित्र नहीं कर सकता वह मन व चेतन को कैसे पवित्र करेगा?

पाया जाता है वह लोभ के त्याग से ही पाया जाता है। लोभी प्राणी कभी गुणी नहीं हो सकता है। क्योंकि लोभ के आवेश में आकर के तीव्र पाप करता है। जघन्य पाप करता है तो वह लोभी प्राणी पाप की मूर्ति कहलाता है। लोभ की परिभाषा आचार्यों ने कही–

'युक्त काले धन व्ययादभावो लोभः'

'युक्त काल में धन के व्यय का अभाव लोभ कहलाता है।' जब धन खर्च करने की आवश्यकता है उस समय धन खर्च नहीं करना लोभ कहलाता है। जब शरीर से श्रम करने की आवश्यकता है आपने श्रम नहीं किया ये लोभ है। जब धर्म करने की आवश्यकता है तब भी आपने धर्म नहीं किया, जब सेवा करने की आवश्यकता है तब सेवा आपने नहीं की, जब परोपकार करने की आवश्यकता है तब परोपकार नहीं किया ये लोभ कहलाता है। महानुभाव! जो व्यक्ति लोभी होता है, वह कभी अपने धन का भोक्ता नहीं हो सकता, लोभी व्यक्ति समीचीन रूप से अपने तन का भी भोक्ता नहीं हो सकता है, लोभी व्यक्ति कभी भी अपने वैभव का भोक्ता नहीं हो सकता, वह लोभी मालिक नहीं हो सकता, वह नौकर होता है, वह तो चौकीदार होता है, चौकीदारी करता है उस धन की। वह कभी उपभोग नहीं कर सकता, उपभोग तो वही कर सकता है जिसके पास संतोष हो।

सर्वोदयी चिन्तन

जो स्वात्म गुण निधि में ही संतुष्ट है उसी को निर्लोभता रूपी विद्या सिद्ध हो सकती है। जब तक लोभ रूपी पिशाच जीवित है, स्वेच्छाचारी है, तब तक वह नाना रूप धारण कर आपका मन स्थिर नहीं होने देगा।

जहाँ पर 'बस' यह शब्द आ जाए समझ लेना वह व्यक्ति अपने धन का समीचीन सदुपयोग कर रहा है और जिसकी भूख ये है– थोड़ा और मिल जाए–थोड़ा और मिल जाए, थोड़ा और–और करते–करते जो कुछ उसके पास है उसका सही स्वाद नहीं ले सकता, वह हमेशा माँगता ही रहता है उसकी Demand कभी पूरी

नहीं हो पाती। वह हमेशा यही कहता है 'And', उसके जीवन में 'और' 'And' लगा रहता है, जो कुछ भी प्राप्त हो गया तो कहेगा 'And', और चाहिए, पुनः प्राप्त हो गया तो और चाहिए, पुनः प्राप्त हो गया, और चाहिए, वह कभी सन्तुष्ट नहीं हो पाता है। वह चाहता ही चाहता रहता है किन्तु 'वह And, End हो जाए तो आप अपने जीवन में एक योगी की तरह से आनंद को प्राप्त कर सकते हो।' परमानन्द, परमसुख की अनुभूति कर सकते हो किन्तु वह And, End नहीं बन पाता है, And ही रहता है। प्रायः कर लोग दूसरों की गलती तो देख लेते हैं और कहते हैं अरे! तुम बहुत लोभी हो किन्तु अपनी तरफ नहीं देखते हैं। क्या तुम लोभी नहीं हो? क्या तुम्हारी भूख नहीं है, तुम भी तो चाहते हो, और मिले, और मिले। मुझे लगता है संसार में ऐसा व्यक्ति खोजना बड़ा कठिन है जो निर्लोभी हो। क्षमाशील मिलना आसान है, विनम्र एवं विनयशील खोजना आसान है, सरल एवं सहज स्वभावी खोज लेना आसान है किन्तु निर्लोभी खोजना बड़ा कठिन है। करोड़ों में एक क्षमाशील मिलेगा, अरबों-खरबों में विनम्र मिलेगा, और पुनः नील और पद्म संख्या के बीच में एक सरल मिलेगा किन्तु असंख्यात के बीच में शंख-शंख इतने लोगों के बीच में एक निर्लोभी व्यक्ति बड़ी दुर्लभता से मिलेगा क्योंकि लोभ की आग प्रायः कर सबके अंदर विद्यमान है। और तो क्या जो व्यक्ति ऊपर से सरलता-सहजता की मूर्ति हैं उनके अंदर भी कभी-कभी लोभ की अग्नि जलती दिखाई दे जाती है। उनके अंदर भी लोभ जाग जाए अपने 'यश का' मेरा पूरी दुनिया में यश फैल जाए, मेरी कीर्ति पूरी दुनिया में फैल जाए, मैं प्रसिद्ध हो जाऊँ, मेरा बहुत सम्मान हो, लोग मेरी खूब पूजा-अर्चना करें अथवा ये भी लोभ हो सकता है, मैं दीर्घ काल तक जीऊँ।

सर्वोदयी चिन्तन

जहाँ लोभ रूपी सर्प लपलपा रहे हैं, वहाँ निराकुलता कहाँ? पर के त्याग बिना निज की प्राप्ति असंभव ही है। पर वस्तु ग्रहण का भाव उत्तम शौच की हत्या करना है।

जीवन का भी लोभ हो सकता है, मैं सदैव निरोग रहूँ आरोग्यता का भी लोभ हो सकता है अथवा मेरे जीवन में पाप कर्म नष्ट हो जाएँ मैं पुण्यकोष बन जाऊँ पुण्य का भी लोभ हो सकता है। किन्तु सम्पूर्ण लोभ का त्याग करने वाले मुनिराज, बारहवें गुणस्थान वाले या उससे ऊपर वाले ही मुनिराज निर्लोभी होते हैं, दसवें गुणस्थान वाले भी सूक्ष्म लोभ से सहित हैं। ग्यारहवें गुणस्थान वाले लोभ से सहित तो नहीं किन्तु उनका लोभ दबा हुआ है उदय को प्राप्त नही हुआ है।

सर्वोदयी चिन्तन

ग्रीष्म ऋतु की तेज धूप से तपे हुए प्राणियों को शीतल जल में स्नान करने, डुबकी लगाने से तन को सुख मिलता है, उसी प्रकार लोभ रूपी आताप से तपे प्राणियों को समता रूपी जल में नहाने व निर्विकल्प ध्यान के सागर में डुबकी लगाने से चेतना को आनन्द मिलता है।

लोभ कलंक त्यागेन यः आत्म शुचि भावना।
सशौच उत्तम तीर्थः, सर्व ताप विनाशकम्॥

जब तक लोभ रूपी कलंक का त्याग नहीं किया जायेगा, तब तक यह आत्मा शुचिता को प्राप्त नहीं हो सकती। इस आत्मा को शुद्ध करने के लिए लोभ को त्यागना आवश्यक ही नहीं अनिवार्य है तो शुचि का अर्थ होता है–

'शुचिर्भावं शौचं'

'पवित्रता के परिणाम होना।' तन भी निर्मल, मन भी निर्मल, चेतना भी निर्मल, वचन भी निर्मल जहाँ देखो वहाँ निर्मल, ऐसी निर्मलता कब प्राप्त हो? वह निर्मलता लोभ को त्यागने पर ही प्राप्त हो सकती है। जब तक लोभ की कीचड़ का अंश हमारे अंदर रहेगा तब तक निर्मलता नहीं आ सकती। उस लोभ की कीचड़ धोने के लिए आचार्य भगवन् कार्तिकेय स्वामी ने कार्तिकेय अनुप्रेक्षा की 397वीं गाथा में कहा–

'सम सन्तोष जलेण जो धोवदि तिव्वलोहमदि पुंजं'

जो समता रूपी और सन्तोष रूपी जल से लोभ के मल रूपी

पुंज को धोता है। यदि श्रमण है तो साम्यभाव के द्वारा वह लोभ कषाय को धोता है, लोभ की कीचड़ को धोता है और यदि श्रावक है तो संतोष धारण करता है और जो संतोषी श्रावक होता है वह भी पूजा, अर्चना, सम्मान को उसी प्रकार प्राप्त होता है जिस प्रकार समताधारी संत श्रमणों में पूज्यता को प्राप्त होते हैं। किन्तु ऐसे सन्तोषी श्रावक बहुत कम मिलते हैं। नीतिकार कहते हैं–

गोधन, गजधन, बाजधन और रतनधन खान।
जब आवे सन्तोष धन सब धन धूल समान॥

ये बात नीतिकार कहते हैं। किन्तु अज्ञेय, अज्ञानी पुरुष कहते हैं–

गोधन, गजधन बाजधन और रतनधन खान।
जब आवे ससुराल धन सब धन धूल समान॥

जब तक ससुराल से धन न मिले तब तक इस धन की तो कोई कीमत है ही नहीं। वह भीख माँगने के लिए भिखारी बन जाता है। भिखारी के कई रूप होते हैं। कोई फटे कपड़े पहनकर जाता है, तो कोई अच्छे कपड़े पहनकर जाता है किन्तु उस दर पर भीख फटे कपड़े पहन कर नहीं मिलती, उस दर पर तो भीख थ्री पीस पहनकर और सिर पर मुकुट लगाकर जाओगे फिर माँगोगे तब भीख मिलेगी। ऐसे भी भिखारी होते हैं जो परमात्मा से नहीं ससुर से माँगते है उसे परमात्मा से ज्यादा विश्वास ससुर के ऊपर होता है। उसे ऐसा लगता है ससुर ही मेरा भाग्य विधाता है, ससुर से नहीं माँगूगा तो मेरा जीवन कैसे चलेगा? कहने का आशय यह था संतोष धन से सहित सम्पूर्ण धन धूलि के समान है इसलिए संतोष रूपी धन को प्राप्त करने का प्रसाय करना है। जहाँ तीन लोक की सम्पत्ति भी मिल जाए लेकिन संतोष नहीं

सर्वोदयी चिन्तन
लोभ के माध्यम से संसार की समस्त वस्तुओं को कदाचित् तुम प्राप्त कर भी लो, किन्तु आत्मनिधि की प्राप्ति अत्यन्त दुर्लभ ही है।

मिले तो वह सम्पत्ति क्षण-भंगुर है, वह धूल-मिट्टी के समान है, वह सम्पत्ति, सम्पत्ति नहीं विपत्ति है। वह प्राण लेवा भी बन सकती है। शायद आपने देखा होगा जिसके पास बहुत अधिक धन होता है उसका बहुत जल्दी अपहरण हो जाता है। और जिसके पास ज्यादा नहीं है, हवा फैल गई पूरे नगर में तो आस-पास के लुटेरे पकड़ कर ले जाते हैं, मार-पीट करते हैं, प्राण तक ले लेते हैं। जो धन तुम्हारे प्राणों को लूट ले, जो धन तुम्हें नरक जैसी वेदना दे, जिस धन के कारण तुम्हारे घर में कलह मची रहे, वह धन-धन नहीं विपत्ति है। जिस धन-वैभव के कारण एक भाई-दूसरे भाई पर चक्र चला दे इससे बड़ी अधम, निकृष्ट बात और क्या हो सकती है?

सर्वोदयी चिन्तन

लोभ एक ऐसी अग्नि है जिसमें आत्मा के समस्त गुणों को भस्म करने की सामर्थ्य है, जिनके पास संयम, तप, समता, ध्यानरूपी जल नहीं, वे लोभरूपी अग्नि में झुलसे हुए हैं।

महानुभाव!

धन वास्तव में ही दुःख है, संकट है, इसलिए नीतिकारों ने इसको 'धन' बड़ी सोच-समझ कर कहा है। धन का अर्थ होता है 'जो धर्म को नष्ट करके आये'। 'ध' का अर्थ है धर्म और 'न' का अर्थ 'नष्ट'। जो धर्म को नष्ट करके आता है वह धन कहलाता है। और सम्पत्ति 'जो समीचीनता के प्रति आपको समर्पित कर दे, जो समीचीनता से आपको जोड़ दे, तुम्हारा, सम्बन्ध एक साथ जोड़ दे तब तक वह आपकी सम्पत्ति होती है। वही समीचीन सम्पत्ति होती है।

'जिण गुण सम्पत्ति होउ मज्झं'

मुझे जिनेन्द्र भगवान के गुणरूपी सम्पत्ति की प्राप्ति हो, बाहर की सम्पत्ति को मैं नहीं चाहता। बाहर की सम्पत्ति के पीछे दौड़ोगे तो भी दौड़-दौड़कर प्राप्त नहीं कर पाओगे। आज तक बाहर की

सम्पत्ति को कोई पूर्ण रूप से नहीं प्राप्त कर पाया, कोई भोग नहीं पाया, उससे उसकी इच्छा पूर्ति नहीं हुई, सम्पत्ति के लिए नीतिकारों ने छाया की उपमा दी है। और छाया कैसी होती है–

छाया माया एक सी, विरला जाने कोय।
भगता के पीछे फिरे, सन्मुख भागे सोय।।

जो गति छाया की होती है, वही गति माया की होती है। छाया को यदि तुम पकड़ने के लिए दौड़ोगे तो पकड़ नहीं पाओगे। ज्यों-ज्यों छाया की तरफ तुम दौड़ते जाओगे, छाया तुमसे आगे होती जायेगी। तुम अपनी छाया को नाप नहीं सकते। जब सूर्य तुम्हारे सिर के ऊपर हो जाए तो छाया तुम्हारे पैरों के नीचे दब जायेगी। वह छाया एक ऐसी परी है, देवांगना है जो दिखाई तो देती है पर पकड़ में नहीं आती। ऐसा लगता है कि वह सामने खड़ी है, जाकर पकड़ लूँ किन्तु पकड़ में नहीं आती। जैसे आपको भी ऐसा लगता है कि सामने निगाह डालते हैं तो सामने आकाश झुका हुआ है, मुड़ा हुआ है। चारों तरफ से और सामने तो है ही दौड़ के जायेंगे तो पहुँच कर पकड़ लेंगे किन्तु जैसे ही दौड़कर पहुँचते हैं आकाश का झुका हुआ हिस्सा और आगे लगता है। फिर और आगे पहुँचे तो पुनः लगता है आ गए पास में और दौड़ते-दौड़ते यदि वह पूरा जीवन भी समाप्त कर देता है तो भी उस स्थान को प्राप्त नहीं कर पाता है। संसार की अवस्था भी यही है। 'संसार में दिखता कुछ और है और होता कुछ और है।' जैसा है वैसा तुम लोग देख नहीं पाते, तुम लोग तो जैसा नहीं है वैसा देख लेते हो। और कभी-कभी तो आप विपरीत अवस्था भी देख लेते हैं। जैसे आपने आकाश को झुका हुआ देख लिया लेकिन आकाश झुका नहीं है। यह पंखा चल रहा है इस पंखे में आपको तीन पंखुड़ियाँ दिखाई दे रही हैं? नहीं दे रहीं, एक चक्र सा दिखायी दे रहा है। छोटे-छोटे बालक लकड़ी में आग लगा करके जब पुनः उसे घुमाते हैं तो अग्नि का एक गोला सा दिखाई देता है,

लकड़ी दिखाई नहीं देती। कहने का आशय यह है कि अग्नि का गोला है नहीं, पर दिखाई दे गया। स्वप्न में कोई ऐसी चीज जो नहीं है वह दिखाई दे गई, आकाश मुड़ा नहीं है लेकिन दिख गया तो जैसे आप हैं नहीं वैसा देख लिया और जैसा जो नहीं है वैसा देख लेता है। वह जीवन में दु:खों को आमंत्रित कर लेता है अथवा सत्य से छूट जाता है, जीवन में सत्य को कभी प्राप्त नहीं कर पाता है। ये अवस्था संसार की अवस्था है। संसारी प्राणी जो जैसी वस्तु है उसे वैसा न देखकर के अन्य प्रकार से देख लेते हैं। जैसे पर वस्तु ग्रहण करने में सुख नहीं दु:ख है। लेकिन संसारी प्राणी देख लेता है इसमें सुख ही है। वह धन को प्राप्त करके सोचता है मैं सुखी हो जाऊँगा, अन्य स्त्री पुत्र आदि को प्राप्त करके सुखी हो जाऊँगा ऐसा मानता और जानता है। किन्तु यह हकीकत नहीं है यह तो मिथ्या धारणा है। जितना तुम पर वस्तुओं को ग्रहण करते जाओगे उतना दु:खों को समेटते जाओगे। और जितना पर वस्तुओं को त्याग करते जाओगे उतना दु:खों से मुक्त हो जाओगे। निजी चेतना सुख का हेतु है। जो पर में सुख भोग रहे हैं वे नितान्त मूर्ख हैं।

सर्वोदयी चिन्तन

निर्लोभता से जब मुझे अक्षय सुख शांति आदि अनंत गुणों की प्राप्ति हो रही है फिर मैं लोभ के माध्यम से पापकूप में क्यों पड़ूँ?

''छाया माया एक सी, विरला जाने कोय''

छाया माया के रहस्य को कोई विरला व्यक्ति ही जान सकता है सभी इसके रहस्य को नहीं जान सकते हैं। बहुत से जासूस हैं जो जासूसी कर काम करते हैं, रहस्यपूर्ण तथ्यों को खोजने का काम करते हैं किन्तु अभी तक वे जासूस भी छाया और माया के रहस्य को नहीं जान पाये। बहुत सारी जाँच करने के बाद भी कुछ हाथ नहीं लगा, मात्र पुद्‌गल ही प्राप्त किया, चेतना का एक भी गुण प्राप्त नहीं कर सके। छाया आगे-आगे दौड़ती है। उसी प्रकार सम्पत्ति को पकड़ने के लिए व्यक्ति दौड़ता है तो सम्पत्ति भी आगे-आगे दौड़ती

हैं। उसे व्यक्ति प्राप्त नहीं कर पाता किन्तु जो व्यक्ति छाया को पीठ देकर के दौड़ता है तो छाया उसका कभी पीछा नहीं छोड़ती, उसी प्रकार जो व्यक्ति सम्पत्ति को पीठ देकर के दौड़ता है तो सम्पत्ति भी उसके पीछ़-पीछे दौड़ती है। आपने सुना होगा कि एक बार भगवान् महावीर स्वामी ने लक्ष्मी का त्याग किया था, जब लक्ष्मी ने कहा मैं तुम्हारा पीछा नहीं छोड़ूँगी, चाहे दीक्षा ले लो, चाहे केवल ज्ञान प्राप्त करो कहीं न कहीं तो तुम जाओगे, जहाँ कहीं भी तुम जाओगे मैं वहाँ पहुँच जाऊँगी तो कहने का आशय ये है–'सम्पत्ति पीठ दिखाने वालों को छोड़ती नहीं और सन्मुख मुँह करके दौड़ने वालों के पास टिकती नहीं' तो ये बात कही थी।

तीव्र लोभ के पुंज को समता और सन्तोषमय जल से जो धोता है वह क्या करता है–

'सम संतोष जलेण, जो धोवदि तिव्व लोहमल पुंजुं।
भोयण गिद्ध विहीणो, तस्ससउचं हवे विमलं॥'

तथा इसके साथ-साथ जिसकी भोजन के प्रति आसक्ति नहीं है कोई भोजन के लोभी होते हैं आसक्त होते हैं पुनः वह इतना खाते हैं कि पचा नहीं पाते और कभी-कभी बीमार पड़ जाते हैं, बीमार पड़ने के उपरांत बेमौत मर भी जाते हैं। भोजन की गृद्धता से रहित हैं ऐसे मुनिराज के लिए या श्रावक या महान पुरुष के लिए उत्तम शौच धर्म होता है। और जिसके अंदर लोभ विद्यमान है उसके अंदर शौच धर्म विद्यमान नहीं रह पाता। इसलिये लोभ को छोड़ना है, जो लोभ पाप का कारण ही नहीं महा पाप का कारण है, जिस लोभ के कारण क्रोध भी उत्पन्न होता है। नीतिकार कहते हैं–

''लोभात्क्रोधः प्रभवति, लोभात् कामः प्रजायते।
लोभात् मोहास्य नायस्य, लोभः पापस्य कारणम्॥''

लोभ से क्रोध उत्पन्न होता है, लोभ से जीव संसार में भ्रमण

करता है। लोभ से जीव के समस्त गुण नष्ट हो जाते हैं, लोभ पाप का कारण है। क्योंकि नीतिकार ने बात कही थी–

"मातरम् पितरम् पुत्रम्, भ्रातरम् वा सुहृतम्।
लोभाविष्टो नरो हंति, स्वामिनं वा सहोदरम्॥

जो लोभाविष्ट होता है वह लोभ के आवेश में आकर के अपनी माँ का भी घात कर देता है, पिता का भी घात कर देता है, पुत्र का भी घात कर देता है, भाई का भी घात कर देता है, मित्र का भी घात कर देता है। लोभी व्यक्ति जिस पाप को नहीं कर सके ऐसा कोई पाप संसार में नहीं है। यानि लोभी व्यक्ति संसार के सभी पाप करता है। आपने पढ़ा होगा मुगल साम्राज्य में एक शासक ने दूसरे शासक को मार दिया। कभी तो पिता ने पुत्र को मार दिया, कभी पुत्र ने पिता को मार दिया, कभी भाई ने भाई को मार दिया, कभी किसी ने जेल में डाल दिया उस राज्य के लिए। राज्य के लोभ में आकर के कितने-कितने अनर्थ नहीं किये। मित्र का घात करने वाले दृष्टांत सैकड़ों-हजारों प्राप्त हो जायेंगे। जिसने लोभ के कारण अपने मित्र का घात किया। ऐसे बहुत सारे दृष्टांत सुनने को मिल जायेंगे।

सर्वोदयी चिन्तन

उत्तम शौच धर्म सर्व धर्मों का दादा है तो लोभ सम्पूर्ण अनर्थों का बाप एवं पाप पितामह।

'चार चोर चोरी करने गए थे, रात में बहुत धन लूट लिया था और लेकर के पुनः एक जंगल में पहुँच गए कहीं पुलिस पता न लगा ले। जंगल में वे चारों धन को बाँटने लगे तो चार में से दो कहते हैं इसे रात में ले जायेंगे, अभी भूख लगी है इसलिए बाजार से कुछ लेकर आ जाओ। दो व्यक्ति भोजन लेने जाते हैं और दो वहीं रह जाते हैं। जो भोजन लेने के लिए गए थे उनके मन में पाप आ गया, इतना धन लूट लिया है इसको हम दोनों आपस में बाँट लेंगे तो चैन से जिन्दगी भर रहेंगे। इसलिए एक उपाय करना चाहिए उस धन के

चार हिस्से नहीं दो हिस्से हों तो अति उत्तम रहे। दो हिस्से कैसे हों? अरे! एक अच्छा उपाय है 'उनको मार दिया जाए तो दो हिस्से हो जायेंगे।' यदि मारेंगे तो उनके पास भी बन्दूकें हैं वे हमें भी तो मार सकते हैं। 'नहीं' हमें बन्दूक से वार नहीं करना है, हम भोजन लेकर जा रहे हैं इस भोजन में जहर मिला दिया जाए तो जैसे ही वे भोजन करेंगे तो मर जायेंगे। और उन्होंने ऐसा ही किया। विषमिश्रित भोजन ले करके उन दोनों मित्रों के पास आते हैं। जो कि चार मित्र चार कषाय के समान एक साथ रहने वाले एक दूसरे से कभी अलग नहीं होते थे किन्तु दोनों के मन में पाप आ गया, उधर वे भी सोच रहे हैं यदि आने वालों को मार दिया जाये तो पुनः सारा धन हमें मिल जायेगा। दोनों की योजनायें दोनों तरफ से चल रही हैं। वे जहर मिश्रित भोजन लेकर आ गये और वे सामने बंदूक तैयार लिए बैठे हुए हैं। जैसे ही वे दोनों सामने आए अपनी बंदूक से दोनों को मार दिया, दोनों मर गये। दोनों जो भोजन लेकर आये थे उस भोजन की पोटली को बाकी बचे दोनों चोरों ने, जिन्हें भूख लगी थी, भोजन करने बैठे और खाते ही दोनों परलोकगामी हो गये। उस सम्पत्ति के कारण चारों चले गये, लोभ के कारण चारों मर गये। यदि लोभ नहीं करते तो हो सकता है उस सम्पत्ति के माध्यम से अपना जीवन यापन अच्छी तरह कर सकते।' कहने का आशय यह है कि ये लोभ प्राणी से न जाने कितने पाप करा देता है। लोभी व्यक्ति की एक और कथा आपने सुनी होगी–

एक विद्वान् पंडित बनारस से पढ़कर आता है। जब बनारस से पढ़कर आया तो उसकी पत्नी ने पूछा 'तुम क्या पढ़कर आये'। मैं व्याकरण, न्याय, सिद्धान्त, अध्यात्म सब कुछ पढ़कर आ गया। पत्नी ने कहा अच्छा तुमने सब कुछ पढ़ लिया है तो तुम मेरे एक सवाल का उत्तर दो, यदि उत्तर सही रहा तब तो ठीक है अन्यथा आपकी विद्या आपका ज्ञान अधूरा कहलायेगा। उसने कहा ठीक है मैं उत्तर

देता हूँ, प्रश्न पूछ क्या पूछती है? ये बताओ पाप का बाप कौन है? उसने कहा अभी तक तो हमने सुना मनुष्यों के बाप होते हैं, ज्यादा से ज्यादा कहें तो पशुओं के बाप होते हैं, नारकी और देवों के भी बाप नहीं होते। अब ये पूछा है पाप का बाप कौन है? पाप कोई संतान तो है नहीं जिनका कोई बाप हो। वह अपने ग्रंथों में खोजकर देखता है किन्तु कहीं भी पाप का बाप नहीं मिला। न ज्योतिष शास्त्र में मिला, न उसे इतिहास में मिला, न उसे कहीं साहित्य में मिला, न व्याकरण और न्याय के शास्त्रों में पाप का बाप मिला। जब उसे पाप का बाप नहीं मिला तो उसकी पत्नी कहती है 'आपकी विद्या अधूरी है' इसलिए पहले विद्या को पूरी करके आओ तभी मैं आपको स्वीकार करूँगी। ठीक है मैं पुनः जाता हूँ। वह बनारस के लिए चल देता है। रास्ते में एक स्थान पर ठहरता है उसने सोचा यहाँ भोजन-पानी बनाया जाए, धर्मशाला है, निकट में उद्यान है और यहाँ कोई बस्ती भी नहीं है, सुनसान है। वहाँ पर अपने भोजन बनाने के उद्देश्य से ठहर गया। विश्राम कर ही रहा था कि एक वेश्या वहाँ पर आ जाती है। और वह वेश्या उन पंडित जी महाराज से पूछती है 'आप कहाँ से आ रहे हैं? कहाँ जा रहे हैं? किस उद्देश्य से यहाँ ठहरे हुए हैं?' उस विद्वान् ने सम्पूर्ण बातें बता दी मैं अपने देश से आ रहा हूँ और बनारस अध्ययन करने जा रहा हूँ। 12 साल में मैंने पूरी विद्या पढ़ ली किन्तु पाप का बाप किसे कहते हैं, ये मैंने अभी तक नहीं जाना? उसे ही सीखने के लिए जा रहा हूँ। मेरी पत्नी ने मुझे स्वीकार नहीं किया। वेश्या बोली पाप का बाप सीखने के लिए इतनी दूर जाओगे, उसको तो मैं तुम्हें यहीं पर सिखा दूँगी। अच्छा है, यहीं पर सिखा दो बहुत अच्छा है। सिखाने का क्या लोगी? बोली कुछ नहीं । सिखाने की क्या है विद्या कोई बेची नहीं जाती है, हम वैसे ही सिखा देंगे 'ठीक है'। मैं भोजन अभी तैयार करता हूँ और भोजन करने के उपरांत तुमसे पाठ सीखूँगा। अच्छा उसने कहा- भोजन तैयार मैं कर दूँ। तुम्हारे हाथ का भोजन मैं कैसे ले सकता हूँ?

तुम्हारी जाति का मालूम नहीं तुम कौन हो? उसने कहा मैं जाति से वेश्या हूँ। फिर तो मुझे तुमसे वार्ता भी नहीं करनी चाहिए, तुम मेरे सामने कैसे आ गयी, तुम्हारी वार्ता भी मुझे नहीं सुननी चाहिए, मेरे सामने तुम खड़ी कैसे हुई? तुम्हारी परछाई भी मेरे सामने नहीं पड़नी चाहिए, चलो दूर हटो तो पुनः वह कहती है मैं भी तो एक इंसान हूँ और तुम्हें यदि पाप का बाप सीखना है तो मैं सिखा सकती हूँ बाद में भले ही तुम प्रायश्चित ले लेना और पाप का बाप सीखते समय दस रुपये आपको ईनाम में भी दिए जायेंगे। उसके मन में थोड़ा लोभ आया, वहाँ तक कौन जाए बनारस फिर सीख कर लौटकर कब आयेंगे। पत्नी को छोड़े बहुत समय हो गया है, अब पत्नी को देख लिया है और बार-बार याद भी आ रही है। अब वहाँ पहुँच भी गए तो पुनः वह पाठ याद हुआ, नहीं हुआ, इससे अच्छा है पाठ यहीं पर पूछ लें और दस रुपये भी मिल रहे हैं। ठीक है सिखा दो, प्रायश्चित बाद में ले लेंगे, यद्यपि शास्त्रों में ऐसा कहा है सत्य पुरुषों को, सदाचारी पुरुषों को कभी वेश्याओं से चर्चा नहीं करनी चाहिए, वह भी एकान्त स्थान में बहुत बड़ा पाप होता है फिर भी चलो, मैं प्रायश्चित कर लूँगा, कोई बात नहीं, चलो, सीख लेता हूँ तुमसे। वह वेश्या कहती है थोड़ा समय लगेगा इसलिए भोजन करने के उपरांत ही सीखें तो ठीक रहे। वह व्यक्ति कहता है मैं भोजन बनाकर अभी आता हूँ आप सिखा देना। उस वेश्या ने कहा- तुम्हारे पास यहाँ भोजन बनाने के लिए क्या है? वह कहता है- यहीं से कुछ आटा लाकर कुछ चपाती बनाऊँगा और दाल, चावल बनाकर के मैं वहाँ आता हूँ। उसने कहा- तुम कहाँ से लाओगे, तुम्हारे पास पैसे भी नहीं होंगे, सामान मैं तुम्हारे लिए ला देती हूँ, तुम्हें बाजार भी नहीं मालूम कहाँ है। तो वह वेश्या से सामान भी लाने को कह देता है पुनः वह सामान लेकर आयी तो वह पैसे देने लगा। वेश्या कहती है, इसका पैसा क्या देते हो इस सामान में मैं क्या घुस गई हूँ, सामान तो शुद्ध है, बाजार से आया है इसलिए इस सामान को स्वीकार कर

लो, आप हमारे अतिथि हैं हमारे आतिथ्य को स्वीकार करो। उसने सामान स्वीकार कर लिया बोला– रसोई मैं बना लेता हूँ। वह वेश्या कहती है यदि आप मेरे हाथ से रसोई बनवा लें, तो मैं आपको सौ रुपये दूँगी, उस विद्वान् ब्राह्मण के मन में थोड़ा लोभ और जगा सौ रुपये तो मैं वर्षों में कमा पाऊँगा ये तो एक बार में मिल रहे हैं। और रसोई बनाने में क्या वेश्या इसमें घुस थोड़े ही जायेगी, वह भी एक स्त्री है। कोई बात नहीं उसके हाथ से बनवा लेते हैं सो उसने इजाजत दे दी। जब रसोई तैयार हो गई उसने कहा– भोजन तैयार है। वह स्नान आदि करके वस्त्र पहनकर उस स्थान पर पहुँचा जहाँ रसोई बनी थी, वेश्या ने एक हजार रुपये की थैली सामने डाल दी और कहा यदि एक ग्रास भोजन आप मेरे हाथ से ले लें तो एक हजार रुपये आपके लिए न्यौछावर हैं और मैं तिर जाऊँगी, मेरा कल्याण हो जायेगा, तुम्हारा क्या बिगड़ता है इसलिए तुम मेरे हाथ से एक ग्रास भोजन ले लो। उसने स्वीकार कर लिया वेश्या ने एक ग्रास लिया उसके मुँह की तरफ बढ़ाया उसने अपना मुँह खोल दिया और वेश्या ने ग्रास उसके मुँह की तरफ न डालकर जमीन के ऊपर डाल दिया। एक कसकर तमाचा लगाया उस विद्वान् का मुँह घूम गया। वह कहता है– क्यों क्या हो गया, तुम्हें इतनी भी तमीज नहीं है, एक ब्राह्मण को, पंडित को तमाचा लगाती हो, तुम्हारी इतनी हिम्मत। बहुत गर्म हो जाता है, डाँटने लगता है। वेश्या क्षमा याचना कर कहती है– तुम्हारे कहने पर ही तो मैंने पाप का बाप सिखाया है। यही पाप का बाप है जिस लोभ के कारण आपने पाप से भी बड़ा पाप कर लिया। कहाँ तो मुझसे चर्चा करना नहीं चाह रहे थे कि मैं वेश्या से चर्चा नहीं कर सकता, वह भी अकेले में और एकान्त में चर्चा भी की, मेरे पैसों से ही भोजन सामग्री मँगवायी, मैंने बना भी दी, आपने स्वीकार भी कर ली और लोभ में आ करके मेरे हाथ का भोजन करना स्वीकार कर लिया। यही तो है पाप का बाप, आप जिस कारण पाप करने पर उतारू हो गये, वह था 'लोभ' तो–

'लोभ ही पाप का बाप कहलाता है।'

किन्तु लोभी व्यक्ति का धन जैसा आता है वैसा ही चला जाता है, ऐसा नहीं है जिसका धन ईमानदारी से आया हो, पुण्य की कमाई से आया हो, और वैसे ही चला जाए और जिसकी पाप की कमाई हो, फलीभूत हो ऐसा नहीं होगा। लोग दो नम्बर का पैसा कमाते हैं, गरीबों का खून चूसते हैं और धन कमाते हैं तो उनका वह पैसा खून में ही चला जाता है। बीमार हो जाते हैं तो खून की बोतल चढ़वाते रहते हैं क्योंकि उन्होंने दूसरों का खून चूसा है तो उनके शरीर में हमेशा खून की कमी बनी रहेगी, रोजाना बोतल चढ़वाओ। कहाँ तक ठीक रहोगे, इन्जेक्शन लगवाते रहो, हमेशा बीमार ही दिखोगे। तुम्हारे पास पैसा जैसे आया है वैसे ही चला जायेगा।

एक बार वेश्या ने भी सोचा कि मैं तिर जाऊँ, मेरा कल्याण हो जाए इस उद्देश्य से वह श्राद्ध-पक्ष में किन्हीं महात्मा की खोज करने निकलती है। पर्यूषण पर्व के पश्चात् पन्द्रह दिनों के लिए श्राद्ध-पक्ष आता है। वैष्णव लोग श्राद्ध-पक्ष मनाते हैं, जिसे हिन्दी भाषा में 'कनागत' कहते हैं। कनागत 'जिसमें अपने पितरों के लिए श्राद्ध दिया जाता है, पिण्ड-दान किया जाता है' और किन्हीं लोगों का निमंत्रण भी किया जाता है। उन लोगों का कहना है ये दिन पूरे वर्ष में सबसे श्रेष्ठ दिन कहलाते हैं। इन दिनों में वैदिक परम्परा को मानने वाले किन्हीं लोगों को भोज कराके ही भोजन करते हैं, बड़ा पुण्य मानते हैं। वेश्या ने भी सोचा कि मेरा कल्याण हो जाए उसने गंगा किनारे घूमते किसी साधक को देखा। वह साधक राम-राम जाप कर रहा था, राम के नाम की एक चादर ओढ़े हुए था, गले में बड़ी-बड़ी रुद्राक्ष की माला, एक हाथ में त्रिशूल, मृगछाल इत्यादि से सहित उसे देख वेश्या ने उनके चरणों में प्रणाम किया, बार-बार निवेदन किया 'कृतार्थ करें, मेरे घर आप लगातार पन्द्रह दिन भोजन करें'। वह भी ऐसा ही सोच रहा था इसलिए उसने स्वीकार कर लिया, पन्द्रह दिन भोजन किया, भोजन करने के उपरांत जब

सोलहवां दिन आया तो पुनः वेश्या ने कहा अब मुझे आशीर्वाद दो जिससे मैं पापों से मुक्त हो जाऊँ। मैंने जो धन पाप से कमाया था उस धन को मैंने पिण्ड में लगा दिया है, अच्छे कार्य में लगा दिया है, मैं मुक्त हो जाऊँगी, मेरा कल्याण हो जायेगा तो आप मुझे आशीष दें। वह आशीष में क्या कहता है–

'सोलह तिथि पूरी भई, खायी खीर और खांड।
पौ को धन पौ में गयो, तू वैश्या हम भांड॥

'एकम् से अमावस्या तक' सोलह दिन तक तुमने मेरी खूब सेवा की, खूब खीर खांड खिलाई, तुम क्या सोच रही हो, हम साधु नहीं हैं। तुम वेश्या हो तो हम भी भांड हैं, हम पंद्रह दिन के लिए साधु बन गये थे, माल चखने के लिए। हमारे पास आशीर्वाद कुछ नहीं है, सोलह दिन में तुमने खूब खीर-खांड खिलाई, हमने खूब जमकर खायी। अब यही आशीष है तुम वेश्या हो हम भांड हैं बस तुमने जैसा कमाया, वैसा तुम्हारा चला गया।

महानुभाव!

यदि धन, अनीति या अनैतिकता के माध्यम से कमाया जाता है तो वह धन वैसे ही चला जाता है। 'चोर का धन चाण्डाल खाए' जब चोर को सजा लगती है तो चाण्डाल को उस चोर का धन जुड़ जाता है क्योंकि पहले ऐसी व्यवस्था थी, जिसको फाँसी की सजा लगती थी उसका धन चाण्डाल को दिया जाता था, आभूषण, गहनें आदि। जो लोभी व्यक्ति होता है, लोभाविष्ट होता है, ऐसा लोभी व्यक्ति अपने धन का कभी सदुपयोग नहीं कर पाता इसलिए कहा गया है यदि तुम उस पाप से मुक्त होना चाहते हो तो तुम्हें पहले उस लोभ से मुक्त होना होगा। यदि लोभ छूट गया तो उस पाप से भी

सर्वोदयी चिन्तन

जब तक पर पदार्थों को प्राप्त करने की इच्छा जीवन में शेष है, तब तक उत्तम शौच धर्म असंभव है, आत्मा में पूर्ण संतुष्ट ही इस धर्म को प्राप्त करने का अधिकारी है।

सर्वोदयी चिन्तन
उत्तम शौच धर्म को क्रोध, मान, माया एवं लोभ को जीते बिना नहीं पा सकते और कषायों को जीत के बाद स्वत: ही उत्तम शौच धर्म प्राप्त हो जाता है।

मुक्त हो सकते हैं। जहाँ लोभ रहता है वहाँ पाँचों पाप रहते हैं और विषय वासना भी रहती है, ये सगे भाई-बहन हैं। एक के साथ सब लगे रहते हैं, पंक्ति जुड़ी रहती है। लोभ पाप का बाप नहीं दादा है, लोभ कषायों की अम्मा है, लोभ विषय वासना की दादी है। जहाँ लोभ आता है वहाँ सब कुछ आ जाता है।

एक नगर में छ: भाई रहते थे उन छ: भाईयों के नाम बड़े अटपटे थे। सबसे बड़े भाई का नाम छौ था, जब गाँव में कहीं से निमंत्रण आता था तो बड़े भाई के नाम से निमंत्रण आता था। जैसे कभी-कभी आप निमंत्रण करते हैं तो सकल करते हैं जिसमें सभी आते हैं, पर कभी-कभी आप क्या करते हैं एक-एक का निमंत्रण करते हैं, उसमें व्यक्तिगत मुखिया को बुला लिया। यदि एक का निमंत्रण आया है भाई के नाम से तो भाई का ही आया है, सबका निमंत्रण आया है तो कोई बात नहीं किन्तु वे लोग एक का आया हो तब भी सभी लोग जाते थे। यदि कोई टोक भी देता था तो कहते थे आपने ही तो कहा था छौ का निमंत्रण है तो हम छौ आ गये। जब वे छौ पहुँच गए निमंत्रण में, भोजन करने के लिए पंगत लगी थी देख लिया छहों बैठे हैं लाइन से, लोगों ने कहा ये छहों कैसे आ गए, हमने तो एक को बुलाया है। ये छ: आ गये चलो कोई बात नहीं, भोजन कर लेने दो बाद में कह देंगे। भोजन करके जैसे ही खड़े हुए तो उन्होंने कहा लज्जा नहीं आयी छहों आ गये तो उन्होंने कहा लज्जा अस्वस्थ थी। उसके लिए हम कटोरा ले आये हैं, उसके लिए इसी में दे दो, हम इसी में ले जायेंगे। लज्जा उनकी बहिन का नाम था। लोभ को 'छौ' समझो, लोभ बड़ा भाई है। जैसे 'छौ' के निमंत्रण में छहों आ जाते थे, लज्जा का कटोरा ले आते थे उसी प्रकार जहाँ लोभ आ जाता है वहाँ पाँचों पाप आ जाते हैं। और वह

लोभ भी विषय वासना का कटोरा ले आता है। ऐसा है यह लोभ, जिसके कारण व्यक्ति पवित्र नहीं हो सकता, परिणाम निर्मल नहीं हो सकते। आज यह 'उत्तम शौच धर्म' आत्मा को निर्मल करने का दिन है, आत्मा को धोना है, शरीर को तो बहुत धोया, शरीर का तो बहुत पालन-पोषण किया, किन्तु शरीर को धोने से कभी कर्म कटते नहीं हैं। कर्म तो आत्मा को धोने से कटते हैं। वह कर्म नदी अर्थात् तीर्थ में स्नान करने से नहीं धुलते हैं।

सर्वोदयी चिन्तन

चेतना को निर्मल बनाने के लिए सर्वप्रथम साधन रूपी सोपान लोभ कषाय को जीतना ही है।

एक बार पाँचों पाण्डव तीर्थयात्रा करने के लिए गए। जब वे यात्रा करने जा रहे थे तो उन्होंने श्रीकृष्ण से भी कहा- आप भी यात्रा करने के लिए चलें किन्तु श्रीकृष्ण जी ने कहा-मैं यात्रा करने नहीं जा पाऊँगा। जिन-जिन तीर्थों में आप जायें मेरी तूमड़ी को भी वहाँ की यात्रा करा दें। जिन-जिन तीर्थों में आप स्नान करें मेरी तूमड़ी को भी स्नान करा देना, उन्होंने ऐसा ही किया। उन्होंने सब जगह यात्रा की, उन्होंने नदी, सागर, सरोवरों में स्नान किया और तूमड़ी को भी स्नान कराया। जब वे एक बार स्नान करते थे तो तूमड़ी को प्रत्येक भाई तीन-तीन बार स्नान कराते थे तो कम से कम पन्द्रह बार तूमड़ी स्नान कर लेती थी, उससे ज्यादा बार भी कर लेती थी। जब लौटकर आये तो वह तूमड़ी वापस श्रीकृष्ण को उन पाण्डवों ने दे दी। श्रीकृष्ण ने उस तूमड़ी को तोड़कर उसका एक-एक टुकड़ा सभी को बाँट दिया, किन्तु वह तूमड़ी मानो जहर जैसी थी, अंतरंग में बहुत कड़वी थी। जैसे श्रीकृष्ण को मानो पहले ही पता हो ये कड़वी है, उन्हें परीक्षा के लिए दी हो। जब सभी ने वह तूमड़ी जीभ पर रखी सभी थू-थू करके तूमड़ी को थूकने लगे। श्रीकृष्ण ने कहा-तुम इसका अपमान करते हो, मेरे द्वारा दी गयी तूमड़ी वह भी अनेक बार अनेक तीर्थों में स्नान की हुई उसे तो तुम प्रसाद मान कर ले नहीं रहे हो, थूक रहे हो क्योंकि उसका कड़वापन

अभी गया नहीं। जिस प्रकार सैकड़ों तीर्थों में स्नान कराने पर तूमड़ी ने अपने कड़वेपन को नहीं छोड़ा, उसी प्रकार उन नदी आदि में स्नान करने से विकार नष्ट नहीं होते। आत्मा ही सबसे बड़ा पुण्य तीर्थ है, उससे बड़ा कोई तीर्थ नहीं क्योंकि आत्मा में ही रत्नत्रय विद्यमान रहता है, उत्पन्न होता है। रत्नत्रय के माध्यम से ही ये आत्मा परमात्मा बनती है।

'आत्मा नदी संयम पुण्य तीर्था:।'

उस आत्मा रूपी नदी का संयम रूपी तीर्थ है। नदी तो बहुत लम्बी-चौड़ी बह रही है किन्तु उस नदी में कई घाट बना लिए जाते हैं, पुण्य स्थान बना लिए जाते हैं वे पुण्य स्थान हैं 'संयम'। आत्मा रूपी नदी में स्नान तो करना है लेकिन संयम रूपी घाट से उतरना है। यदि संयम रूपी घाट नहीं होगा तो आत्मारूपी नदी में प्रवेश नहीं कर पाओगे अत:-

'सत्योदका: शील तटा दयोर्मि'

उस आत्मा रूपी नदी में सत्य रूपी जल विद्यमान है और वह नदी जिसके शील और ब्रह्मचर्य रूपी दृढ़ दो किनारे हैं और दया रूपी लहरें आ रही हैं ऐसी नदी जो कि संयम के घाट से सहित है, आत्मा रूपी नदी है, जिसमें सत्य रूपी पानी बह रहा है और दया रूपी लहरें हिलोरे भर रही हैं, दया, करुणा, अनुकंपा, अहिंसा ये लहरें हैं, विभिन्न प्रकार से उछल रही हैं। ऐसी वह आत्मा-

> **सर्वोदयी चिन्तन**
> यदि मलिन वस्त्र, तन एवं गन्दी बातें तुम्हें पसंद नहीं हैं, तो मन समल क्यों बनाये रखे हो?

'तत्राभिषेकं कुरु पाण्डु पुत्रं'

हे पाण्डु पुत्र! पाण्डवों उस नदी में अपनी आत्मा का अभिषेक करो, उस नदी में अवगाहन करो। इसके बिना तुम्हारी आत्मा शुद्ध नहीं हो सकती।

'न वारिणा शुद्धयति चान्तरात्मा'

ये आत्मा केवल जल से शुद्ध नहीं हो सकती। इसलिए महानुभाव! अन्त में यही कहना है कि अपनी लोभ कषाय को कम करें, कम करके संतोष वृत्ति को धारण करें, जिससे कालान्तर में धीरे-धीरे उस समता भाव को धारण कर सकें, उस उत्तम शौच धर्म को प्राप्त कर सकें, जिसके प्राप्त कर लेने के उपरांत चेतना के सम्पूर्ण गुण प्राप्त हो जाते हैं, चेतना की शाश्वत निधि प्राप्त हो जाती है, आपका चेतना से साक्षात्कार हो जाता है, आपका मोक्ष मार्ग में प्रवेश हो जाता है, ऐसी वह संतोषवृत्ति, ऐसा वह शौच धर्म जो कि सुख और शान्ति की जड़ है, मूल है। यदि आपने उस संतोष-वृत्ति को प्राप्त नहीं किया, ग्रहण करने का आज संकल्प नहीं लिया, अपनी वृत्ति को नहीं बदला, जैसी वृत्ति चल रही है यदि वृत्ति वैसी ही चलती रही तो प्रतिदिन भी उत्तम शौच की जाप लगाते रहो, पूजन करते रहो तो भी तुम्हें कोई लाभ नहीं होगा, क्योंकि केवल जाप करने से, केवल पूजा करने से उत्तम शौच धर्म की प्राप्ति संभव नहीं है। उसके लिए लोभ को कम करने की आवश्यकता है। जो लोभी व्यक्ति होता है वह जाल में फँस जाता है, अत: उस लोभ को छोड़ें जिसने आपको पूरे संसार में घुमाया है। इन्हीं सद्भावनाओं के साथ आप सभी लोगों के लिए 'मंगल आशीर्वाद'।

सर्वोदयी चिन्तन

जीवन में धर्म का प्रारंभ भी प्रशस्त लोभ के बिना नहीं हो सकता।

सर्वोदयी चिन्तन

संसार में जितने भी प्राणी धर्म से च्युत होते हैं, वे लोभ कषाय के कारण ही च्युत होते हैं।

अर्थ सहित कुछ छंद

कामरागमदोन्मत्ता, ये चाक्षवशवर्तिनः।
ते न जलेन शुद्ध्ययन्ति, स्नानतीर्थशतैरपि॥

अर्थ—जो काम सम्बन्धी राग से उन्मत्त है और इन्द्रियों के वशीभूत हैं, वे सैकड़ों तीर्थों में स्नान करने पर भी जल से शुद्ध नहीं होते हैं।

नमृतिका जलं नैव, नाप्यग्निः कर्म शोधनाम्।
शोधयन्तु बुधाः कर्म, ज्ञान ध्यान तपो जलैः॥

अर्थ—कर्मों से मलिन आत्मा को शुद्ध करने के लिए मिट्टी, जल, अग्नि समर्थ नहीं है, ज्ञानी जन ज्ञान, ध्यान और तप रूपी जल के द्वारा कर्मों का प्रक्षालन करें।

मृदो भार सहस्रेण, जलकुम्भशतेन च।
न शुद्ध्ययति दुराचारः, स्नान तीर्थ शतैरपि॥

अर्थ—हजारों बार मिट्टी से, सैकड़ों घड़े के जल से एवं सैकड़ों तीर्थों में स्नान करने पर भी दुराचार शुद्ध नहीं होता हैं, जैसे बाह्य में साफ किया गया शराब का बर्तन अन्दर अशुद्ध ही रहता है।

अन्तश्चित्तं शुद्ध चेद, बहिः शौचे न शौच भाक्।
सुपक्वमपि निम्बस्य, फले बीजं कटुस्फुटम्॥

अर्थ—यदि मन पवित्र नहीं है तो बाह्य में शुद्धि कर लेने पर भी शुचिता नहीं आती है। जैसे नीम का फल पक जाने पर भी बीज कड़वा ही रहता है।

आत्मा नदी संयम तोयपूर्णा, सत्यंवहा शीलतटा दयोर्मिः।
तत्राभिषेकं कुरु पाण्डुपुत्रं! न वारिणा शुद्ध्ययति चान्तरात्मा॥

अर्थ—महाभारत युद्ध के पश्चात् पाण्डव आत्म शुद्धि के उद्देश्य से गंगा में स्नान करने जा रहे थे, उन्होंने श्री कृष्ण जी से भी चलने को कहा तब श्रीकृष्ण जी बोले, हे पाण्डु पुत्रो! संयम रूपी जल से

भरी सत्य का जिसमें प्रवाह है, शील ही किनारे हैं, दया रूपी लहरें जिसमें उठ रही हैं ऐसी आत्मा रूपी नदी में स्नान करो। गंगा में स्नान करने से अंतरात्मा पवित्र नहीं होती है।

शुचि भूमिगतं तोयं, शुचिर्नारी पतिव्रता।
शुचिर्धर्मपरो राजा, ब्रह्मचारी सदा शुचिः॥

अर्थ—भूमि से निकला हुआ जल शुद्ध होता है, पतिव्रता स्त्री पवित्र होती है, धर्म में तत्पर राजा भी पवित्र होता है और ब्रह्मचारी सदा ही पवित्र रहते हैं।

सन्तोषामृततृप्तानां, यत् सुखं शान्तचेतसां।
कुतस्तद् धनलुब्धाना, मितश्चेतश्चधावताम्॥

अर्थ—शान्त मन वाले सन्तोष रूपी अमृत से तृप्त मनुष्यों को जो सुख प्राप्त होता है वह सुख चंचल चित्त वाले धन के लोभियों को कैसे प्राप्त हो सकता है।

सन्तोषी सदा सुखी, न सन्तोषात् परं सुखम्।
अन्यत्र उक्तं चापि परिग्रहाभिलाषाग्निं, ज्वलन्तं चित्तकानने,
विध्यसापयेदसौ क्षिप्रं, सन्तोषधनधारया॥

अर्थ—सन्तोषी व्यक्ति हमेशा सुखी होता है और संतोष से बढ़कर कोई दूसरा धन नहीं है। अतः मन रूपी जंगल में जलती हुई परिग्रह की अभिलाषारूपी अग्नि को संतोष रूपी मेघ जल की धारा से शान्त कर देना चाहिए।

जातः कल्पतरुः पुरः सुरमयी, तेषां प्रविष्टा गृहम्,
चिन्तारत्नमुपस्थितं करतले, प्राप्तो निधिः सन्निधिः।
विश्वं वश्यमवश्यमेव सुलभाः स्वर्गापवर्गश्रियो,
ये सन्तोषमशेषदोषदहनं, ध्वंसाम्बुदं विभ्रते॥

अर्थ—जो लोग समस्त दोष रूपी अग्नि को शान्त करने वाले सन्तोष रूपी मेघ को धारण करते हैं उनके आगे समस्त मनोरथों को पूर्ण करने वाला कल्प वृक्ष उत्पन्न हो जाता है। उनके घर में कामधेनु

प्रवेश कर जाती है, हाथ में चिन्तामणि रत्न उपस्थित हो जाता है। समीप में खजाना प्राप्त हो जाता है, समस्त जगत् अधीन हो जाता है, स्वर्ग और मोक्ष की लक्ष्मी सहज में प्राप्त हो जाती है।

सम संतोष जलेण, जो धोवदि तिव्वलोहमलपुंजु।
भोयणगिद्धिविहीणो, तस्स सउव्वं हवे विमलं॥

अर्थ–जो समभाव और सन्तोष रूपी जल से तृष्णा और लोभ रूपी मल के समूह को धोता है तथा भोजन में गृद्धता नहीं रखता उसके निर्मल शौच धर्म होता है।

ईश्वरो नाम सन्तोषी, यो न प्रार्थयते परं।
प्रार्थना महतामत्र, परं दारिद्रयकारणम्॥

अर्थ–जो सन्तोषी प्राणी दूसरों से किसी पदार्थ की याचना नहीं करता है वह ईश्वर कहलाता है। क्योंकि बड़े लोगों के लिए प्रार्थना करना ही दरिद्रता का कारण है।

सन्तुष्टाः सुखिनो नित्य-मसन्तुष्टाः च दुःखिताः।
उभयोऽन्तरं ज्ञात्वा च, सन्तोषे क्रियतां रतिः॥

अर्थ–सन्तोषी सदा सुखी होता है एवं असंतुष्ट व्यक्ति अत्यंत दुःखी होता है। इन दोनों का इतना अन्तर जानकर सन्तोष में रति करना चाहिए।

सुखं त्रैलोक्य लाभेऽपि नासन्तुष्टस्य जायते।
सन्तुष्टो लभते सौख्यं दरिद्रोऽपि निरन्तरम्॥

अर्थ–असन्तुष्ट व्यक्ति को तीनों लोकों की सम्पत्ति मिलने पर भी सुख नहीं होता है एवं सन्तोषी अत्यन्त दरिद्र होने पर भी निरन्तर सुखी रहता है।

येन सन्तोषामृतं पीतं, निर्ममत्वेन वासितं।
त्यक्तं तैर्मानिसं दुःखं दुर्गतिनैव सौहृदम्॥

अर्थ–जिसने सन्तोष रूपी अमृत का पान किया है एवं निर्ममता पूर्वक निवास किया है उसने मानसिक दुःखों का त्याग किया है। जैसे सज्जन के द्वारा दुर्जन का त्याग कर दिया जाता है।

यैः सन्तोषामृतं पीतं, तृष्णातृसाप्रणाशकं।
तैश्च निर्वाणसौख्यस्य, कारणं समुपार्जितम्।।

अर्थ–जिन्होंने तृष्णा रूपी प्यास का नाशक सन्तोष रूपी अमृत पिया है उन्होंने निर्वाण सुख का कारण प्राप्त कर लिया है।

हृदयं दह्यतेऽत्यर्थं तृष्णाग्निपरितापितं।
न शक्यं शमनं कर्तुम्, बिना सन्तोषवारिणा।।

अर्थ–तृष्णा रूपी अग्नि से संतृप्त हुआ हृदय अत्यन्त रूप से निरन्तर जलता रहता है। उसका शमन सन्तोष रूपी जल के बिना नहीं किया जा सकता है।

द्रव्याशां दूरतस्त्यक्त्वा, सन्तोषं कुरुसन्मते।
मा पुनर्दीर्घसंसारे, पर्यहिष्यसि निश्चितम्।।

अर्थ–हे सुबुद्धे! धन की आशा को दूर से छोड़कर सन्तोष धारण करो निश्चित ही तुम दीर्घ संसार में भ्रमण नहीं करोगे।

लोकद्वये दुःखफलाग्नि दत्ते गार्धक्यतोयेन विवर्द्धितोऽयम्।
सन्तोषशस्त्रेण निकर्तनीयः स लोभ वृक्षो वहलः क्षणेन।।

अर्थ–गृद्धता रूपी जल से वृद्धि को प्राप्त हुआ यह लोभ रूपी सघन वृक्ष दोनों लोकों में दुःख रूपी फलों को देता है अतः उसे सन्तोष रूपी शस्त्र से काट देना चाहिए।

सन्तोषसारसद्रत्नं, समादाय विचक्षणा।
भवन्ति सुखिनो नित्यं, मोक्षसन्मार्गवर्तिनः।।

अर्थ–बुद्धिमान् मोक्षमार्गी पुरुष सन्तोष रूपी सारभूत रत्न को लेकर नित्य ही सुखी होते हैं।

सम्यग्दर्शनबोधसंयमतपः, शीलादिभाजोऽपि नो,
संक्लेशो विनिवर्तते भवभृो, लोभानलं विभ्रतः।
विभ्राणस्य विचित्ररत्ननिचितं दुःप्राप्यपारं पयः,
सन्तापं किमुदन्ततो न कुरुते, मध्यस्थितोपाडवः।।

अर्थ–सम्यग्दर्शन ज्ञान संयम, तप शीलादि सहित भी प्राणी लोभ

रूपी अग्नि को धारण करने के कारण संक्लेषों से रहित नहीं हो पाता है। जैसे अनेक प्रकार के रत्नों से सहित अगाध जल वाला समुद्र मध्य में बड़वानल को धारण करने के कारण क्या सन्ताप को नहीं करता है? अर्थात् करता ही है।

स्वसंवित्ति समायाति, यमिनां तावदुत्तमम्।
आसमन्तात्शमं नीते, कषायविषमज्वरे।।

अर्थ–कषाय रूपी भयंकर ज्वर के सम्पूर्ण उतर जाने पर मुनि लोग उत्तम केवलज्ञान को प्राप्त करते हैं। जिसकी आशा रूपी राक्षसी मर गई है उसी की तत्त्वों के प्रति रुचि सम्यग्ज्ञान एवं चारित्र सफलता को प्राप्त होते हैं। जिनका मन आशा के अभाव रूपी अमृत के समूह से पवित्र है उन्हें स्नेह से उत्कण्ठित होती हुई शांति रूपी लक्ष्मी स्वयं वरण कर लेती है एवं उन्हीं का ज्ञान रूपी वृक्ष सुख रूपी फल को देता है। आशा रूपी अग्नि से संतृप्त हुआ इन्द्र भी स्वर्ग में सुखी नहीं होता है। समस्त आशा रूपी अग्नि को शांत कर मुनि मोक्ष प्राप्त करते हैं। जिन्हें किसी पदार्थ की चाह नहीं होती उनका मन शांत हो जाता है। इन्द्रिय रूपी हाथी विक्रिया छोड़ देते हैं, कषाय रूपी अग्नि शान्त हो जाती है। ज्यादा कहने से क्या लाभ है वे ही महापुरुषों से पूजनीय होते हैं। आशा संसार का कारण है, आशा का अभाव मोक्ष का कारण है।

आशा नाम नदी मनोरथजला, तृष्णा तरंगाकुला,
रागग्राहवती वितर्कविहगा, धैर्यदुमध्वंसिनी।।
मोहावर्तसुदुस्तराऽतिगहना, प्रोतुङ्, गचिन्तातटी,
तस्याः पारगता विशुद्धमनसो, नन्दन्ति योगीश्वराः।।

अर्थ–जिसमें मनोरथ रूपी जल भरा है, तृष्णा रूपी तरंगों से व्याप्त है, राग रूपी मगरमच्छ से युक्त है, कुतर्क रूपी पक्षियों से सहित है धैर्य रूपी वृक्ष को उखाड़ने वाली हैं, मोह रूपी भंवर के कारण बड़ी कठिनाई से तैरने योग्य अत्यन्त गहरी चिन्ता रूपी ऊँचे किनारों से युक्त आशा रूपी नदी के पास को प्राप्त हुए विशुद्ध मन वाले योगी ही आनन्द को प्राप्त होते हैं।

लोभ-कषाय एवं उत्तम शौच धर्म के सम्बन्ध में कतिपय कथानक

1. **श्मश्रुवनीत**—अत्यन्त लोभी व्यक्ति था, छाछ माँगकर लाता, उसे पीकर जीवन यापन करता। मूछों में जो घी लग जाता उसे इकट्ठा कर लेता है, उसने नवनीत से एक मटकी भर ली, सर्दी के समय झोंपड़ी में सामने टँगी थी, वह कल्पनाओं में डूबता गया, नवनीत बेचकर बकरी लाऊँगा, पुनः गाया, भैंस लाऊँगा, व्यापारी बन कर नगर सेठ व राजा बनूँगा, सुंदर कन्या से शादी करूँगा, पत्नी पैर दबायेगी तो लात मारूँगा। सोचते-सोचते लात मार दी। जो कि घी की मटकी में लगी, घी की मटकी फूट गयी और घी अग्नि में पड़ते ही अग्नि अधिक प्रज्जवलित हो गई, और उस आग भी भयंकर लपटों में झोंपड़ी सहित वह भी उसी में स्वाहा हो गया, लोभी की ऐसी ही गति होती है।

2. **महा कंजूस मम्मन सेठ**—राजा श्रेणिक के समय उसी के राज्य में एक सेठ हुआ। जो सर्दी की रात्रि में वर्षा के पानी, नदी में बाढ़ आने पर लकड़ियाँ बीन रहा था। रानी चेलना ने देखा, तो नौकरों से बुलवाया और राजा श्रेणिक से उसे पेट भरने हेतु धन देने की प्रार्थना की। किन्तु राजा श्रेणिक के पूछने पर उसने कहा कि भोजन नहीं, बैल की जोड़ी बनानी है, अतः एक बैल चाहिए, राजा श्रेणिक ने कहा वृषभसार से ले लो। उसने कहा—उसमें मेरे जैसा बैल एक भी नहीं है। तब राजा श्रेणिक अपनी रानी चेलना सहित उसके घर गये। वहां देख कर दंग रह गये, उसका महल तो राज महल से भी ज्यादा सुंदर दिख रहा है। अंदर देखा तो सभी पशु पक्षियों के स्वर्ण निर्मित रत्न जड़ित खिलौने हैं, बैल एक है, उस बैल की

कीमत कोटि स्वर्ण मोहर से भी ज्यादा थी। राजा ने कहा–धिक्कार है तेरी कृपणता को। इतना धनी होकर भी लकड़ी बीन रहा है।

3. **भावि सोमशर्मा पितृ कथा**–भविष्य में होने वाले सोमशर्मा के पिता की कथा ये है, एक भिखारी कल्पनाओं में नगर सेठ बनता है, पुनः एक सुशील कन्या से शादी करता है। कल्पनाओं में पुत्र को जन्म दिया, पुत्र का नाम सोम शर्मा रखा। बालक पैर पकड़ता है। पत्नी को आवाज लगाता है, देरी होने पर पैर से ठोकर मारता है। मटकी का आटा जमीन पर गिर जाता है, मिट्टी में मिल जाता है, आटा ही नहीं उसकी बिना आधार की कल्पनायें भी।

4. **कंजूस बल्लूशाह**–माँ की मृत्यु होने पर भी बल्लूशाह अपने घर नहीं आया। माँ की तृप्ति हेतु श्रीफल दान करना चाहा, लोभ वश नारियल के पेड़ पर चढ़ गया। नारियल तोड़ते समय पैर शाखा से फिसल गया, नारियल पकड़े ही वहाँ लटक कर रह गया, वहीं से लोभी, हाथी वाला व ऊँट वाले दो मानव निकले वे भी उसे उतारने व पैसे के लोभ में उसके पैर पकड़ कर लटके रह गये, अंत में तीनों मृत्यु को प्राप्त हुए।

5. **लालची राजा**–एक अत्यंत लोभी राजा था, उसने किसी महात्मा से वरदान प्राप्त किया, कि मैं किसी वस्तु का भी स्पर्श करूँ वह सोने की हो जाये। उसने अपना महल व पौद्‌गलिक सभी सामान सोने के कर लिए। अपनी पुत्री को छुआ तो वह भी सोने की हो गयी, भोजन, पानी भी सोने का हो गया। अंत में अपनी करनी पर पश्चाताप करता हुआ संक्लेषता से मृत्यु को प्राप्त कर नरक में गया।

6. **लोभी चिड़िया**–दाने के लोभ में आकर शिकारी के जाल में

फँस गई, अंत में निर्दयता के साथ शिकारी द्वारा मार दी गई।

7. **लोभी कबूतर**–रेलवे की पटरी पर दाना चुग रहा था, ट्रेन के आने की ध्वनि सुन सारे कबूतर उड़ गये, ये लोभ वश चुगता रहा, सोचा अभी तो गाड़ी दूर है, तब तक और चुग लूँ अंत में ट्रेन के नीचे आ जाने से मृत्यु को प्राप्त हुआ।

8. **लोभी पिण्याक गंध**–कुबेर दत्त की स्त्री पर मोहित होकर, छल से उसके पास गया, छह माह संडास में पड़ा रहा, अंत में राज दण्ड भोग, निंदा तिरस्कार के साथ संक्लेषता से मरकर दुर्गति में गया।

9. **लोभी पिण्याक गंध सेठ**–कांपिल्प नगर में रत्नप्रभ राजा और रानी विद्युत प्रभा प्रजा का न्याय नीति पूर्वक पालन करते थे, उसी नगर में न्याय प्रिय जिनदत्त श्रेष्ठी व पिण्याक गंध नामक लोभी कृपण सेठ रहते थे। एक 'उडु' नामक मजदूर को तालाब खोदते समय स्वर्ण शलाकाओं से भरा एक संदूक मिला, किन्तु वे शलाकायें मिट्टी में मलिन होने से लोहे जैसी प्रतिभासित हो रही थीं। उडु नामक मजदूर ने एक शलाका जिनदत्त श्रेष्ठी को लोहे के भाव बेची। बाद में जिनदत्त ने उसे साफ किया, तब ज्ञात हुआ वह शलाका स्वर्ण की है। अतः उसकी जिनप्रतिमा बनवा दी तथा आगे शलाका खरीदने से मना कर दिया। तब 'उडु' नामक मजदूर ने ये शलाकाएँ क्रमशः एक-एक करके पिण्यांक गंध नामक सेठ को बेच दी। एक दिन पिण्याक गंध अपने पुत्र विष्णुदत्त को शलाका क्रम के बारे में कह कर किसी कारण वश बाहर गया। किन्तु पुत्र विष्णु दत्त ने नहीं खरीदी, वह अंतिम शलाका किसी सिपाही ने उससे छीन ली, तब राजा को समाचार ज्ञात होने पर राजा ने जिनदत्त का सम्मान किया और पिण्याक गंध के पूरे परिवार को कैद में डलवा दिया, बाहर से लौटकर आने पर

पिण्याक गंध ने पत्थर से अपने पैर तोड़ लिये, यदि पैर न होते तो मैं बाहर क्यों जाता। अतः लोभी पापी पिण्याक गंध सपरिवार महान् दुःख को प्राप्त हुआ, तथा निर्लोभी जिनदत्त ने सम्मान प्राप्त किया।

10. **लोभी कौरव**–राज्य-वैभव के लोभ के कारण अपने ही भाई पाण्डवों के साथ अन्याय किया, युद्ध में मारे गये, अपयश व दुर्गति को प्राप्त हुए।

11. **सत्ता का लोभी कंस**–अपने माता-पिता को जेल में डलवा दिया, श्रीकृष्ण को मारने का बहुत प्रयास किया, किन्तु विफल रहा। अंत में श्रीकृष्ण के द्वारा ही मारा गया।

12. **लोभी राजा दमतारी**–यह प्रतिनारायण था, जिसने बर्वरिका व चिलातिका दो नर्तकियों को मंगवाया, किन्तु अनन्त वीर्य व अमित तेज नारायण और बलभद्र द्वारा मारा गया।

13. **अत्यंत कृपण नगर सेठ**–उस सेठ को यही चिंता निरन्तर सताये रहती थी कि मेरे पास दस पीढ़ी तक की व्यवस्था है, ग्यारहवीं पीढ़ी क्या खायेगी?

14. **लोभी चना बेचने वाला**–धन के लोभ में पढ़कर चना बेचना छोड़ दिया, यंत्र से धन की वृद्धि कर ली, अंत में पुनः वहीं आ गया जहाँ पहले था।

15. **लोभी कपिल ब्राह्मण**–दास कन्या में आसक्त दो मास तोले के लोभ में आया कपिल, राजा की सारी सम्पत्ति को पाकर भी संतुष्ट नहीं हुआ। अंत में मुनि दीक्षा से आत्म कल्याण कर लिया।

अमृत दोहावली

चाह गई चिंता मिटी, मनवा बेपरवाह।
जिनको कुछ नहिं चाहिए, वे शाहन के शाह॥1॥

गोधन गज धन बाज धन, और रतन धन खान।
जब आवे सन्तोष धन, सब धन धूलि समान॥2॥

पैदा हुए व्यापार सीखा, धन कमा बूढ़े हुए।
बन्धुजन को छोड़कर धन, दुर्गति में चल दिये॥3॥

धरि हिरदे सन्तोष करहु तपस्या देह सों।
शौच सदा निर्दोष, धरम बड़ो संसार में॥4॥

आतम को हित है सुख सो सुख, विषय भोग में लहिए।
विषय भोग धन बिन नहिं यातें, धन ही धन उपजाइये॥5॥

कर्म कमण्डलु कर गहे, तुलसी मन पछताया।
पापी कूप तडाग में, बूंद न अधिक समाय॥6॥

सांई इतना दीजिए, जामें कुटुम्ब समाय।
मैं भी भूखा न रहूँ, साधु न भूखा जाये॥7॥

लोभ पाप का बाप है, क्रोध क्रूर यमराज।
माया विषय की बेलरी, मान विषम गिरिराज॥8॥

कनक कनक ते सौ गुनी मादकता अधिकाय।
या खाये बोरात नर, ता पाये बौराय॥9॥

काया बूढ़ी हो चली, तृष्णा भई जवान।
ऐसे में कैसे बने, निज आतम कल्याण॥10॥

छोटी सी जिन्दगी, बड़े-बड़े अरमान।
पूरे न हो पायेंगे निकल जायेंगे प्राण।।11।।

शौच भावतै पुण्य बड़ोई, कटे पाप जग में जस् होई।
शौच भाव संतन को प्यारा, धरो शौच यह धर्म हमारा।।12।।

कोटि काल तक न्हवन तैं, देह पवित्र न होय।
मन पवित्र पातक टलै, श्रम किंचित नहीं होय।।13।।

तीन थान सन्तोष कर, धन, भोजन अरु दार।
तीन सन्तोष न कीजिए, दान, पठन, तपाचार।।14।।

सदा सन्तोष कर प्राणी, यदि सुख से रहा चाहे।
घटा दे मन की तृष्णा को, यदि दुःख से बचा चाहे।।15।।

उत्तम पथ के जो पथिक, यश के रागी साथ।
मिटते वे भी लोभ से, रच कुचक्र निज हाथ।।16।।

सर्वोदयी चिन्तन

कोई धन के लोभ में, कोई यश के लोभ में, कोई पद-प्रतिष्ठा के लोभ में, कोई विषयभोगों के लोभ में, कोई आरोग्यता के लोभ में कोई इह लोक सुख और कोई परलोक सुख के लोभ में दौड़ रहे हैं किन्तु ऐसा प्राणी खोजना आज कठिन है, जिन्हें कुछ भी लोभ नहीं है। वे ही उत्तम शौच धर्म को प्राप्त कर सकते हैं।

उत्तम सत्य

मुंचिउ मोसंभावं,
मणोवियारं सयलमोसवयणं।
णिच्चं वदंति सच्चं,
ते हु लोयपाल-णिग्गंथा।।

दशामृत
अहसास अंतस का

सतवादी जग में सुखी

महानुभाव!

आज पर्यूषण पर्व का पाँचवा दिन है, लगभग मध्य स्थान पर हमारी यात्रा चल रही है। जो सीढ़ियाँ निकल चुकी हैं उन पर लौट कर पुनः नहीं चल सकते, किन्तु जो सीढ़ियाँ-सोपान रह गई हैं उन पर चढ़ने से पूर्व अपने तन-मन तथा वचन को व्यवस्थित किया जा सकता है। आज का पर्व अपने आप में महत्वपूर्ण है। ऐसा कहना उचित होगा क्योंकि आज जो धर्म का लक्षण बताया गया है वह समस्त लक्षणों का आधार है। ''उत्तम सत्य धर्म'' जिसके जीवन में सत्य नहीं, उसके जीवन में सब कुछ होते हुए भी ऐसा मानना चाहिए कुछ भी नहीं है। सत्य ही समस्त जीवन का आधार है, सत्य ही समस्त धर्मों का आधार है। Without truth every religion is false जिसमें सत्यता नहीं वह प्रत्येक धर्म अपने आप में झूठा है। जो मिथ्या धर्म होता है वह कभी समीचीन लक्ष्य को प्राप्त नहीं कर सकता। जब साधन ही मिथ्या है तो साध्य की जो प्राप्ति होगी वह भी नियम से मिथ्या होगी। तो पहले जो हमारा आधार है वह सही है अथवा नहीं। सत्य धर्म को मध्य में रखने का एक और कारण है। सम्यक् ज्ञान को

सर्वोदयी चिन्तन

सत्य के समान कोई धर्म नहीं किन्तु वह सत्य जो अहिंसा से रहित हो जाता है वह उस निःशस्त्र वीर पुरुष की तरह है, तो युद्ध भूमि में कायर बनकर खड़ा हो।

बीच में रखा है, प्रथम सम्यक् दर्शन को, बाद में सम्यक् चारित्र को, ज्ञान का आशय है- जो ज्ञान श्रद्धा को मजबूत करे और चारित्र को निर्मल बनाये, उस ज्ञान को मध्य दीपक कहा जाता है। दीपक तीन प्रकार के होते हैं-

''आदि दीपक, अन्त दीपक, मध्य दीपक''

जैसे आपने पढ़ा **''रत्नशर्कराबालुकापंकधूमतमो महातमः प्रभा भूमयो''** यहाँ प्रभा शब्द अन्त में दे दिया तो अन्तदीपक हो गया, सभी में प्रभा शब्द जोड़ लेना है और कोई ऐसे शब्द होते हैं जिसमें आदि (प्रारम्भ) में जोड़ दिया जाता है जैसे- **''सम्यग्दर्शनज्ञान-चारित्राणि मोक्षमार्गः''** तो सम्यग् शब्द को आगे जोड़ दिया वह सम्यग् शब्द सभी के साथ जोड़ना अनिवार्य है–ये आदि दीपक है। किन्तु सत्य मध्य दीपक है, ''सत्य'' उत्तम क्षमा, मार्दव, आर्जव, शौच के साथ भी हो, सत्य संयम, तप, त्याग,आकिंचन और ब्रह्मचर्य के साथ भी हो। सत्य का मूल्य अंकों के समान है। अन्य सभी गुण और धर्मों का मूल्य शून्य के बराबर है इसलिए आचार्यों ने सत्य के बारे में बहुत जोर दिया, सत्य के बारे में बहुत व्याख्यायें की हैं और रामायण में भी कहा है-

''धर्म न दूजा सत्य समाना, आगम वेद पुराण बखाना''

सत्य के समान संसार में कोई दूसरा धर्म नहीं हो सकता, न तो सत्य के समान कोई धर्म था, न है, न हो सकेगा। सत्य के बिना संसार में कोई जीवित नहीं रह सकता। कोई व्यक्ति कितना भी मिथ्याभाषी हो किन्तु वह बिना सत्य के जीवित नहीं रह सकता, उसको सत्य को सहारा लेना पड़ता है, भले ही कोई व्यक्ति दिन में हजारों झूठ बोले किन्तु बिना सत्य बोले वह जी नहीं सकता। उसके मुँह से

सर्वोदयी चिन्तन

सत्य का खोजी, सत्यवादी एवं सत्यता में जीने वाला पक्षपाती नहीं होता, जो पक्षपात के खूँटे से बंधे हैं, वे कभी सत्य रूपी गगन के मुक्त खग नहीं बन सकते हैं।

सत्य निकलेगा ही। सत्य अकारण होता है। जो असत्य होता है वह अकारण नहीं होता, उसका नियम से कोई न कोई कारण होता है। झूठ किसी न किसी कारण से ही बोला जाता है और सत्य तो सहजता

सर्वोदयी चिन्तन
उत्तम सत्य धर्म कथ्य नहीं, जीवन का तथ्य है, इसे किसी को दिया व किसी से लिया नहीं जा सकता अपितु जिया जा सकता है।

में बोल दोगे। सत्य तुम्हारे मुँह से निकल जायेगा, बिना निकाले ही निकल जायेगा, कई बार निकलेगा। यदि तुम्हें भूख लगी है तो तुम यही कहोगे भूख लगी है, ये नहीं कहोगे मुझे भूख नहीं लगी है। यदि किसी ने पूछा पानी पीओगे, पीना होगा तो कहोगे हाँ, पानी पीना है। ये नहीं कहोगे पानी नहीं चाहिए, पानी नहीं पीना है। यदि ऐसा व्यवहार करना प्रारम्भ कर दोगे तो जीना मुश्किल हो जायेगा, लोक व्यवहार में नहीं जी पाओगे। सत्य चेतना की चेतना है, सत्य प्राणों का प्राण है। सत्य इस आत्मा की प्राण वायु है, जहाँ सत्य नहीं होता है तो चेतना मुर्दे के समान कहलाती है, वह चेतना शव है। नाम मात्र की चेतना उसे कहना चाहिए। जैसे संसारी प्राणी की चेतना को शुद्ध चेतना कह दिया जाता है जो सत्य से रहित है। सत्य शब्द को जिसके साथ भी लगा दिया जाये तो सभी गुण समीचीन हो जाते हैं और सत्य को निकाल लिया जाये तो सभी गुण मिथ्या हो जाते हैं। सत्य एक ऐसा करन्ट है जिसे कहीं भी फिट कर दें और वह विद्युत उपकरण क्रियाशील हो जायेगा, Movement होने लगेंगे। यदि कोई Train है तो वह भी करंट के माध्यम से चल रही है, पंखा भी चल रहा है, कूलर भी चल रहा है या और भी आपके उपकरण हैं वे सभी करंट के माध्यम से चलते हैं, यदि लाइट चली जाये तो समस्त उपकरण व्यर्थ हैं। जिस गाँव में लाइट है ही नहीं उस गाँव में जाकर किसी किसान के घर में तुम कूलर, टी.वी. आदि लाकर रख दो और विद्युत से चलने वाले उपकरण रख दो और पुनः जा कर पूछो "क्या इन उपकरणों के माध्यम से तुम्हें सुख-शान्ति मिली? बड़ा

आनंद लिया होगा, खूब पंखा चलाया होगा, खूब कूलर की हवा खाई होगी और जब से रखी है तब से खूब टी.वी. देखी होगी या फ्रिज का उपयोग किया होगा'' तो बेचारा किसान कहेगा बिना लाइट के टी.वी. कैसे चलेगा? बिजली नहीं है तो कैसे टी.वी. देखेंगे, इसकी तो बहुत आवश्यकता है और मेरे पास जैनरेटर ही नहीं था। नहीं तो उससे पूर्ति कर ली जाती। जैसे सभी वाहनों में करंट होता है। उसी प्रकार प्राणी के समूचे जीवन में सत्य होता है, समूचे गुणों और धर्मों में सत्य होता है जो महत्व बिजली का होता है उतना महत्व सत्य का होता है। महानुभाव! नीतिकारों ने कहा है-

''चाहे किसी व्यक्ति के प्राणों का वियोग कर देना किन्तु कभी भी किसी प्राणी के प्रति कटु शब्दों का प्रयोग नहीं करना, असत्य शब्दों का प्रयोग मत करना।'' क्योंकि किसी प्राणी की रक्षा करते हुए भी तुम असत्य शब्दों का प्रयोग करते हो, चुभने वाले शब्दों का प्रयोग करते हो तो तुम्हारा सब कुछ किया कराया बेकार है। यदि कोई तुम्हें भोजन खिलाये, माना कि तुम भोजन करने जाते हो और आहार करके भोजनशाला से लौटने लगे या भोजन का अन्तिम ग्रास तुम ले रहे हो उस समय तुम्हें एक गाली दे दे, भोजन के साथ एक-एक गाली परोस दे तो वह भोजन जो अमृत के समान था वह जहर का काम करेगा। भोजन में गाली और परोस दी गयी हैं और तुमने गाली को ग्रहण कर लिया है, यदि छोड़कर भी आ जाते तो भी कोई बात नहीं थी। तुमने ग्रहण कर लिया इसलिए अमृतोपम भोजन भी विष के समान हो जायेगा। तुम किसी को खूब लाड़-पयार करो, खूब स्नेह और वात्सल्य दो, एक बार डाँट दो, एक कड़वी बात कह दो तो वह उसे पकड़ कर बैठ जायेगा। वाह! तुमने मेरे लड़के से ऐसा कह दिया, तुमने मेरे लड़के

सर्वोदयी चिन्तन

जो उत्तम सत्य धर्म को कहने का दम भरते हैं, उन्होंने भी उसे प्राप्त नहीं किया, यह अनुभवगम्य बात है। प्राप्त होने पर वचनों से नहीं कहा जाता।

पर हाथ उठा दिया, तुमने ऐसी कड़वी बात कही थी। वह इतने जीवन भर के प्रेम-स्नेह, लाड़-प्यार को भूल जायेगा और एक कड़वी बात को बहत समय तक याद रखेगा। कड़वी बात का प्रयोग नहीं करना है। जब तक मिष्ट वचनों से काम चल जाये, प्रिय शब्दों से, मधुर शब्दों से काम चल जाये तो कटु शब्दों का प्रयोग नहीं करना है और मुझे इतना विश्वास है जो काम मीठे शब्दों से हो जाता है वह काम कड़वे शब्दों से नहीं होता। कड़वे शब्दों से कभी-कभी मित्रता भी टूट जाती है, प्रेम, वात्सल्य व्यवहार भी टूट जाता है और कड़वे शब्द तीर के समान हृदय में चुभ जाते हैं, जीवन भर नहीं निकल पाते। इसलिए नीतिकारों ने कहा है-

सर्वोदयी चिन्तन

उत्तम सत्य धर्म रूपी मंजिल की प्राप्ति के पूर्व सत्याणु व्रत, पुनः सत्य महाव्रत, भाषा समिति एवं वचन गुप्ति के सेतु को पार करना अनिवार्य है।

''गोली से बोली बुरी, जो दिल में लग जाय।
गोली तो सह ले मनुज, बोली सही न जाय।।

बंदूक की गोली से यदि Shoot किया तो एक बार में काम हो जायेगा। गोली के माध्यम से तो एक ही शरीर नष्ट होता है। बोली के माध्यम से जो बैर बंध जाता है वह अनेक भवों तक दुःख देता है। यदि तुमने किसी व्यक्ति पर तलवार का वार किया, तलवार का घाव भी भर जाता है, चाकू, छुरी का घाव भी भर जाता है किन्तु बोली का घाव ऐसा होता है जो कभी नहीं भर पाता। एक छोटा-सा बोली का घाव इतना बड़ा हंगामा कर देता है कि महाभारत करा देता है। यदि और गहराई में जाओगे तो आप उस महाभारत का कारण बोली ही पाओगे। बोली के कारण ही महाभारत हुआ। यदि वह द्रोपदी नहीं कहती दुर्योधन से तो शायद महाभारत नहीं होता। जो भवन विदुर ने बनवाया था जिसमें जहाँ पानी भरा दिखाई देता था, वहाँ तो सूखा था, जहाँ सूखा दिखायी देता था वहाँ पानी था, जहाँ दीवार दिखाई देती थी वहाँ द्वार था, जहाँ द्वार था वहाँ दीवार सी

दिखती थी। दुर्योधन को आमंत्रित किया गया, वहाँ पहुँचकर प्रवेश करते ही दीवारों से टकराये क्योंकि लगता था द्वार है, लेकिन होती थी दीवार। इसलिए टकरा गये और कहीं देखता था सूखा है, पैर सम्भाल के रखता था तो उसके कपड़े भीग जाते थे, और जहाँ उसे पानी दिखाई देता था वहाँ सम्भाल कर पैर रखता था और सूखा होता था, वहाँ कपड़े ऊँचे कर लेता था। इस सभी दृश्यों को द्रोपदी अपने महल से देख रही थी और उन्होंने वहाँ मजाक में कह दिया ''अंधों के अंधे ही होते हैं।'' ये बात दुर्योधन को बुरी लगी, यदि इसके पिता धृतराष्ट्र अंधे नहीं होते तो बात इतनी बुरी नहीं लगती। किन्तु उनके पिता अंधे थे, इसलिए दुर्योधन के शरीर में आग सी लग गई कि मेरे पिता का इतना बड़ा अपमान, इस कुल की वधु होते हुए तुम इतना बड़ा तिरस्कार कर सकती हो, इतना बड़ा तिरस्कार कुरुवंश का। ''नहीं'', ऐसा नहीं हो सकता है, यदि (तुम ने) इतना बड़ा तिरस्कार किया है तो तुम्हें भेगना पड़ेगा और दुर्योधन ने उस बात को पकड़ लिया, हृदय में गाँठ लगाकर रख लिया इस बात को छोड़ना नहीं है, इसका बदला लेकर के ही छोड़ना है और परिणाम ये हुआ जुआ खेलने के बहाने से पाँचों पाण्डवों को हरा दिया, भरी सभा में द्रोपदी की बेइज्जती करने का भी प्रयास किया और कालान्तर में उन्हें नगर छोड़कर भी जाना पड़ा। लाक्षागृह में जलाने का षड़यंत्र भी रचा, उससे बच भी गये तो पुनः जुए में हारने के उपरांत बारह वर्ष का वनवास और एक वर्ष का अज्ञातवास। यदि मालूम चल गया कि तुम यहाँ रह रहे हो तो पुनः बारह वर्ष और अज्ञात वास करना पड़ेगा। और पुनः किसी प्रकार संघर्षों का समाना करना पड़ा। सत्य पर कितने-कितने संघर्ष आते हैं। यदि ये आपको जानना है तो पाण्डवों

सर्वोदयी चिन्तन

जहाँ सत्य है, वहाँ कुछ भी नहीं है तो भी सब कुछ है क्योंकि सत्य समस्त सद्गुणों का आधार है, गुणों की चुम्बकीय शक्ति है एवं जहाँ सत्य नहीं, वहाँ पर कदाचित् आपने सब कुछ प्राप्त कर लिया तब भी कुछ नहीं है।

की जीवनी को अच्छी तरह देख लेना, यदि आपको देखना है सत्य के लिए कितने संघर्षों का सामना करना पड़ सकता है तो सीता के जीवन को देख लेना। राम ने जो संघर्षों का सामना किया मुझे लगता है उससे भी अधिक संघर्ष का सामना सीता ने किया। राम को तो एक बार को राज्य सुख मिला, राम के पास सीता के अतिरिक्त अन्य सुन्दर रानियाँ थीं। परन्तु जब सीता को वनवास दे दिया था तो उनके पास कोई दूसरा राम नहीं था। उन्होंने किस प्रकार संकटों का सामना किया। जब स्वयंवर की बारी आयी तो जनक जी ने शर्त रख दी कि जिस धनुष को सीता बायें हाथ से उठाकर रख सकती है तो इसका वर भी ऐसा हो जो इस धनुष की चाप चढ़ा सके। यदि सामान्य व्यक्ति को यह पुत्री दे दी जायेगी तो उचित नहीं होगा, अनुचित होगा। जो व्यक्ति जिसके योग्य है वह वस्तु उसे ही मिलनी चाहिए। तो पुनः स्वयंवर में यह परीक्षा की गई कि जो इस धनुष की डोरी को चढ़ा देगा उसी के साथ सीता का विवाह होगा। स्वयंवर का नाम था वह तो ''शर्तवर'' था ऐसी Condition थी ऐसी Condition होने पर ही शादी होगी। ये स्वयंवर नहीं शर्तवर कहलाता है। यदि शर्त पूरी नहीं होगी तो सीता को जीवन भर ब्रह्मचर्य का पालन करना होगा। यदि सीता की वह शर्त पूरी नहीं होती तो सीता को जीवन पर्यंत कुवारी रहना पड़ता। सीता ने उस समय भी किस संकट का सामना किया। हे प्रभो! ऐसा न हो यदि मैं पहले ही ब्रह्मचर्य व्रत को अंगीकार कर लेती तो कोई बात नहीं थी लेकिन जब शादी करने की इच्छा प्रकट कर चुकी हूँ, इस स्वयंवर सभा में आ चुकी हूँ शादी न हो पाये तो मेरे जीवन में कलंक का टीका लग जायेगा। शादी करना तो चाहती थी, फिर भी शादी नहीं कर पायी, उस समय

सर्वोदयी चिन्तन

सत्य ही श्रेष्ठ धर्म है, जहाँ सत्य नहीं वहाँ आत्मा से साक्षात्कार असम्भव है। बिना सत्य के कल्याण की प्राप्ति, बालू से तेल निकालने के समान है, बिना सत्य के जीवन अंक रहित शून्यों के समान है।

जो प्रभु का स्मरण किया होगा, उसको अनुभूति हुई होगी। अपने पाप के उदय से उस समस्या को भी सहन करके और थोड़ी पुण्य प्रकृति का उदय आया तो राम जैसे सुयोग्य वर प्राप्त क्या हुए एक संकट और मोल ले लिया। जैसे ही शादी के बाद यहाँ तो मंगल गान किये जा रहे हैं अब राम को राज्यपद मिलना चाहिए, राज्याभिषेक होना चाहिए और सीता भी सोच रही थी ठीक है अभी तो मैं जनकपुरी में अपने पिता के यहाँ रहती रही। अभी तो मैं राजकुमारी बन कर रही किन्तु अब तो मैं पटरानी बनकर रहूँगी, मेरा पुण्य का उदय आ गया, धन्य है मेरा भाग्य कि मैं पटरानी बनूँगी। राम के राज्याभिषेक की तैयारियाँ होने लगीं, दशरथ ने कहा राज्याभिषेक अभी कर दो किन्तु विश्वामित्र आदि महान् महात्माजनों ने कहा- नहीं! शुभ मुहूर्त में होना चाहिए। ठीक है समय का कोई भरोसा नहीं कब से क्या हो जाए। यदि शाम को राजतिलक हो जाता तो हो ही जाता और शाम से सवेरे तक इतिहास बदल जाता है। रातों-रात इतिहास बदल जाता है और यही हुआ जो अभी पटरानी बनने के स्वप्न देख रही थी वह सीता अभी पटरानी नहीं बन सकी और हुआ यह पिता की ओर से यह संकेत प्राप्त हो जाता है कि इस राज्य का हकदार भरत बनेगा क्योंकि कैकई ने ऐसा वरदान माँग लिया है। राम वन के लिए चले जाते हैं, साथ में लक्ष्मण भी जाते हैं और सीता भी चली जाती हैं क्योंकि स्त्री के लिए पति ही सर्वस्व होता है, सब कुछ होता है, पति के अलावा उसका पूरा जीवन शून्य है। सब कुछ हो, राजरानी भी हो, पटरानी भी हो और वह यदि शचि ही क्यों न हो यदि उसका पति ही न हो तो वह सौभाग्यवती नहीं अभागी कहलाती है, वह पापिन कहलाती है, दुर्भाग्यहीन कहलाती है, और जिसका पति उसके पास है ऐसी भले ही भिखारिन क्यों न हो किन्तु फिर भी उसे सौभाग्यशाली

सर्वोदयी चिन्तन

जिसके पास सत्य ही नहीं तो उसके पास है ही क्या? सत्य प्रथम सोपान है, इसे प्राप्त किये बिना सत् का अनुभव व प्राप्ति असंभव ही है।

कहेंगे, पुण्यशाली कहेंगे। सीता ने कहा- मैं पति के बिना नहीं रह सकती और पति के साथ चली जाती है। जब राम के ऊपर कष्ट आयेंगे तो सामने से मैं कंकड-पत्थर अलग करती जाऊँगी, आगे-आगे चलती जाऊँगी। जब राम के पुण्य का उदय आयेगा, सुख आयेंगे तो मैं पीछे-पीछे अनुगमन करूँगी। चौदह वर्ष तक वनवास में कैसे बिताये होंगे। यदि आपसे कह दिया जाए एक साल के लिए कहीं चले जाओ, क्यों चले जायें? भाई! हमारा घर में हिस्सा नहीं है क्या? हम तो घर में रहेंगे। आज ऐसे पुत्र मिलना कठिन है किन्तु धन्य है उन राम के लिए जो इतिहास में ''मर्यादा पुरुषोत्तम'' के नाम से प्रसिद्ध हुए, धन्य है ऐसे महापुरुषों के लिए जिन्होंने अपने पिता के वचनों के लिए अपने सुखों की तिलांजलि दे दी और धन्य है उन पिता दशरथ के लिए जिन्होंने अपने वचन की रक्षा के लिए अपने प्रिय पुत्रों को जो प्राण से भी प्रिय थे, जिनके प्रति प्रेम उमड़ रहा है, बचपन से उन्हें विश्वामित्र के पास ले जाते हैं। जैसे ही आते हैं तो वन के लिए आज्ञा दे देते हैं, उनका प्रेम, स्नेह, वात्सल्य, लाड़-प्यार सब मन में ही रह जाता है वे लहू का-सा घूँट पीकर रह गये, मन मसोस करके रह गये, मन की बात मन में ही रह गयी। वे बालकों के लिए कब से पलक-पाँवड़े बिछाये बैठे हुऐ थे, मेरे पुत्र आयेंगे जब मैं अपने पुत्रों को इस राज्य में देखूँगा तो मेरे दोनों नेत्र तृप्त हो जायेंगे। किन्तु व्यक्ति सोचता कुछ है, होता कुछ और है। हुआ ये कैकयी द्वारा वरदान माँगने पर राम को जंगल की ओर जाना पड़ा। सीता ने वहाँ चौदह वर्ष संघर्षों का सामना किया, इसके उपरांत जब रावण हरण करके ले गया तो वहाँ पर भी संघर्ष का सामना करना पड़ा अपने शील की रक्षा की। कितने रावण ने प्रलोभन दिये, किन्तु सीता अपने धर्म में अडिग रही। इसके उपरांत

सर्वोदयी चिन्तन

सत्य धर्म चर्चा का नहीं चर्या का विषय है। इसके लिए संसार के समस्त पदार्थों को छोड़ा जा सकता है किन्तु इसे किसी के लिए भी छोड़ा नहीं जा सकता।

भी जैसे ही अयोध्या आयी और चंद क्षणों का भी सुख नहीं भोग पाया। एक धोबी के द्वारा कहे जाने पर "इस सीता को राम ने पुनः रख लिया जो रावण के घर रहकर आयी है और इस बात की आड़ लेकर के बहुत से लोगों में दुष्प्रवृत्तियाँ फैलने लगीं, दुराचार की वृत्ति होने लगी" तो निवेदन आया राम के पास, प्रभो! जनता अनुकरण करती है बड़ों का, किन्तु वह सामान्य जनता बड़ों का सत्य नहीं जानती है सत्य क्या है इसलिए इनका निराकरण हो जाए तो बहुत अच्छा है। ठीक है, यदि राजा के प्रति भी प्रजा को शंका हो जाए तो राजा को भी सत्य की रक्षा के लिए ऐसा करना चाहिए, जिससे शंका निर्मूल हो जाए और शंका को दूर करने के लिए सीता को देश निकाला दे दिया। सीता ने पुनः जंगल में विशेष संघर्षों का सामना किया। क्योंकि उस समय तो साथ में राम, लक्ष्मण थे, अभी तो वह अकेली है वह भी गर्भवती। उसने अनंग लवण और मदनांकुश नामक पुत्रों को जन्म दिया। पुत्र बड़े हुए, योग्य हुए, पिता के पास जब पुत्र आये, पिता से मिले और पिता को युद्ध में हरा दिया उसके उपरांत बेटों को तो स्वीकार कर लिया किन्तु सीता को स्वीकार नहीं किया। आज्ञा दी गयी यदि सीता अग्नि परीक्षा दे तो स्वीकार की जा सकती है। अग्नि परीक्षा देने से पूर्व सीता जी ने संकल्प ले लिया था इस अग्नि परीक्षा देने के उपरांत अब संसार के संघर्षों का सामना नहीं करूँगी। अग्नि परीक्षा अन्तिम परीक्षा होती है, इसके बाद और कोई परीक्षा नहीं दी जाती क्योंकि अग्नि में मर गया, ध्वस्त हो गया तो वह मिट गया, अग्नि में नहीं जला तो शुद्ध स्वर्ण है। अब उसे और परीक्षा देने की आवश्यकता नहीं है उसे सोलह ताप में तपा लिया जाता है वह शुद्ध कंचन बन गया। सोलह ताप सोलह कारण भावनाओं के समान होते हैं, जिन

सर्वोदयी चिन्तन

सत्य को प्राप्त करने का साहस कषायोपशमी ही कर सकता है तथा उसे पचाने की सामर्थ्य भी साहसी, धीर, वीर, गम्भीर एवं उच्चादर्शवान् में ही हो सकती है।

> **सर्वोदयी चिन्तन**
> सत्य एक ऐसा प्रकाश है जिससे आत्मा के समस्त गुण प्रकाशित हो जाते हैं, असत्य के अंधकार में कोई भी गुण रूपी निधि प्राप्त होना असम्भव है।

सोलह कारण भावनाओं के द्वारा शरीर को तपाया जाता है, आत्मा को तीर्थंकरत्व के प्रति ले जाया जाता है ये आत्मा तीर्थंकर जैसी श्रेष्ठ प्रकृति का बँध कर लेती है। सीता अग्निपरीक्षा में भी पास हुई और आर्यिका के व्रत ग्रहण कर लिये उन्होंने घोर साधना की। जब महापुरुषों की तरफ दृष्टि डालें, महासतियों की ओर दृष्टि डालें तो ऐसा लगता है सत्य कितना महत्वपूर्ण है, सत्य ऐसे ही प्राप्त नहीं होता है, सत्य के लिए पूरा जीवन दाव पर लगाना पड़ता है तब कहीं सत्य हासिल हो पाता है। असत्य तो कहीं से भी हासिल हो जाता है, असत्य के माध्यम से सत्य के वृक्ष को खंडित किया जा सकता है किन्तु सत्य का वृक्ष जीवन भर पोषण किया जाए तब कहीं फलीभूत होता है। यदि कभी जीवन में एक बार भी असत्य बोल दिया तो असत्य के दाग सत्य के सफेद चुनरी (चादर) पर दूर से दिखाई देता है। वैदिक परम्परानुसार युधिष्ठर के लिए कहा है 'वे सत्यवादी रहे, धर्मपुत्र उनका नाम कहा जाता है किन्तु उन्होंने भी जीवन में एक बार असत्य बोला' ऐसा वैदिक परम्परा के अनुसार स्वीकार किया गया है।

जब महाभारत का युद्ध चल रहा था, उस समय अश्वत्थामा अत्यन्त पराक्रम के साथ युद्ध कर रहे थे औद द्रोणाचार्य भी अत्यन्त पराक्रम के साथ युद्ध कर रहे थे, अर्जुन आदि शंकित होते हैं। श्रीकृष्ण के पास गये कि ये इस प्रकार युद्ध करेंगे तो हम जीत नहीं पायेंगे क्योंकि द्रोणाचार्य ने संकल्प भी ले लिया था कि मैं सूर्य अस्त के पहले-पहले शत्रुपक्ष के दस हजार योद्धाओं का संहार करूँगा। और उनके पराक्रम की तारीफ करते हुए ऐसा कहा जाता है कि सूर्य भी उस समय रुक जाता था जब तक नौ हजार नौ सौ निन्यानवे योद्धाओं का वध होने पर भी एक और का वध नहीं हो जायेगा, तब

तक सूर्य भी अस्त नहीं होता था यह पराक्रम की प्रशंसा करते हुए कहा गया है। इस प्रकार सोचकर श्रीकृष्ण आदि शंकित हुए, चिन्तित हुए। किसी प्रकार द्रोणाचार्य अपने हथियार छोड़ दें, युद्ध करना बंद कर दें तभी युद्ध में जीत सकते हैं। इसका क्या उपाय है, वे कैसे छोड़ सकते हैं? यदि उन्हें पुत्र वियोग की सूचना दे दी जाए तो छोड़ सकते हैं। किन्तु पुत्र वियोग तो हुआ नहीं, चलो कह देते हैं पुत्र वियोग हो गया है। एक हाथी था उसका नाम भी अश्वत्थामा था तो उस हाथी को भी मार दिया, पुनः कह दिया कि अश्वत्थामा मर गया है। कौन कहे? किसी और की बात तो द्रोणाचार्य मानने के लिए तैयार नहीं, वे युधिष्ठर की बात मान सकते हैं, क्योंकि युधिष्ठर धर्मपुत्र हैं, उन्होंने अपने जीवन में कभी असत्य नहीं बोला। जब से गुरुकुल में पढ़ते थे, तब से नियम ले लिया था-

''सत्यं वद् युक्तं चर''

जब ये पाठ द्रोणाचार्य जी सकूल में पढ़ा रहे थे तो सभी ने पाठ सुना दिया किन्तु युधिष्ठर ने पाठ नहीं सुनाया, युधिष्ठर को बहुत डाँट लगी, फटकार लगायी। बाद में युधिष्ठर रोते हुए कहते हैं प्रभो! आज से मैं नियम लेता हूँ ''सत्यंवद्'', सत्य का यह पाठ मैंने याद कर लिया और मुझे लगता है **''शिक्षा वही कार्यकारी होती है जो जीवन में आ जाए, जीभ तक नहीं रह जाए।''** बहुत सी शिक्षायें जीभ तक रहती हैं, या आजीविका तक रहती हैं, जीविका तक रहती हैं किन्तु जीवन तक नहीं आती हैं। जो शिक्षा जीवन्त हो जाती है वही वास्तव में सच्चा ज्ञान और शिक्षा है। उस समय युधिष्ठर ने सत्य बोलने का संकल्प लिया था इसलिए उन्हें तैयार किया और कहा आप जाकर के कह दो। उन्होंने कहा मैं ऐसे कैसे कह सकता हूँ, तो उनके लिए श्रीकृष्ण और अर्जुन ने कहा ''हम सत्य कह रहे हैं

सर्वोदयी चिन्तन

जिसके पास सत्य ही नहीं तो उसके पास है ही क्या? सत्य प्रथम सोपान है, इसे प्राप्त किये बिना सत् का अनुभव व प्राप्ति असंभव ही है।

अश्वत्थामा मर गया'' किन्तु ये स्पष्ट नहीं किया कि कौन मरा है। उन्होंने कहा तुम भी ऐसे की कह दो कि ''अश्वत्थामा मर गया है हाथी मरा या मनुष्य मरा'' मर तो गया है। युधिष्ठर ने कहा-

''अश्वत्थामा हतो हताः, नरो वा कुंजरो वा''

इतना कहने वाले थे ''अश्वत्थामा हतो हता: नरो'' इतना कहा तब तक श्रीकृष्ण ने शंख बजा दिया। कुंजरो शब्द द्रोणाचार्य ने सुन ही नहीं पाया और द्रोणाचार्य ने समझ लिया मेरा पुत्र अश्वत्थामा मर गया है, वियोग से उन्हें बड़ा खेद हुआ और अपने हथियार डाल दिये। उस समय युधिष्ठर ने झूठ बोला, ऐसा कथानक पुराण ग्रन्थों में प्राप्त होता है। एक झूठ बोलने का दाग युधिष्ठर के जीवन में लगा हुआ है, उन्होंने एक झूठ बोला। इतना सत्य बोला, जीवन भर सत्य बोला, असंख्यात बार सत्य बोला वह दिखाई नहीं देता है, असत्य का एक दाग दूर से दिखाई देता है। यदि कोई सफेद चादर हो और उस पर एक काला धब्बा लगा दिया जाये तो वह दिखाई देता है। चन्द्रमा इतना निर्मल होता है, शीतल होता है किन्तु चन्द्रमा में काला दाग लोगों को बहुत जल्दी दिख जाता है, उसकी धवल ज्योत्सना दिखाई नहीं देती। कहने का आशय यह है कि एक असत्य पूरे जीवन को बर्बाद कर देता है, ध्वस्त कर देता है और जिसका असत्य में ही पल रहा है उसके बारे में क्या कहा जाए।

सर्वोदयी चिन्तन

असत्य की सब उपलब्धियाँ भी असत्य होती हैं, अर्थात् जो होती ही नहीं, जैसे गधे के सींग, वन्ध्या का पुत्र, कछुये की पीठ पर बाल, भक्त बिना भगवान्, बिना बीज के वृक्ष, बिना किनारों के नदी।

महानुभाव!

एक व्यक्ति ने ऐसा विचार कर लिया था कि मैं असत्य बोलूँगा तो असत्य बोलने से वह अनेक संघर्षों का सामना करता रहा। असत्य बोलने से न तो कोई Business कर पाया, न कहीं

Service कर पाया। जहाँ भी जाता था उसे निकाल दिया जाता था। क्योंकि झूठ बोलने वाला व्यक्ति, क्या नहीं करता होगा। किसी व्यक्ति से पूछा- भाई तुम बीड़ी पीते हो, बोले-नहीं पीते, तम्बाकू खाते हो, बोले-नहीं खाते, विस्की पीते हो, बोले- नहीं पीते, अण्डे-माँस आदि खाते हो, नहीं खाते, Daily मन्दिर जाते हो, बोले-हाँ, रात्रि भोजन करते हो, बोले- नहीं, तो तुम सर्वगुण सम्पन्न हो, सभी अच्छी बातें तुम्हारे अन्दर हैं, क्या कोई तुम्हारे अन्दर बुराई भी है? बोले बुराई कुछ नहीं है, केवल एक बुराई है, बोले क्या, मैं झूठ बोलता हूँ और सब जितनी भी पूछो मैं कहता जाऊँगा। तुम कहोगे मुनि हो, बोले- हाँ, सत्य बोलते हो, बोले हाँ, धर्मात्मा हो, बोले हाँ, क्योंकि मैं झूठ बोलता हूँ। पहले ही कह रहा हूँ तो झूठ में सभी बातें झूठ हो जायेंगी। ये भी पूछोगे कि तुम सत्यवादी हो, बोले हाँ मैं सत्य ही कहता हूँ सत्य के अलावा कुछ नहीं कहता हूँ किन्तु झूठ बोलता हूँ। वह झूठ बोल रहा है, वह झूठ को भी सत्य कहेगा। बेचारे ने झूठ बोलने की आदत को क्रोध की तरह छोड़ने का प्रयास किया किन्तु पूरी तरह नहीं छोड़ पाया और उसकी झूठ बोलने की आदत बहुत कम हो गयी परन्तु वर्ष में एक बार असत्य नहीं बोले तो वह बीमार पड़ जाए। वह नौकरी करने जाए तो पहले से कह दे भैया मैं पूरे वर्ष में एक बार असत्य बोलूँगा और कभी असत्य नहीं बोलूँगा। तुम जो कुछ भी Pay देना चाहो सो दे देना जैसे भी नौकरी में रखना चाहो रख लेना किन्तु मैं एक बार वर्ष में झूठ बोलूँगा। एक दिन मेरा माफ। सोचा तीन सौ पैंसठ दिन में तीन सो चौंसठ दिन सत्य बोलेगा। एक दिन झूठ बोलेगा उस दिन काम नहीं करायेंगे, छुट्टी कर देंगे जाओ तुम घर जाओ झूठ बोलते रहो दिन भर में। सेठ ने भी सोच लिया था। क्रमशः उसे नौकरी करते-करते ग्यारह महीने उनत्तीस दिन हो जाते हैं, तीसवाँ दिन प्रारम्भ होता है वह नौकर सेठानी के पास जाता है और सेठानी के पास अकेले में पहुँच गया। कहता है सेठानी जी 'मैं जो कुछ बात आपके सामने कहने के लिए आया हूँ। क्षमा करना

हुआ, ऐसा भी हुआ था। अब तो बड़ा मुश्किल हो गया अब क्या करना चाहिये? सीधा सा उपाय है यदि सेठानी जी आप सेठ जी की एक तरफ की मूँछ साफ कर दें और आधी दाढ़ी साफ कर दें तो सेठ जी बदरूप हो जायेंगे, बदसूरत लगेंगे तो पुनः वे उनसे प्रेम नहीं करेंगी और वे उनसे मुक्त भी हो जायेंगे, तुमसे सेठ जी प्रेम करने लगेंगे तो पुनः वे उनसे प्रेम नहीं करेंगे और सारी सम्पत्ति फिर घर में भी आने लगेगी। अभी तक तो तुम नगर सेठ, नगर के राजा बन जाते। सेठानी ने कहा ठीक है अब मैं ऐसा ही करूँगी, और सेठानी लगी खूब चाकू पर धार देने के लिए जैसे ही सेठ जी आयें उनकी एक तरफ की मूँछ और दाढ़ी साफ करना है और तो कभी मौका लग नहीं पायेगा इसलिये सोते में ही करना हैं। हाँ और सेठ जी तो खर्राटे की नींद लेते ही हैं, उन्हें तो कुछ मालूम नहीं है तुम धीरे से आसानी से साफ करना और इसलिए चाकू को अच्छा पैना कर लो। ठीक है इतना कहकर वो नौकर चला जाता है और सेठानी जी तैयार हो जाती हैं। अब सेठ जी के पास जाता है, सेठ जी क्या बतायें त्रिया-चरित्र कोई नहीं जानता-

'देवो न जानाति कुतो मनुष्याः'

देव भी त्रिया चरित्र को नहीं जान पाये। सेठ जी आपकी सरलता, सहजता के बारे में क्या कहें। तुम इतना श्रम करते हो चोटी से लेकर एड़ी तक पसीना बहाते हो, तुम स्वयं पेट भर खा नहीं पाते, सुबह चार बजे से उठकर रात बारह बजे तक काम में एक बैल की तरह से काम में लगे रहते हो, तुम्हें कुछ घर का भी ख्याल नहीं है। क्यों क्या हो गया? क्या हो गया जैसे कुछ मालूम ही न हो, पता है इस बार अपनी फर्म कितनी अच्छी चली है, कारखाने में अच्छा उत्पादन हुआ है और मुनाफा भी इस वर्ष बहुत अच्छा हुआ है। बोले—हाँ! अच्छी हुई वह तो मैं भी जानता हूँ। किंतु घर में तुम्हे कुछ अंतर दिखाई दिया? एक साल पहले जैसी दाल रोटी खाते थे, वैसी

आज भी खाते हो, घर में 'कुछ फण्ड' तुम्हे दिखायी दिया, 'नहीं' तो कभी तुमने सोचा, बुद्धि लगाई? तुम संज्ञी पंचेन्द्रिय हो पैसा कहाँ जाता है और तुम तो सेठानी को सब दे देते हो तुम्हें कुछ मालूम नहीं है। बोले– जाता कहाँ है सब सेठानी के पास रखा होगा, कही गुम गया होगा। बोले–बस यही तो मैं कहना चाहता हूँ तुम तो बहुत भोले भाले हो, सीधे-साधे हो। और सही बात भी है जो व्यक्ति जैसा होता है सामने वाले को वैसा ही देखता है क्योंकि तुम भी सीधे-साधे हो इसलिये सेठानी को भी सीधा साधा मानते हो। सेठानी जी का किसी से प्रेम हो गया है और सेठानी जी आपकी आमदनी में से 90 प्रतिशत आमदनी किसी और को दे आती हैं। बोले–अच्छा, नौकर–हाँ सेठ जी– नहीं ऐसा नहीं हो सकता। बोले–ऐसा क्यों नहीं हो सकता, आप कारखाने में रहते हैं और वो घर में दिन-भर अकेली रहती हैं, और दिनभर में कितने सम्पर्क रहते हैं, पचासों जगह फोन लगाती हैं और उनके पास मित्र मिलने आते हैं। अब तुमसे क्या बतायें, तुम कहोगे कैसी निंदा करता है, किंतु मेरा तो आँखो देखा हाल है। मैंने तो कई बार देख लिया तुमसे कह नहीं पाया। आज मैं हिम्मत बांध करके तुमसे इसलिये कहने आया हूँ क्योंकि आज तुम्हारे जीवन-मरण का सवाल है। आज यदि मैं नही बताऊँगा तो आज तुम्हारी रात्रि मुझे लगता है अन्तिम कहलाये। अच्छा! बोले हाँ। सेठजी बोले नहीं ऐसा नहीं हो सकता, बोले– देख लेना तुम। आज तुम्हारा गला काटने के लिये तैयार है तुम्हारी सेठानी, एक चाकू के माध्यम से तुम्हारा गला काट दिया जायेगा। तब बाद में नरक के दुख भोगोगे जब आर्त-रौद्र ध्यान से मरोगे इयलिये पहले से ही सचेत कर देता हूँ कि आज उसका ऐसा प्लान है 'मुझे मालूम है।' सेठ ने कहा–अच्छा! मैं देखता हूँ सेठानी को। सेठ जी गये दोनों औपचारिक रूप से प्रेम करते हैं, वार्ता करते हैं, भोजन-पानी करते हैं। लेकिन दोनों के मन में शंका का भूत बैठा है, दोनों अपने-अपने कार्य में तैयार हैं। सेठ जी भी आज खिड़की के सहारे सोते हैं जो खिड़की

दूसरे के मकान की छत पर खुलती थी, वहाँ सोते हैं जिससे निकला जा सके और सेठानी के मन में शंका और पुष्ट हो गयी ये यहाँ सोते थे कभी-कभी यहाँ सोते तो हैं। लगता है कहीं पड़ोसी से प्रेम हो गया हो तो बाहर खिड़की से ही कूद जाते हों। सेठानी की शंकायें और पुष्ट होती चली जा रही हैं। जैसे ही सेठ जी सोते हैं नींद तो नहीं आयी लेकिन नींद का बहाना बना देते हैं और पुनः खर्राटे भरने लगते हैं। सेठानी दो चार बार आती है देखती है, ठीक है अब तो सो गये, दबे पैर आती है। सेठ जी देख लेते हैं क्या कर रही है। चाकू ओहो! बिल्कुल ठीक कहता था नौकर, देखता हूँ इसको। जैसे ही सेठानी सामने आती है सेठ जी नाटक कर सो गये थे, वास्तव में नहीं सो रहे थे और सेठानी ने एक हाथ में चाकू ले करके जैसे ही एक हाथ चेहरे पर रखा और सेठ जी कूद करके खिड़की के बाहर भाग जाते हैं। अब सेठानी उसके पीछे दौड़ती है, सेठानी कहती है– आज मैं तुम्हें छोड़ूँगी नहीं, सेठ जी कहते हैं– अच्छा तू मेरे पीछे, मेरे प्राण लेना चाहती है, तेरी ये योजना। अब सेठ जी भागते जाते हैं, सेठानी उनके पीछे भागती है, भागते-भागते पूरी रात बीत जाती है। प्रातः काल हुआ जब दोनों पास में आ जाते हैं। नौकर हाथ जोड़कर सामने आ जाता है। सेठ जी मेरा अपराध क्षमा हो, बोले– क्या हुआ। सेठ जी आप भूल गये थे मैंने कहा था वर्ष में एक बार झूठ बोलूँगा। एक दिन झूठ बोलने की छूट दे दी थी। न तो सेठ जी बद्‌चरित्र हैं न सेठानी बद्‌चरित्र हैं, दोनों सज्जन हैं, धार्मिक हैं, दोनों सद्‌चरित्रवान हैं, ये मैंने छूट ली थी एक झूठ बोलने की इसलिये झूठ बोलने का अपराध आप क्षमा कर दें। सेठ ने कहा-''भाग्यवान् अब तू यहाँ से भाग जा, एक झूठ से तू हमारे परिवार को, कुल को नष्ट ही कर देता।'

कहने का आशय यह है कि एक दिन का झूठ जब इतना बड़ा हंगामा पैदा कर सकता है तो जो व्यक्ति दिन-रात झूठ बोलते रहते हैं उनके जीवन में भी न जाने कितने हंगामें हो सकते हैं। महानुभाव!

सत्य प्राणों का भी प्राण है। यदि जो सत्य को अपना लेता है तो संसार के सभी गुण उस सत्यवान् व्यक्ति को अपना लेते हैं। सत्यार्थी, सत्यवान्, सत्यभाषी एवं सत्यचिंतक, सत्यअंवेषक और सत्य में जीने वाला व्यक्ति कभी जीवन में दुखी नहीं होता। वह जब सत्य को प्राप्त क्रर लेता है तो दुनियां उस सत्यार्थी के कदम चूमने के लिये तत्पर रहती है। एक बार एक चोर जिसने सत्य बोलने का नियम लिया था उसका भी कल्याण हो गया। चोर और सत्य बोलने का नियम ले लिया। कहीं भूल से पहुँच गया मुनि महाराज के प्रवचन सुनने के लिये, यद्यपि चोट कभी प्रवचन सुनने के लिए जाते नहीं, जिनके मन में चोर है वे प्रवचन सुनने नहीं आ सकते क्योंकि पहाड़ से ऊँट और संत से झूठ बहुत डरता है। ऊँट पहाड़ के पास नहीं जाना चाहता उसे अपना बौनापन दिखाई दे जाता है और झूठ संत के पास नहीं आना चाहता उसका वह झूठ वहाँ खुल जाता है, उसकी कलई वहाँ खुल जाती है। वह संत से बहुत डरता है किंतु धोखे से पहुँच गया मुनिराज का प्रवचन हुआ। प्रवचन के उपरांत सभी ने नियम लिये, वह भी अंत में नम्बर में आ गया महाराज जी मुझे भी कोई नियम दे दो। बोलो क्या नियम लेना चाहते हो, जो कुछ भी आप नियम दे दो। आज सत्य धर्म का दिन है। आज का नियम यही है कि आज से मैं सत्य ही सत्य बोलूँगा। यदि भूल से भी असत्य निकल गया तो एक णमोकार मंत्र की माला फेरुँगा। उस चोर ने भी नियम ले लिया मैं सत्य बोलूँगा झूठ नहीं बोलूँगा। झूठ के सिवाय यद्यपि मेरा कोई चारा नहीं था किंतु अब सत्य के सिवाय मेरा कोई चारा नहीं होगा। महाराज ने कहा यदि सत्य बोलेगा तो फलीभूत हो जायेगा, उस चोर ने कहा महाराज ''मैं चोरी करता हूँ'' कोई बात नहीं। तुम कहते हो-कोई नहीं, चोरी करके लाऊँगा कोई पूछेगा यदि मैं कहूँगा चोरी करके लाया हूँ तो मैं पकड़ा जाऊँगा, पिटाई मेरी होगी। बोले तू चिंता मत कर, विश्वास रख सत्य के प्रति, तेरा कुछ भी नहीं होगा। वह चोर नियम ले लेता है। उसने कहा जो

होगा सो देखते हैं, अब नियम ले ही लिया है और चोरी करना ही है तो ऐसी चोरी करो इस पार या उस पार। चोरी करने के लिये राजदरबार में गया जहाँ द्वार पर सैनिक द्वारपाल राजदरबार में खड़े हुये हैं। वह चोर, चोर की पोशाक में नहीं गया। अब उसके अंदर स्वाभिमान है, उसकी आवाज में कुछ कड़कपना है, उसका भेष भी एक रहीस जैसा लग रहा है। वह जाता है और सीधा प्रवेश करता चला जाता है। चौकीदार रोकते हैं ''कौन है?'' जानता नहीं मैं चोर हूँ। बेचारे चौकीदार तो काँप गये, चोर कभी अपने मुँह से नहीं कहता कि मैं चोर हूँ। लगता है राजा के कोई मित्र होना चाहिये। बोले- कहाँ जाना है? राजा के पास जाना है, राजा के खजाने में जाना है। अब तो बेचारे चौकीदार घबराये पुनः उस एक चौकीदार ने आगे जाने दिया, आगे दूसरे चौकीदार ने रोका ''कौन? बोले कौन क्या, क्या तू ये समझता है मैं चोर हूँ। तो हाँ, मैं चोर हूँ, बेचारा घबरा गया चौकीदार, ठीक है साहब आप जाओ। उसने सोचा जब पहले चौकीदार ने नहीं रोका तो मैं क्यों रोकूँ और धीरे-धीरे वह चलते-चलते महल तक पहुँच जाता है, खजाने के पास पहुँच जाता है। सभी लोग ये सोचते रहते हैं कि ये राजा का मित्र होगा और कहता है मैं राजा के पास जा रहा हूँ और राजा के पास से अभी लौट के आता हूँ। लोग सोच रहे थे राजा के पास मिलने के लिये आया होगा अन्यथा कोई चोर होता तो चोर के अंदर तो भय भी रहता है और थोड़ा कोई डरा दे, धमका दे तो थोड़े से डर से वह काँप जाता है। थोड़ी सी कोई आवाज लगा दे तो वह काँप जाता है और कोई तैयार खड़ा हो चौकीदार तो वह प्रवेश नहीं कर पाता। वह वहाँ पर गया पोटली में उसने बहुत सारा धन बांध लिया और राजा के पास जाता है किंतु राजा उस समय निंद्रा में मग्न थे तो पुनः राजा वाले कमरे में से निकलकर उस धन की पोटली लेकर के आता है। कोई चौकीदार उसे नहीं रोकते। सभी यही समझते हैं कि राजा के पास से आ रहा है, लगता है कि राजा ने इसे कुछ चीज भेंट दी होंगी। चला जाता

है। पुनः बाहर आया घुड़साल में जाता है वहाँ के लोगों ने भी पूछा "कौन?" बोले "चोर" मुझे घोड़ा चाहिये, एक अच्छा घोड़ा चाहिये। क्योंकि मेरे पास जो धन है वह मैं कैसे ले जाऊँगा? उसने भी समझा वह राजा का मित्र होगा कोई खास आदमी होगा, राजा ने इसे भेंट दी है इसलिये ये यहाँ आया है। इस प्रकार ये वार्ता कर रहा है चोर कोई ऐसे कहता थोड़े ही है। चोर तो चोरी करके ले जाता है कहता नहीं है, और वह घोड़ा भी लेता है, घोड़े पर बैठकर उस धन-वैभव की पोटली को लेकर चला जाता है। चला गया, प्रातः काल मालूम चला, भंडारी ने राजा से पूछा वे कौन थे? बोले कौन? वे कौन थे? वे? वे कौन? वे जो शाम को आप से मिलने के लिये आये थे, बड़े साहू जैसे लग रहे थे। बोले-कौन मिलने के लिये आये थे? बोले-जो खजाने में से इतना सारा धन बांध कर ले गये। बोले-कौन ले गये? बोले-आपके पास नहीं आये थे? मेरे पास तो कोई नहीं आया। बोले-कौन थे? उनका क्या नाम था? नाम तो उन्होंने नहीं बताया। वह व्यक्ति कह रहा था-मैं चोर हूँ। चोर हूँ तो फिर चोर होगा, उसका पता लगाया जाये। पूछा तो लोगों ने कहा महाराज एक व्यक्ति आया तो था किंतु अपने आपको चोर कह रहा था और खजाने से पोटली बांध के ले गया घोड़ा भी ले गया अब ये खबर पूरे नगर में फैल गई कि राजभवन से चोरी हो गई चोर का पता लगाओ चोर भी बड़ा विचित्र चोर, ऐसा चोर जो अपने आपको कह रहा था मैं चोर हूँ और चोरी करके ले गया। पता लगाने के लिये राजा के सिपाही, सैनिक जाते हैं। वह घोड़ा लेकर गया था वह बहुत दूर निकल जाता है। एक वृक्ष की छाया में विश्राम कर रहा है, सोच रहा है जिंदगी इसी से चैन से पूरी कट जायेगी, बहुत अच्छा है जिंदगी भर के लिये निवृत्त हो गया। अब मैं कभी चोरी नहीं करूँगा, उसने त्याग कर दिया, सैनिक खोजते-खोजते वहाँ पहुँच जाते हैं। वह सो रहा है, घोड़ा बंधा हुआ है, खजाने की पोटली रखी हुई है। अब जो सैनिक उसके पास पहुँचे उसने देखा भी नहीं था। उसको कैसे

जगायें? वह सैनिक डरते हैं, जगाया पूछा भैया तुम कौन हो? उसने कहा मैं चोर हूँ, बेचारे वे सैनिक काँप जाते हैं कोई रहीस व्यक्ति होगा इसे हम पकड़ कर के ले जायेंगे तो बड़ा मुश्किल होगा। राजा दण्ड भी दे सकता है फिर भी वे डरते-डरते कहते हैं- आप मजाक न करें, सही बतायें राजा के भवन से चोरी हो गई है, कोई चोरी करके ले आया है, घोड़ा भी लाया है, धन भी लाया है। वह कहता है ''मैं ही तो चोरी करके लाया हूँ, मैं ही तो चोर हूँ।'' सामने वाले सैनिक बेचारे और घबरा गये, यदि कोई कह दे, हाँ चोरी मैंने ही तो की है, तुम्हें मेरे ऊपर ही तो शंका है न, ये रखा है तुम्हारा धन लो, यह खड़ा है तुम्हारा घोड़ा, तो सामने वाला घबरा जायेगा कि ये चोर तो नहीं हो सकता। वह चोर कहता है आप विश्वास मानिये मैं चोर हूँ, मैं चोरी करके लाया हूँ। क्या राजा ने मुझे बुलाया है। ''बोले हाँ'', चलो मैं चलता हूँ। चोर राजा के दरबार में पहुँच गया। राजा ने उससे पूछा- क्या आपने चोरी की है, हाँ चोरी की है, ये रखा है धन और ये घोड़ा है। तुम चोरी करके कैसे ले गये? बोले- चोर कह कर चोरी करके ले गये। ईमानदार कहकर भी तो चोरी दुनियां करती है, अपने आपको साहूकार ईमानदार कहती है फिर भी चोरी करता है। मैंने तो चोर कहकर चोरी की है। राजा ने कहा–तुम्हें चोरी का दण्ड दिया जायेगा, बोले–स्वीकार है। जीवन में अब कभी चोरी करोगे, बोले नहीं, क्यों? क्योंकि मैं नियम ले चुका हूँ इतना धन मेरे पास पर्याप्त है, चोरी करने की मुझे आवश्यकता नहीं है इसलिये चोरी नहीं करुँगा। तुम अपने मुँह से एक बार ये कह दो मैंने चोरी नहीं की। बोले–नहीं कह सकता, एक बार कह दो मैं तुम्हें माफ कर दूँगा, नहीं! चाहे तुम मुझे दण्ड दे दो मैं नहीं कह सकता। मैंने मुनिराज से नियम लिया है कि भले प्राण चले जाये झूठ नहीं बोलूँगा। राजा ने कहा–तुम अपने नियम में इतने पक्के हो तो मैं तुम्हें अपना आधा राज्य देता हूँ और अपनी लड़की की शादी तुम्हारे साथ करता हूँ। बोले–नहीं, रुको, मुझे आधा राज्य नहीं चाहिये, मैं

महाराज के पास जाता हूँ। उनसे जाकर कहूँगा कि आपने नियम भी दिया, व्रत भी दिया तो आधे राज्य का क्यों दिया, पूरे राज्य का क्यों नहीं दिया। जब इस नियम से आधा राज्य मिल रहा है, आधा तुम्हारा आधा मेरा, झगड़ा होता रहेगा इसलिये कोई नियम भी देना था, व्रत भी देना था तो ऐसा देना था जिससे पूरा राज्य मिल जाये और वह मुनि महाराज के पास चला जाता है। महाराज जी से कहता है महाराज जी! आप करुणाशील हैं, दयाशील है किंतु आधे हैं, यदि आप पूरे करुणाशील होते, दयाशील होते तो पूरा राज्य दिलवा देते। आपने ऐसा व्रत दिया कि राज्य भी मिला सो आधा-आधा, जिससे जीवन भर लड़ाई होती रहे। मुनिराज बोलते हैं- भैया यदि पूरा राज्य चाहिये तो वस्त्र पहन करके पूरा राज्य प्राप्त नहीं हो सकता, पूरा राज्य तो इस अवस्था में प्राप्त होता है। महानुभाव! वह चोर भी अपनी धुन का पक्का था। बोले—महाराज कुछ भी हो मुझे पूरा राज्य चाहिये, चाहे इस यूनिफॉर्म में हो, चाहे इस यूनिफॉर्म में हो, हमें इससे कोई मतलब नहीं हमें तो पूरा राज्य चाहिये और वह दिगम्बर दीक्षा अंगीकार कर लेता है। पुनः महाराज पूछते हैं- भैया तुम्हें कौन-सा राज्य चाहिये? धर्म का उपदेश देते हैं ये राज्य नश्वर है, क्षणभंगुर है, नष्ट हो जाने वाला है।

''राज समाज महा अघकारण, बैर बढ़ावन हारा।
वेश्या सम लक्ष्मी अति चंचल, याका कौन पतियारा॥''

और एक वह राज्य है, शाश्वत राज्य, जो एक बार उसे प्राप्त कर लेता है जीवन में कभी चूकता नहीं। असीम, अनंत गुणों को प्राप्त कर लेता है, अनंत गुणों का भोक्ता हो जाता है तो तुझे कौन-सा राज्य चाहिये। वह चोर कहता है-महाराज जी! आप मुझे बहकावे में क्यों डालते हैं, मुझे अब तो वही शाश्वत राज्य चाहिये। महाराज जी कहते हैं तुम तो यह राज्य माँग रहे थे, नहीं महाराज जी, अब ये राज्य दे दोगे तो पुनः आपके पास लौटकर आना पड़ेगा, इसलिये मुझे वही राज्य दे दो जिसमें व्यवधान न हो, जिस राज्य को कोई छीन न सके मुझे वही

मोक्ष साम्राज्य चाहिये। और वह दीक्षा लेकर, गहन साधना करके, मुक्ति रमा को प्राप्त कर लेता है। एक सत्य के निमित्त से वह मोक्ष प्राप्त कर सकता है तो क्या सामान्य व्यक्ति मोक्ष को प्राप्त नहीं कर सकते, कर सकते हैं। महानुभाव! ये तभी प्राप्त कर पायेंगे जब सत्य के लिये समर्पित हो जायेंगे, सत्य के लिये हमारे प्राण समर्पित हो जायें, किंतु आज के बारे में क्या कहा जाये आज व्यक्ति दो पैसे के ऊपर अपने सत्य को खो देता है, ईमानदारी को खो देता है और कभी-कभी तो व्यक्ति व्यर्थ की बातों में भी झूठ बोल देता है। जिनसे कोई लेना-देना नहीं है फिर भी झूठ बोलता है, आज उसका ईमान इतना सस्ता हो गया है कि वह थोड़ी-सी बात पर ईमान बेचने के लिये तैयार हो जाता है। पहले व्यक्ति अपने प्राणों को देना स्वीकार कर लेते थे किंतु अपने सत्य को, अपने ईमान को नहीं देते थे।

सर्वोदयी चिन्तन

.सत्य को अल्पकाल तक छुपाया जा सकता है, उसे नष्ट नहीं किया जा सकता, न दीर्घ काल तक गोपन। वे सूर्य की तरह प्रकट हो ही जायेगा। समय की हवा का निमित्त पाकर असत्य के बादल स्वतः ही हट जायेंगे, सत्य का सूर्य स्वतः प्रकाशित हो जायेगा।

महानुभाव!

जिसके पास सत्य होता है उसके पास सब कुछ होता है सत्य नहीं तो कुछ भी नहीं है। इसी प्रकार एक व्यक्ति था उसके पास बहुत लक्ष्मी(धन) थी। एक दिन लक्ष्मी उसे स्वप्न देती है और स्वप्न में कहती है कि अब तो मैं यहाँ से जाती हूँ, अब यहाँ मुझे बोरियत होने लगी है, यहाँ मैं नहीं रह पाऊँगी। उस व्यक्ति ने कहा–जाना चाहती हो तो खुशी से जाओ, यहाँ तुम्हारी पूजा नहीं हो पायेगी, यहाँ तो तुमको मेरी पूजा करनी पड़ेगी। जाओ, चले जाओ, कल जाओ सो आज ही चले जाओ, अभी चले जाओ, लक्ष्मी ने अपमान की बातें सुनी तो कहती है– लो मैं जाती हूँ, चली गई।

क्षण-भर के बाद पुनः शनिचर देव आ गये। वे कहते हैं- लक्ष्मी चली गयी तो अब इस घर में हमारा वास रहेगा, बोले-ठीक है, मजे से रहो, मुझे कोई हानि नहीं हैं। थोड़ी देर बाद ज्ञान भी कहता है मैं भी जाता हूँ क्योंकि लक्ष्मी चली गयी तुम्हारे पास शनिचर आ गया है तो मैं भी चला जाऊँगा, तुम्हारी बुद्धि अब भ्रष्ट होना है। बोले-भले ही चले जाओ मैं मूर्ख बनके रह सकता हूँ, पुनः थोड़ी देर बाद शांति आती है वह हाथ जोड़ती है कि मैं अब जा रही हूँ। बोले-जा सकते हो मुझे तुमसे कोई ताल्लुक नहीं। क्रम-क्रम से सभी चले गये। इसके बाद संयम भी आता है वह भी चला जाता है, धर्म आता है वह भी चला जाता है कि अब मैं तुम्हारे पास नहीं रह पाऊँगा। अंत में आता है सत्य, वह कहता है जब सब ही यहाँ से से चले गये तो मैं यहाँ रहकर क्या करूँगा? सत्य जैसे ही जाने की कहता है वह व्यक्ति हाथ में डंडा लेकर बोला-यदि तुम यहाँ से चले गये तो समझ लेना, तेरे पीछे ही तो मैंने सब छोड़ दिया है, तुझे तो मैं यहाँ बाँध कर रखूँगा। मेरे प्राण भी चले जाये किंतु तुझे नहीं जाने दूँगा। सत्य कहता है ठीक है भैया, मैं यही रहता हूँ, मैं यहीं बैठ जाता हूँ। थोड़ी देर बाद खट-पट की फिर आवाज आयी, पूछा ''कौन'' मैं धर्म, बोले- तुम तो अभी चले गये थे। बोले-नहीं जा सकता, मैं, क्यों? क्योंकि मेरा रिमोट कंट्रोल तो तुम्हारे पास है, मैं कैसे जाऊँ? मैं वहाँ तक गया, किंतु आपने सत्य को पकड़ लिया तो मैं भी लौटकर आ गया। जल्दी दरवाजा खोलो मैं अंदर आना चाहता हूँ, चलो ठीक है तुम आ जाओ। थोड़ी देर बाद पुनः संयम आ गया, वह भी कहता है जहाँ धर्म है वहाँ मैं रहूँगा उसके बिना मैं नहीं रह सकता। थोड़ी देर बाद शांति भी लौट कर आ जाती है, फिर ज्ञान भी लौटकर आ जाता है, सब लौटकर आ जाते हैं। सेठ जी पूछते हैं तुम लौटकर क्यों आ गये बोले जहाँ पर सत्य रहता है वहीं हम रहते हैं, जहाँ सत्य नहीं रहता वहाँ हम नहीं रहते।

महानुभाव!

> **सर्वोदयी चिन्तन**
> असत्य की सब उपलब्धियाँ भी असत्य होती हैं, अर्थात् जो होती ही नहीं, जैसे गधे के सींग, वन्ध्या का पुत्र, कछुये की पीठ पर बाल, भक्त बिना भगवान्, बिना बीज के वृक्ष, बिना किनारों के नदी।

सत्य ही एक ऐसा स्थान है, ऐसा साधन है जहाँ सभी गुण विद्यमान रहते हैं, निवास करते हैं जहाँ सत्य नहीं होता वहाँ कोई भी गुण नहीं रह पाता। इसलिये आप लोगों को उत्तम सत्य धर्म को प्राप्त करने की बात तो बहुत ऊँची बात है, वह श्रमण धर्म है। आपको अभी स्थूल असत्य का त्याग करना चाहिये, सत्याणुव्रत का नियम ले लेना चाहिये। मैं कोई ऐसा असत्य नहीं बोलूँगा जिसके माध्यम से किसी के प्राण चले जायें या किसी के प्राण संकट में पड़ जायें, कोई दुःखी हो जाये तो ऐसा मैं असत्य नहीं बोलूँगा। सत्याणुव्रत का ऐसा भी नियम लिया जा सकता है। सत्याणुव्रत के उपरांत आता है पुनः 'सत्य महाव्रत'। जब सत्याणुव्रत में आप सफल हो जायें तो पुनः सत्यमहाव्रत को अंगीकार करें, सत्य महाव्रत का जब पालन ठीक हो, तब भाषा समिति ले लें। तो पुनः भाषा पर कंट्रोल, हित-मित प्रिय वचन ही बोलना है अहितकारी नहीं बोलना है, कटुक नहीं बोलना है और ज्यादा अनर्गल व तथ्यहीन भी नहीं बोलना है और उसके उपरांत कह दिया- वचन गुप्ति, अब बोलना ही नहीं क्योंकि सत्य बोलने की चीज नहीं है, सत्य तो अनुभव की चीज है। उस वचन गुप्ति के उपरांत उस सत्य धर्म की जो अनुभूति होती है। वह अनुभूति किसी को बताई नहीं जाती। यदि आपको उत्तम सत्य धर्म के बारे में उपदेश देना चाहें तो नहीं दे सकते क्योंकि वह उत्तम सत्य धर्म बताने की चीज नहीं है, कहने की चीज नहीं है अनुभव की चीज होती है। जैसे आपके अंतरंग का आनंद हम आपसे पूछें कि आपने अभी आरती की, पूजन की, खूब भक्ति कर रहे थे आपको कितना आनन्द आया? कितना कहोगे? बहुत, और

सर्वोदयी चिन्तन
जिस कसौटी पर समस्त धर्मों को परखा जाता है, उस कसौटी को भी सत्य की कसौटी पर ही परखा जाता है।

जब कल भक्ति-पूजन की तब कितना आनंद आया और परसों कितना आया, शाम को कितना आया, तो 'बहुत' ही शब्द है, क्या और कोई शब्द नहीं है? अब बहुत कैसा हम बहुत को जानते ही हैं, बहुत तो कई चीजों के नाम होते हैं। बहुत माने very यानि विपुल मात्रा में, very much। 'बहुत' शब्द में तो कोई आनंद छिपा नहीं है तो आनंद कैसे आया, बता पाओगे? जब आप भोजन करते हो वहाँ भोजनशाला में उस समय भोजन करके आप आते हो तो कैसा आनंद आता है? कैसी शान्ति मिलती है? जब आपको अपनी इष्ट वस्तु खाने के लिये मिल जाये तब कैसा आनंद आता है? जब आप ध्यान करते हो तो कैसा आनंद आता है? जब आपसे कोई स्नेह करे, प्रेम करे तब कैसा आनंद आता है? जब आपकी कोई प्रशंसा करे तो कैसा आनंद आता है? कैसी अनुभूति होती है? जब आपको कोई बुरी निगाह से देखे तो कैसा दुःख होता है जब आपको कोई मारे पीटे तो कैसा दुःख होता है? कोई फोड़ा-फुन्सी या बुखार आ जाये तो कैसा दुःख होता है? क्या उसे बता पाओगे? आपकी माँ आपसे जब वात्सल्य करती थी, उस समय आपको कितना आनंद आता था, कितना आता था बता पाओगे? नहीं बता पाओगे क्योंकि यह बताने की चीज नहीं होती।

''रहिमन बात अगम्य की, कहन, सुनन की नाय।
जानत है वे कहत नहीं, कहत है वे जानत नाय।''

रहीम जी कहते हैं ये तो अगम्य की बात है जानने की नहीं है,ये कहने सुनने की बात भी नहीं, इनको कहा नहीं जा सकता, जो जानता है सो कहता नहीं, जो कह सकता है वह जानता नहीं। गूंगे का गुड़ है। गूँगा यदि गुड़ खाये तो क्या बताये कि कैसा स्वाद है?

मुँह से बोल नहीं पाता ऐसे ही आनंद भी गूंगे का गुड़ है। उसे कहा नहीं जा सकता। उत्तम सत्य धर्म भी गूंगे का गुड़ है। उसे कह नहीं सकते, अनुभूतियाँ कभी बताई नहीं जा सकती हैं। सत्य अनुभूतिपरक होता है। धर्म सत्यरूप इसलिये है क्योंकि सत्य तथ्य रूप होता है, कथ्य रूप नहीं होता। धर्म के सिद्धांत तो कथ्य होते हैं, धर्म को आज पकड़ने वाले लोग कम है धर्म के लिबास को पकड़ने वाले बहुत हैं, कुछ रुढ़ियों को पकड़ लेते हैं जो वास्तव में धर्म नहीं हैं।

"Real Religion is Banana."

Artificial Religion is Banana's skin.

Banana's skin Means केले का जो ऊपर का छिलका होता है, जो उसका बाहर का है वह उसका बाहरी धर्म है, व्यवहारिक धर्म है जिसे व्यक्ति पकड़कर संतुष्ट हो जाता है किंतु जो Real धर्म है, केला है वहाँ तक कोई पहुँच ही नहीं पाता। Real धर्म है किसी भी वस्तु का रस, व्यक्ति रस तक तो नहीं पाते किंतु बाहर से पकड़ कर रह जाते हैं। कहने का आशय यह है कि व्यक्ति उन बाहर की मान्यताओं को, सिद्धांतों, धारणाओं को पकड़ के बैठ जाता है किंतु ये सब कथ्य हैं। ये सब धर्म के साधन तो हो सकते हैं, धर्म नहीं है। जिसे तुम वचनों से नहीं कह सकते वही धर्म कहलाता है और जो वचनों से कहा जाता है वह साधन, कारण, धर्म का प्रारूप और धर्म की एक यूनिफॉर्म हो सकती है, वास्तव में वह धर्म नहीं हो सकता। महानुभाव! सत्य भी एक ऐसा ही धर्म है जिसकी कोई यूनिफॉर्म नहीं होती, यदि उसकी कोई यूनिफॉर्म होती तो बता देते। सत्य ये है, खड़ा कर देते चौराहे पर सत्य ये है किंतु सत्य को खड़ा नहीं किया जा सकता। सत्य को ही

सर्वोदयी चिन्तन

उत्तम सत्य धर्म, कसौटी पर कसौटी को कस कर परखने की कसौटी है, जब यही सत्य नहीं तब सब व्यर्थ ही है।

क्या किसी भी धर्म को खड़ा नहीं किया जा सकता, जो वास्तविक धर्म है उसे खड़ा नहीं किया जा सकता। उसे खड़ा किया भी जाता है तो किसी आधार से। यह सत्यवादी है, क्षमाशील है, विनयवान है, ईमानदार है, सदाचारी है, निर्लोभी है, संतोषी है, समताधारी है, उस व्यक्ति के साथ में तो धर्म खड़ा हो जाता है किंतु धर्म को कभी स्वतंत्र खड़ा नहीं किया जा सकता। **जैसे संसार में चेतना बिना शरीर के नहीं रहती है वैसे ही बाहर के सिद्धांतों से अलग रहकर के, व्यवहार धर्म से अलग रहकर के कभी निश्चय धर्म टिक नहीं पाता।**

महानुभाव! संसार में जितने भी धर्म को मानने वाले लोग हैं सभी यही कहते हैं कि मेरा धर्म सत्य है।

Might is right.

किंतु जो वास्तव में धर्म को जानने वाले होते हैं, वे कहते हैं-

Right is Might.

महात्मा गांधी भी पहले यही कहते थे Might is right. बाद में उन्हें मालूम चला जब धर्म की अनुभूति हुई, रायचन्द्र जी के सम्पर्क में आये तब पुनः अहसास हुआ ''नहीं'' जो मेरा है सो सत्य नहीं है, बल्कि जो सत्य है वही सत्य है और वही मेरा है। अभी अमेरिका में संतों की वार्ता में हजारों ने भाग लिया, भारत से भी बहुत संत गये उन्हें धर्म के सम्बन्ध में अपनी-अपनी व्याख्यायें दी, वहाँ का टॉपिक था ''विश्व शान्ति कैसे हो सकती है?'' वर्तमान में विश्व अंत की कगार पर बैठा हुआ है, अंतिम स्वप्न देख रहा है, कभी भी अंत हो सकता है। आज विश्व में इतनी शक्तियाँ हैं कि विश्व को 7 बार समाप्त किया जा सकता है। पाँच-सात शक्तियाँ तो ऐसी हैं जिससे देश को पाँच-सात बार पूरी

सर्वोदयी चिन्तन

उत्तम सत्य धर्म को क्षमाशील, विनयशील, सरल, सहज एवं आत्म संतुष्ट व्यक्ति ही प्राप्त कर सकता है।

तरह से नष्ट किया जा सकता है। जो आधुनिक विश्व है, वर्तमान का विश्व है और जैनागम के शब्दों में कहें तो आर्यखण्ड का एक छोटा सा टुकड़ा है उसे सात बार नष्ट किया जा सकता है। कभी भी विश्व युद्ध भड़क सकता है। पूरे विश्व में आज अशांति का वातावरण बना हुआ है चाहे कोई भी देश हो सभी स्थानों पर अशान्ति व्याप्त है। सभी लोगों ने मिलकर संयुक्त राज्य बनाया, एक संयुक्त कम्पनी बनाई, एक संयुक्त संगठन बनाया पुनः उसके माध्यम से जो कॉन्फ्रेंस बुलाई उसमें कुछ बातें अच्छी-अच्छी बताई और ये बताया गया कि प्रत्येक व्यक्ति अपने-अपने धर्म की तह में चला जाये, अपने धर्म में खूब गहरे से डूब जाये तो व्यक्ति सुख शान्ति को प्राप्त कर सकता है क्योंकि संसार का प्रत्येक धर्म किसी न किसी अपेक्षा से सत्य है, अपेक्षा सही हो तो और वहाँ पर ये भी बात कही। व्यक्ति को आज केवल संकीर्णता में नहीं जीना है, दूसरे के धर्म के बारे में सामान्यतः ज्ञान होना भी अनिवार्य है क्योंकि तुम कैसे जान पाओगे कि दूसरे के धर्म में क्या बात कही है और कौन-सी बात सच है। हो सकता है कोई बात तुम ऐसी पकड़ के बैठ गये हो जो कि तुम्हें अपने धर्म के अनुरूप लग रही है, आपके धर्म के वह प्रतिकूल भी हो सकती है इसलिये जो बात उस संत ने कही थी कि सत्य, सत्य होता है क्योंकि संसार के सभी व्यक्ति यही Might is right तो कहते हैं किंतु right is might नहीं कहते, वो मेरा है जो सत्य है। अभी आप जैन हैं तो कह रहे हैं जैन धर्म सत्य है और सब असत्य है। यदि आप मृत्यु के उपरांत हिंदु हो गये तो कहोगे हिंदू धर्म सत्य है, जैन धर्म असत्य है। यदि मुस्लिम होंगे तो कहोगे मुस्लिम धर्म सत्य है और सब असत्य है, सिक्ख होंगे तो कहोगे, सिक्ख धर्म सत्य हैं और सब असत्य है। कहने का आशय यह है कि जिस-जिस धर्म में तुम जन्म लेते जाओगे तो उस धर्म को सत्य कहते जाओगे? सत्य ऐसा नहीं है जो तुम्हारे अनुसार चले। सत्य, वह विश्व की सबसे बड़ी शक्ति है, वह शक्ति किसी का

अनुकरण नहीं करती, उस सत्य का तो अनुकरण करना पड़ता है इसलिये ये न कहें जो मैं करता हूँ सो सत्य है। ''नहीं'' मुझे सत्य का अनुकरण करना चाहिये। ये मत कहो सत्य तो मेरे पीछे-पीछे दौड़ेगा, ''नहीं दौड़ेगा''। सत्य आज तक किसी के पीछे नहीं दौड़ा, सत्य तो अपने आप में अचल, निडर, स्थाई होता है, किसी के पीछे नहीं दौड़ता। उसका पीछा जो करते हैं वे सर्व शक्तिमान होते हैं, सत्य और यथार्थ गुणों को प्राप्त कर लेते हैं।

महानुभाव!

किंतु सत्य को सहन कर पाना बहुत कठिन है, सत्य की रक्षा कर पाना बहुत कठिन है, सत्य के लिये बहुत संघर्ष करना पड़ता है। इसलिये संघर्ष करने के लिये तैयार रहो। सत्य बोलने का, सत्य जीवन जीने का संकल्प ले सकते हैं और सत्य ही तप है, सत्य ही धर्म है, सत्य ही ध्यान, सत्य ही साधना है, सत्य ही संवर है, सत्य ही निर्जरा है, सत्य ही मोक्ष है, सत्य ही सब कुछ है।

''सांच बराबर तप नहीं, झूठ बराबर पाप।
जाके हिरदय साँच है, ताके हृदय आप॥''

''जिसके हृदय में सत्य का वास है उसके हृदय में परमात्मा का वास है अर्थात् उसकी आत्मा ही परमात्मा बन सकती है और जिसके हृदय में सत्य नहीं है तो वह असत्य के माध्यम से कभी परमात्मा को प्राप्त नहीं कर सकता।'' दूसरी बात ये भी है कि झूठ बोल-बोल कर के सत्य को छिपा भी नहीं सकते। जैसे अग्नि को रुई या कपास में नहीं छिपा सकते, उसी प्रकार सत्य को भी असत्य के बीच में नहीं छिपाया जा सकता, उसका तेज इतना प्रखर होता है कि वह प्रकट हो जाता है। अंजन चोर जैसे हार चुराकर ले जा रहा था उस हार का दिव्य प्रकाश था लोगों ने देख लिया। अंजन चोर भले ही नहीं दिखाई दे रहा है। अंजन गुटिका के माध्यम से किंतु

वह हार दिखाई दे रहा है। ऐसे ही सत्य भी दिखाई देता है, क्योंकि सत्य को असत्य के बीच में छिपाने का आश्य है कि एक जलते हुये दीपक को घोर अंधकार में छिपा देना, सुख और शांति को दुःख के बीच में छिपा देना ऐसा होना असंभव है। इसलिये किसी ने कहा था–

" सच्चाई छिप नहीं सकती कभी झूठे उसूलों से।
और खुशबू आ नहीं सकती, कभी कागज के फूलों से॥"

किंतु कुछ लोग कहते हैं–

"सच्चाई भी छिप सकती है, यदि आपस में मेल हो।
खुशबू भी आ सकती है, यदि कागज पर तेल हो॥"

सच्चाई को छिपा लेते हैं किंतु यह क्षण-भर के छिपाने की चीज है वास्तव में सच्चाई प्रकट हो जाती है। कोई और जान पाये या न जान पाये किंतु आपकी आत्मा और परमात्मा तो इसे जान ही लेते हैं। इसलिये सत्य को प्राप्त करने के लिये जो कुछ भी तुम्हें करना पड़े सब कुछ करना, असत्य के माध्यम से तुम्हारी धाक भी बन रही हो तो भी धाक नहीं बनाना। इसलिये धाक भी बनाना तो सत्य के माध्यम से। सत्य के माध्यम से लोग तुम्हारा तिरस्कार कर सकते हैं, अपमान भी कर सकते है किंतु सत्य के माध्यम से गरीब रहना भी अच्छा है। सदा सत्य के साथ रहना।

"निर्बल को दबाने से कभी धाक नहीं होती,
झूठ बोलने से कभी किसी की साख नहीं होती।
प्रारम्भ में किसी को कुछ भी बता दो
नीम की निबोरी कभी दाख नहीं होती॥

नीम की निबोरी को नीम की निबोरी ही रहती है। इसलिये आप नीम की निबोरी की दाख (मुनक्का) न कहें, असत्य के ऊपर सत्य का मुनक्का लपेटने का प्रयास न करें, यदि लपेट देंगे तो वह प्रकट हो जायेगा। आप उस सत्य को संघर्षों में प्राप्त करने के लिये प्रयास

न करें, क्योंकि सत्य संघर्षों में ही पलता है वह सत्य सुख में नहीं जन्मता। यदि सत्य को सुख मिल जाये तो सत्य सूख जाता है। जैसे छाया में आकर के पसीना सूख जाता है, ठंडी हवा से पसीना सूख जाता है और धूप में पसीना प्रकट हो जाता है। वैसे ही सत्य संघर्ष में प्रकट होता है, संघर्ष में जब जीते हैं तो सत्य निखरता जाता है। जितना सुख और सुविधाओं के बीच में आते जाते हैं उतना सुख और सुविधाओं के बीच में आते ही सत्य दबता जाता है। **संकट में साहस खोना कायरता है।**

''संकट में साहस खोना कायरता है, जड़ता है,
एक अकेला दीप रातभर, अंधकार से लड़ता है।
इतिहास उठाकर देखो मित्रों, हर युग यही सिखायेगा,
सच्चाई के लिये हमेशा, शीश कटाना पड़ता है॥

वह सच्चाई आपके जीवन में प्रकट हो, आपको अपने प्राणों से भी ज्यादा प्रिय सत्य लगे, ऐसे सत्य को प्राप्त करके आप जीवन्त मूर्ति हो जायें, जीवन्त धर्म की मूर्ति बन जायें और आप जीवन का वास्तविक आनंद ले सकें।

अर्थ सहित कुछ छंद

चन्द्रमूर्तिरिवानन्दं, वर्धयन्ति जगत्त्रये।
स्वर्गिभिर्ध्रियते मूर्ध्ना, कीर्तिः सत्योत्थिता नृणाम्॥

अर्थः- सत्य वचनों से उत्पन्न हुई मनुष्यों की कीर्ति तीनों लोकों में चन्द्र मण्डल के समान आनंद को बढ़ाती हुई देवताओं के द्वारा मस्तक से धारण की जाती है अर्थात् सत्यवादी को देवता भी नमस्कार करते हैं।

सत्य वचन के प्रभाव से पुरुषों के मुख में विश्वसनीय वाणी निवास करती है। सत्य से ही पुरुषों की बुद्धि समस्त तत्त्वों की परीक्षा करने के लिये कसौटी के पत्थर की तरह होती है, सत्य वचनों से स्थिर वैराग्य उत्पन्न होता है, सद्गुण बढ़ते हैं, रागादि नष्ट होते हैं, काम, क्रोध आदि विकार शांत होते हैं, दुर्ध्यान नष्ट होते हैं। साधु को धर्म और तत्त्व के प्रतिपादक मिष्ट वचन बोलना चाहिये, इन वचनों के द्वारा मेरा अथवा दूसरों का शुभ होगा कि अशुभ होगा, हित होगा कि अहित; कल्याण होगा कि अकल्याण। इस प्रकार पहले मन में विचार कर बाद में धर्म और तत्त्व का ज्ञान कराने के लिये आगम के अनुकूल प्रशंसनीय वचन बोलना चाहिये। यदि इस प्रकार के विचार का अभाव है तो साधु समस्त अर्थों को सिद्ध करने वाले मौन को ही धारण करें। स्व पर तत्त्व के ज्ञाता हितकारी वचन बोलें, जैसा कि कहा है-

''जिण वयणमेव भासदि तं पालेदुं असक्कमाणो वि।
ववहारेण वि अलियं ण वददि जो सच्चवाई सो॥

अर्थः- जैन शास्त्रों में कहे हुये आचार को पालने में असमर्थ होते हुये भी जो जिन वचन का ही कथन करता है। उससे विपरीत कथन नहीं करता तथा जो व्यवहार में भी झूठ नहीं बोलता वह सत्यवादी है।

असत्यं विरतौ सत्यं, सत्स्वसत्स्वपि यन्मतं।
वाक् समित्यां मितंतद्धि धर्मे सत्स्वेव बहुपि॥

अर्थः- सत्य महाव्रती सज्जन दुर्जन दोनों से थोड़ा बहुत भी बोल सकते हैं। भाषा समिति वाले सज्जन हो या दुर्जन दोनों से थोड़ा बोलते हैं। सत्य धर्म वाले सज्जनों से और भक्तों से थोड़ा बहुत भी बोल सकते हैं।

सत्यमेव वदेत् प्राज्ञः, सर्वभूतोपकारकं।
यद्वा तिष्ठेत् समालम्ब्य, मौनं सर्वार्थसाधकम्॥

अर्थः- बुद्धिमान् सब जीवों का हित करने वाला सत्य वचन ही बोलें अथवा धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष पुरुषार्थ का साधक मौन धारण करे।

मौनमेव सदा कुर्या, दार्यः स्वार्थैक सिद्धयः।
स्वैक साध्ये परार्थे वा, ब्रूयात् स्वार्थाविरोधतः॥

अर्थः- सज्जन पुरुष स्वार्थ की सिद्धि के लिये मौन धारण करें अथवा स्वार्थ और परार्थ की सिद्धि के लिये स्वार्थ अविरोधी वचन बोले।

मौनमेव हितं पुंसां, शाश्वत् सर्वार्थसिद्धये।
वचो वाऽपि प्रियं तथ्यं, सर्व सत्त्वोपकारि यत्॥

अर्थः- पुरुषों को प्रथम तो समस्त प्रयोजनों को सिद्ध करने वाला निरंतर मौन धारण करना हितकारी है और यदि वचन बोलना ही पड़े तो ऐसा कहना चाहिये जो सबको प्यारा हो, सत्य हो और समस्त जनों का हित करने वाला हो।

धर्म नाशे क्रियाध्वंसे, स्व सिद्धांतार्थ विप्लवे।
अपृष्टैरपि वक्तव्यं, तत्स्वरुपप्रकाशने॥

अर्थः- जहाँ धर्म का नाश हो, जैनाचार बिगड़ता हो तथा समीचीन सिद्धांत का लोप होता हो उस जगह समीचीन धर्म क्रिया और सिद्धांत के प्रकाशनार्थ बिना पूछे भी विद्वानों को बोलना चाहिये क्योंकि यह सत्पुरुषों का कार्य है।

स्वपरहितमेव मुनिभिर्मितममृतसमं सदैव सत्यं च।
वक्तव्यं वचनमथ प्रविधेयं धीधनैर्मौनम्।।

अर्थ:- ज्ञानी मुनियों को हमेशा स्व पर हितकारी अमृत के तुल्य सत्य वचन ही बोलना चाहिये अथवा मौन धारण करना चाहिये।

सत्यं हितं मितं ब्रूयादधर्महिंसादिवर्जितं।
धर्मोपदेशकं सारे श्रोतृ श्रवण सौख्यदम्।।

अर्थ:- ज्ञानियों को श्रोता के कानों को सुखदाई, अधर्म और हिंसादि से रहित धर्मोपदेश का सार सत्य, हितकारी और थोड़ा बोलना चाहिये।

सदा सत्यवादा-दनुल्लङ् धय वाक्यो,
वचः सिद्धिमिद्धां परिप्राप्य पश्चात्।
त्रिलोक्यैकशास्ता नरश्चारुनादो,
भवेद् निर्वृति श्री वधूरम्यहर्म्यः।।

अर्थ:- निरंतर सत्य वचनों का उल्लंघन नहीं करने वाला मनुष्य वचनों की सिद्धि को प्राप्त करके अनंतर तीनों लोकों पर शासन करने वाला होकर, मुक्ति वधू के घर में सुंदर वाणी वाला होता है अर्थात् मोक्ष को प्राप्त करता है।

सत्यं वदन्ति मुनयो, मुनिभि विंद्या विनिर्मिताः सर्पाः।
म्लेच्छानामपि विद्याः, सत्यभृतां सिद्धिमायान्ति।।

अर्थ:- मुनि सत्यवादी है और सत्यवादी मुनियों ने ही सारी विद्यायें बनायी हैं तथा सत्य बोलने वाले म्लेच्छों को भी विद्या की सिद्धि हो जाती है।

सत्यं ब्रूयात् प्रियं ब्रूयान् मा ब्रूयात् सत्यमप्रियं।
प्रियं च नानृतं ब्रूयादेष धर्मः सनातनः।।

अर्थ:- सत्य बोलना चाहिये, प्रिय बोलना चाहिये, अप्रिय सत्य नहीं बोलना चाहिये और प्रिय असत्य भी नहीं बोलना चाहिये। यही सनातन धर्म है।

मनुष्य का एक सत्य वचन ही सैकड़ों दोषों को दूर करने में समर्थ होता है। जैसे मनुष्य मधुर वचनों से संतुष्ट होते हैं वैसे किसी वस्तु आदि के देने संतुष्ट नहीं होते हैं। जगत् पूज्य कल्याण की खान मधुर वचनों के रहते हुये भी कौन बुद्धिमान् मनुष्य जगत्निन्द्य कड़वा, असत्य बोलेगा? जैसे कहा है-

''नरस्य चंदनं चंद्र, चंद्रकांतमणिजलं।
न तथा कुरुते सौख्यं, वचनं मधुरं यथा।।

अर्थः- एकवचन कला ही समस्त कलाओं से युक्त होती है, अन्य कलाओं से क्या प्रयोजन है। एक कामधेनु ही श्रेष्ठ होती है अन्य हजारों वृद्ध गायों से क्या प्रयोजन है। व्यक्ति वचनों से ही उपकारी-अपकारी, दुष्ट-सज्जन, धर्मात्मा-पापी, ज्ञानी और अज्ञानी जाना जाता है। अन्य बातों से क्या प्रयोजन है?

जाग्रत्वं सौमनस्यं च, कुर्यात् सद्वागलं परैः।
अजलाशयसम्भूत, ग्रहतः पान्ति च स्फुटम्।।

अर्थ-समीचीन वचन ही जागृति एवं परस्पर सौहार्द कर देते हैं क्योंकि सज्जनों के वचन जलाशय के बिना उत्पन्न हुए अमृत के समान होते हैं।

पश्या भवन्ति सत्येन, देवताः प्रणमन्ति च।
विमोचयन्ति सत्येन, ग्रहतः पान्ति च स्फुटम्।।

अर्थः- सत्य वचन से देवता भी वशीभूत होकर नमस्कार करते हैं और पिशाच आदि से छुड़ाकर निश्चित ही रक्षा करते हैं।

नशे मातेव विश्वास्यः पूज्यो गुरुरिवाऽखिले।
सत्यवादी प्रियो नित्यं, स्वबन्धुखि जायते।

अर्थः- सत्यवादी मनुष्य माता की तरह विश्वास करने योग्य होता है, समस्त मनुष्यों में गुरु की तरह पूज्य और नित्य ही अपने बन्धु के समान प्रिय हो जाता है।

भाषमाणो नरः सत्यं, लभते प्रीतिमुत्तमाम्।
बुधानन्दकरी कीर्ति, शशांकरसुंदराम्।।

अर्थः- सत्य वचन बोलने वाला मनुष्य उत्तम प्रीति का पात्र होता है और ज्ञानियों को आनन्दित करने वाली चंद्रमा की किरणों के समान सुंदर कीर्ति को प्राप्त होता है।

सम्पद्यन्ते गुणाः सर्वे, संयमो नियमस्तपः।
गुणानामालयः सत्यं, मत्सयामिव नीरधिः॥

अर्थः- जैसे समुद्र मछलियों की उत्पत्ति का स्थान होता है उसी प्रकार सत्य रूपी सागर में संयम, नियम, तप आदि समस्त गुण उत्पन्न होते हैं।

बुधजनपरिसेव्यं, स्वर्ग मोक्षैकद्वारं,
सकलसुखनिधानं, धर्म बीजं गुणाढ्यं।
जिनवचन पवित्रं सर्वपापापहारं,
शिवकरमतिसारं त्वं वचवो ब्रहि सत्यम्॥

अर्थ-हे भव्य! ज्ञानीजन से सेवनीय, स्वर्ग मोक्ष का अद्वितीय द्वार, समस्त सुख का भण्डार, धर्म का बीज, गुणों से युक्त, सब पापों कों दूर करने वाला मोक्ष प्राप्ति का कारण जिन वचन से पवित्र अति श्रेष्ठ सत्य वचन तुम्हें बोलना चाहिये।

विश्वासायतनं विपत्तिदलनं देवैः कृताराधनम्,
मुक्तेपथ्यदनं जलाग्निशमनं व्याघ्रोरगस्तम्मनम्।
श्रेयः संवचनं समृद्धि जननं सौजन्यसंजीवनं,
कीर्तेः केलिवतं प्रभावभवनं सत्यं वचः पावनम्॥

अर्थ-विश्वास का आयतन, विपत्ति को नष्ट करने वाला और जिसकी आराधना देव भी करते हैं। मुक्ति पथ का पाथेय, जल और अग्नि को शमन करने वाला, बाघ, सर्प आदि का स्तम्भन करने वाला, श्रेष्ठ वचन समृद्धि का जनक, सज्जनता को जीवित करने वाला कीर्ति का क्रीड़ा गृह, प्रभाव का भवन ऐसा सत्य वचन ही पवित्र करने वाला है।

दह्यते न हुताशेन, न निमज्जति वारिणि।
धन्यः सत्यबलोपेतो, नरो नद्याऽपि नोह्यते॥

अर्थ–सत्य के बल से युक्त मनुष्य धन्य हैं जो कि अग्नि के द्वारा जलाया नहीं जाता है, पानी में डूबता नहीं है, नदी के द्वारा बहाया नहीं जाता है।

तस्याग्निर्जलमर्णवः स्थलमरिर्मित्रं सुराः किंङ्कराः।
कान्तारं नगरं गिरिगृहमहि, र्माल्यं मृगारि र्मृगः॥
पातालं बिमलस्त्रमुल्लपलदलं, ब्यालः शृगालो विषम्।
पीयूषं विषमं समं च वचनं सत्यंचित्तं वक्ति यः॥

अर्थ–जो सत्य वचन बोलता है उसके लिए अग्नि जल के रूप में, समुद्र स्थल के रूप में, शत्रु मित्र के रूप में, देव नौकर के रूप में, अटवी–नगर के रूप में, पर्वत घर के रूप में, सर्प माला के रूप में, सिंह मृग के रूप में, पाताल बिल के रूप में, अस्त्र कमल के पत्ते के रूप में, बाघ भेड़िया के रूप में, विष अमृत के रूप में, विषमता समता के रूप में परिणत हो जाती है।

सर्वत्र सर्वदा च सत्यमेव गौरवं लभते।
सति सति प्रतान्येव, सूनृते वचसि स्थिते॥

अर्थ–सभी जगह हमेशा सत्य ही गौरव प्राप्त करता है, सत्य वचन के रहते हुए ही शेष व्रत रहते हैं।

आस्तामेतदमुत्र सूनृतवचाः, कालेन यल्लप्स्यते,
सद्भूपत्व सुरत्व संसृति सरित्पाराप्तिमुख्यं फलं।
तत् प्राप्नोति यशः शशांकविशदं, शिष्टेषुयन्मान्यतां,
तत्साधुत्वमिहैव जन्मनि परं, तत्केन संवर्ण्यते॥

अर्थ–सत्य वचनों के द्वारा परलोक में राज्य की प्राप्ति, देवत्व की प्राप्ति तथा संसार रूपी नदी का पार मुख्य फल है एवं चन्द्रमा के समान निर्मल कीर्ति सज्जनों के मध्य मान्यता तो दूर रहे इसी लोक में जो साधुता प्राप्त होती है उसका वर्णन कौन कर सकता है?

देशसम्मतिनिक्षेप, नामरूप प्रतितितः।
संभावनोपमाने च, व्यवहारो भाव इत्यपि॥

अर्थ–देश, सम्पत्ति, निक्षेप, नाम, रूप, प्रतीति, संभावना, उपमान,

व्यवहार और भाव के भेद से सत्य 10 प्रकार का है।

सुस्वरः स्पष्टवागिष्ट मतव्याख्यानदक्षिणः।
क्षणदनिर्जितारातिः असत्यचिरते र्भवेत्।।

अर्थ-असत्य का त्याग, अच्छा स्वर, स्पष्ट वचन, इष्ट मत के व्याख्यान में चतुर, क्षण भर में शत्रु को जीने वाला होता है।

सतयवादीह चामुत्र, मोदते धनदेववत्।
मृषावादी सधिक्कारं, यात्यधो वसुराजवत्।।

अर्थ-सत्यवादी इस लोक और परलोक में धनदेव की तरह आनन्दित होता है और असत्यवादी निन्दा को प्राप्त होकर राजा वसु की तरह नरक में जाता है।

नरकगृहकपाटं, नाकमोक्षैकमित्रं,
जिनगणधर सेव्यं, सर्वविद्याकरं भो।
स्वपर हितमदोषं, जीवहिंसादिदूरं,
त्वमति वद सुसारं सत्य वाक्यं सुखाय।।

अर्थ-हे भव्य! नरक रूपी घर का दरवाजा, स्वर्ग और मोक्ष का मित्र, जो गणधरों द्वारा सेवनीय, समस्त विद्याओं की खान, स्व और पर का हितकारी, निर्दोषी जीवों की हिंसा से रहित, सुख की प्राप्ति के लिए तुम भी सारभूत सत्य वचन बोलो।

स्वयमेव समायान्ति सम्पदः सत्यवादिनां,
किं चित्रं यद् यदाऽऽयान्ति, हंसः पद्मकरं वनम्।।

अर्थ-सत्यवादियों को सम्पदायें स्वयम् ही प्राप्त हो जाती हैं तो इसमें आश्चर्य की क्या बात है, जैसे हंस कमल युक्त तालाब में स्वयम् आ जाते हैं।

ज्ञानं विद्या विवेकं च, सुस्वरत्वं वचः पटुम्।
वादित्वं सुकवित्वं च सत्याद् जीवा भवन्त्यहो।।

अर्थ-हे भव्य जीवों! ज्ञान, विद्या, विवेक, सुस्वर, स्पष्ट वचन, वादित्व, कवित्व आदि से युक्त जीव सत्य से ही होते हैं।

सत्य व्रत, उत्तम सत्य धर्म व मिथ्या भाषण के सम्बन्ध में कतिपय कथानक व दृष्टांत

1. **असत्यवादी सत्यघोष (श्री भूति ब्राह्मण)**–जिसने भद्रमित्र के पाँच रत्न हड़प लिए। भद्रमित्र ने तो सुरक्षा के लिए रखे थे। अंत में सिंहसेन राजा के सामने दण्ड को प्राप्त कर दुर्गति को प्राप्त हुआ।

2. **असत्यभाषी गड़रिया**–जंगल में भेड़ चराने जाता, कौतुक वश चिल्लाता शेर आ गया बचाओ, ग्रामीण लोग जब पहुँचते तो हँसने लगता, शेर नहीं आया मैंने तो ऐसे ही चिल्लाया था, एक दिन सच में शेर आया कोई सहायता हेतु नहीं आया। शेर का शिकार बन गया।

3. **मिथ्याभाषी राजा वसु**–ने क्षीर कदम्ब उपाध्याय के पुत्र पर्वत का पक्ष लेने के लिए नारद की सत्य बात को भी नकार दिया। ''अज'' का अर्थ तीन वर्ष का पुराना धान भी होता है, उसी से हवन करना चाहिए। किन्तु राजा वसु ने कहा–नहीं! पर्वत ठीक कहता है, बकरे से करना चाहिए। अज का अर्थ मात्र बकरा ही है। इस प्रकार मिथ्या भाषण से उसका सिंहासन जमीन में धंस गया, वसु मरकर नरक में गया।

4. **एक दिन में झूठ का कमाल**–एक नौकर ने अपने मालिक सेठ के यहाँ नौकरी के प्रारम्भ में एक शर्त रखी कि मैं वर्ष में एक दिन झूठ बोलूँगा, उस नौकर ने वर्ष के अंतिम दिन झूठ बोलकर सेठ-सेठानी में झगड़ा करवा दिया। दोनों को

चारित्र दोष लगा दिया।

5. **सत्यवादी लकड़हारा**–कुल्हाड़ी कुएँ में गिर गई, जल देवता ने सोने की व चाँदी की कुल्हाड़ी क्रमश: दिखाकर पूछा, क्या ये तुम्हारी कुल्हाड़ी हैं, उसने मना कर दिया। तब जल देवता ने लोहे की कुल्हाड़ी दिखाई तो वास्तव में उसी की कुल्हाड़ी थी। उसने कहा–हाँ! यही है मेरी कुल्हाड़ी। जल देवता ने स्वर्ण व रजत कुल्हाड़ी भी पुरस्कार में दे दी।

6. **सत्यवादी चोर**–एक चोर ने मुनिराज से सत्य बोलने का नियम लिया, राजा के महल में चोरी करके बहुत माल ले गया, कोई पूछता तो कहता–मैं चोर हूँ। लोक उसकी बात का विश्वास नहीं करते क्योंकि, चोर कभी अपने मुँह से नहीं कहता कि मैं चोर हूँ। पकड़ा गया, तब भी सत्य बोला राजा ने इनाम में आधा राज्य दिया। लौटकर मुनिराज के पास आ गया, बोला– आधा नहीं पूरा राज्य चाहिए। महाराज जी ने उसे निकट भव्य जानकर मुनि दीक्षा दे दी, कहा– अब साधना कर कर्म क्षय करो तब तुमको पूरा राज्य अनन्तकाल के लिए मिल जाएगा।

7. **सत्यवादी राजा**–जिसने अपने वचन का परिपालन करने हेतु शनिचर की मूर्ति खरीद ली, उसके बाद उसके घर से लक्ष्मी, कीर्ति, सुख, शांति, धर्म सब जाने को तैयार हो गये, सत्य भी जाने लगा, तब उसने कहा कि तेरे कारण ही मैंने शनिचर की मूर्ति खरीदी है, तू नहीं जा सकता, अनन्तर लक्ष्मी, कीर्ति, सुख, शांति, धर्म सभी वहीं ठहर गए। बोले जहाँ सत्य रहता है वहीं हम रहते हैं।

8. **सत्यवादी धनदेव**–सत्य की रक्षा हेतु संघर्ष का सामना

किया, देवों ने परीक्षा ली, किन्तु वह अपने सत्य से विचलित नहीं हुआ।

9. **सत्यवादी राजा दशरथ**–एक बार कैकयी ने युद्ध के समय राजा दशरथ की सहायता की। राजा दशरथ ने वरदान दिया। कालान्तर में राजा दशरथ से कैकयी ने भरत को राजगद्दी का वरदान माँगा, जिसे दशरथ जी ने स्वीकार किया, पुत्र (राम-लक्ष्मण) वियोग से वैराग्य को प्राप्त हो, दीक्षा ले आत्म कल्याण को प्राप्त हुए।

10. **सत्यवादी राजा हरिश्चन्द्र**–राजा हरिश्चंद्र ने सत्य की रक्षा हेतु अपने राज्य को छोड़ा, स्वयं शमशान की रखवाली हेतु नौकरी की, रानी ने व उसके पुत्र ने भी नौकरी की, कठिन परीक्षा ली, परीक्षा में सफल हुआ, देवों ने पुष्पवृष्टि की।

11. **सत्यवादी युधिष्ठिर**–ये धर्मराज के नाम से प्रसिद्ध हुए, ये पाँचों पाण्डव में सबसे बड़े थे, इन्होंने जीवन भर सत्य धर्म का निर्वाह किया। कभी मिथ्या नहीं बोला। अंत में मुनि दीक्षा ले मोक्ष पधारे।

12. **सत्यवादी महापुरुष श्रीराम**–श्री रामचन्द्र जी ने अपने पिता की आज्ञा का पालन करते हुए राज्य का त्याग कर जंगल में भ्रमण किया। रावण के साथ युद्ध हुआ, अंत में विजयी हुए। मुनि दीक्षा ले मोक्ष पधारे।

13. **महासती सीता**–सीता जी ने सत्य की रक्षा हेतु अग्नि परीक्षा भी दी जीवन पर्यंत संघर्षों का सामना किया, अंत में आर्यिका दीक्षा लेकर स्वर्ग में प्रतीन्द्र हुई। कालान्तर में वह मोक्ष प्राप्त करेगा।

14. **सत्यवादी मंत्री पुत्र रत्नसार**–चित्रसेन ने जो कुछ पूछा यह

यथार्थ बतला दिया, भले ही वह स्वयं पत्थर का हो गया, राजा को रत्नसार मंत्री एवं रानी के शील व्रत में शंका हुई। अंत में रानी के शील व्रत के प्रभाव से मंत्री पुनः पूर्व रूप को प्राप्त हुआ।

15. **सत्यवादी वृषभदास श्रेष्ठी**–रूपखुर चोर को, शूली पर लटकते समय णमोकार मंत्र सिखाया, पानी लेने के लिए गए, तब तक रूपखुर का देहांत हो गया। राजा ने वृषभदास के ऊपर उपसर्ग करवाया, वह रूप खुर चोर मर कर देव हुआ और वृषभदास सेठ की रक्षा की। राजा ने सेठ से क्षमा याचना की। सभी ने यथा योग्य श्रावक व मुनि के व्रत ग्रहण किये।

16. **सत्यार्थी रेवती रानी**–छुल्लक जी द्वारा ब्रह्मा, विष्णु, शंकर व तीर्थंकर का रूप धारण कर रेवती की परीक्षा ली। किन्तु रेवती रानी अपने श्रद्धान से सत्य धर्म से नहीं डिगी। छुल्लक जी महाराज ने उन्हें धर्म वृद्धि आशीर्वाद देते हुए प्रशंसा की। यही रेवती रानी दीक्षोपरांत समाधि मरण कर स्वर्ग में देव हुई।

17. **सत्य के साथ रहने वाली जिनदत्ता**–जिनदत्ता के ऊपर इसकी सौत (बहिन) ने अपनी माँ से झूठ-मूठ कहकर कापालिक से उपसर्ग करवाये। जिनदत्ता को मारने बेताली विद्या भेजी, किन्तु मारने वाले से बचाने वाला बड़ा होता है। यही हुआ सत्य के साथ जीने वाली जिनदत्ता को न मार कर उस विद्या ने बन्धु श्री को ही मार दिया। जिसका पाप उसी को खाता है। न कोई तुम्हें मारने वाला है न बचाने वाला। यह व्यवहार आत्म संतुष्टि हेतु कहा जाता है। निश्चय से स्वयं के द्वारा अर्जित कर्मों का फल स्वयं को ही भोगना पड़ता है।

18. **सत्यवादी बैल**–किसी लोभी व्यक्ति ने राजपुत्र को मारकर बैलों के सींग फँसा दिया। राजा ने बैल को पुत्र का हत्यारा

समझ कर दण्ड दिया। एक किसी विवाद में सत्य की परीक्षा हेतु लोहे के फाड़ को गर्म करवाया, सत्यवादी से उठाने के लिए कहा। तब तक बीच में ही बैल ने तप्ताय मान लोहे के फाड़ को दाँत से उठाकर अपनी निर्दोषता प्रकट कर दी। सभी नगर के लोग उसके प्रति और अधिक विश्वस्त हो गए।

अमृत दोहावली

सांच बराबर तप नहीं, झूठ बराबर पाप।
जावे्र हृदय सांच है, तावे्र हृदय आप।।1।।

कोयल काको देत है, कागा काको लेत।
मीठी वाणी बोलकर, जग अपनो कर लेत।।2।।

मैं (तोता) जो बंधन में पड़ा, इसका दोषी कौन।
यह वाणी का दोष है, सबसे बेहतर मौन।।3।।

वाणी ऐसी बोलिए, मन का आपा खोय।
औरन को शीतल करे, आपहुँ शीतल होय।।4।।

सत्य अहिंसा दया प्रेम का, बस इतना सा नाता है।
दीवालों पर लिखते हैं, दीवाली पर पुत जाता है।।5।।

बहु सुनवो कम बोलवो, यो है चतुर विवेक।
तब ही तो विधि ने रच्यो, दो कान जीभ एक।।6।।

पर की निंदा सरल है, कठिन स्वयं की जान।
जो अपनी निंदा करे, जग में वही महान।।7।।

सत्य धरम अपयश क्षयकारी, सत्य सुरक्षा करै हमारी।
सत ही का सुनकर जस गावा, सो सत् धर्म जजौ सुध भावा।।8।।

सत्य धर्म जग पूज्य बताया, सत्य श्रेष्ठ व्रत जिन मुनि गाया।
सत्य धरम भवदधि को नावा, सो सत धर्म जजो सुधि भावा।।9।।

बोली बोल अमोल है, बोल सके तो बोल।
हिये तराजू तौल कर, पीछे बाहर खोल।।10।।

सत्य समान न धर्म है, झूठ समान न पाप।
सत्य धर्म को धारिये, मिटे सकल सन्ताप॥11॥

हित मित प्रिय वचन सदा, कहो आप मुख खोल।
या फिर मौन रहो सदा, यह शिक्षा अनमोल॥12॥

टाँकी के सह घाव को, पत्थर बनता मूर्ति।
वैसे गुरु उपदेश से, जीव बने चिन्मूर्ति॥13॥

वाणी में यदि एक भी, पद है पीड़ाकार।
तो समझो बस नष्ट ही, पहले के उपकार॥14॥

कटुक वचन जो बोलता, मधुर वचन को त्याग।
कच्चे फल वह चाखता, पके फलों को त्याग॥15॥

तत्त्व ज्ञान विचार में, जिनका मन संलग्न।
वे ऋषिवर होते नहिं, क्षण भर विकथा मग्न॥16॥

विनय विभूषित प्राज्ञ जन, पुरुषोत्तम गुणशील।
कभी न बोले भूलकर, बुरे वचन अश्लील॥17॥

जिह्वा में करते सदा, जीवन मृत्यु विकास।
इससे बोलो सोचकर, वाणी बुध सोल्लास॥18॥

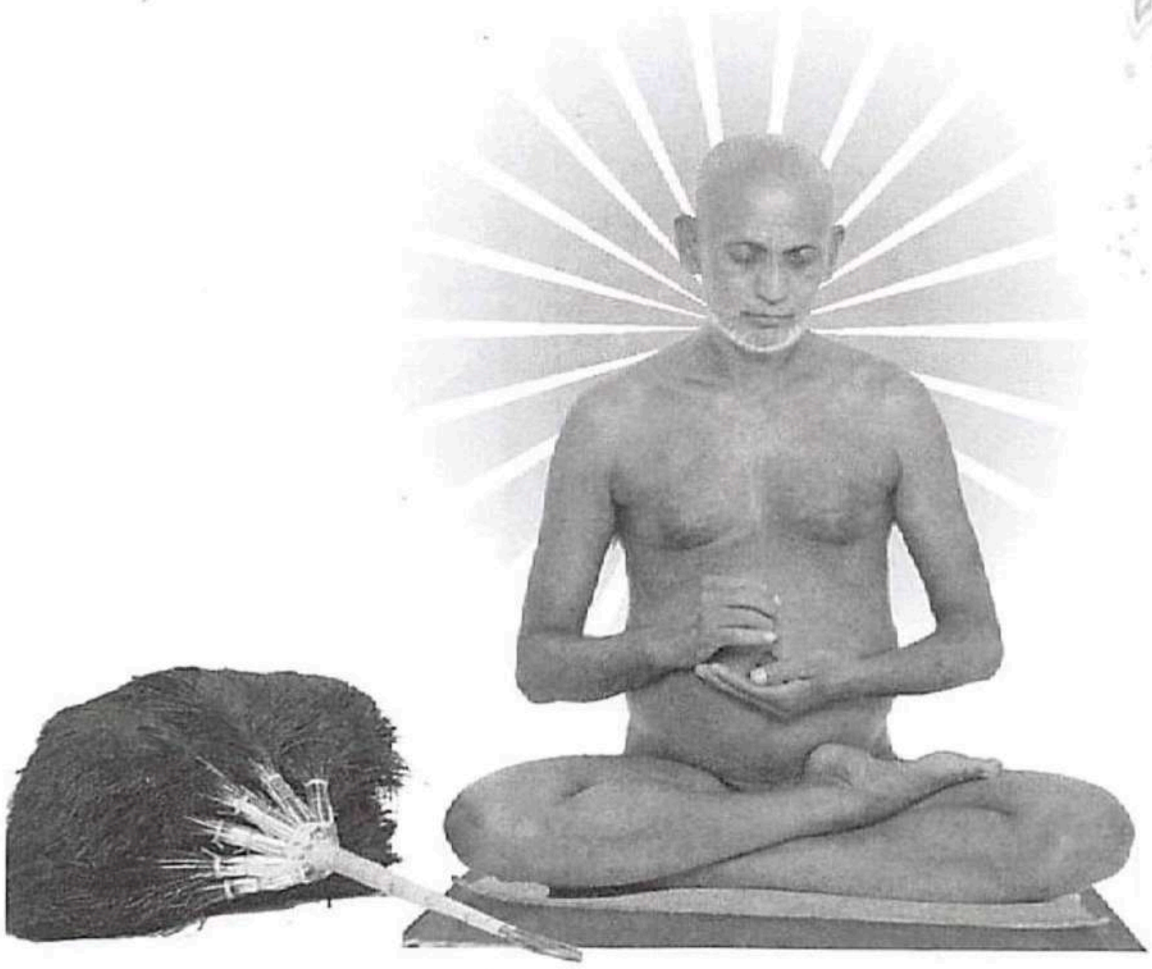

उत्तम संयम

इंदिय-पाणि-संजमा,
दियंबरा पालंति णिग्गंथा हु।
णियंता तिजोगाणं,
सव्वसत्तेहिं पुज्ज-साहू जे॥

दशामृत
अहसास अंतस का

जिस बिना नहिं जिनराज सीझे

महानुभाव,

आज पर्यूषण पर्व का छठवाँ दिन है, अभी जो सीढ़ियाँ ऊपर की ओर चढ़ रहे थे, अब उतरना आरम्भ हो गया, अब सूर्य ढलने की ओर है ऐसा मान कर चलें अब ढाई और तीन बजने वाले हैं। कुछ देर बाद संध्या काल भी आ जायेगा। पाँच दिन पार कर चुके हैं। पाँच दिन में आपने कुछ न कुछ छोड़ने का प्रयास किया था और छोड़ना पूरे दसों धर्मों में ही कहा है। यद्यपि यह बात अवश्य है कि त्याग करते ही उपलब्धि हो जाती है। कथन दो प्रकार से होता है– 1. विधि परक, 2. निषेध परक।

ऐसे भी कहा जा सकता है ''अनछना पानी नहीं पीना चाहिए'' और विधि परक ऐसे भी कहा जा सकता है ''छना हुआ पानी ही पीना चाहिए'', इसी प्रकार आपने निषेधपरक में क्रोध, मान, माया, लोभ और असत्यता को देखा और इनका त्याग भी किया था, इनका त्याग करते ही सहज ही आपको गुणों की उपलब्धि हो जायेगी। जब-जब विभाव का त्याग किया जाता है तब-तब सहज ही स्वभाव की प्राप्ति हो जाती है। विभाव का त्याग करके स्वभाव को बाहर से नहीं लाया जाता

सर्वोदयी चिन्तन

समीचीनता से युक्त होकर जीवन पर्यंत के लिए धारण किये प्राणीरक्षा सम्बन्धी संकल्प एवं इन्द्रिय व मन को नियंत्रण करने का व्रत ही संयम है।

अपितु विभाव की परिणति छूट जाना ही स्वभाव की प्राप्ति है। एक साथ दो कार्य होते हैं। अंधकार का नाश जिसके माध्यम से होता है उसी से उसी समय प्रकाश भी हो जाता है। ऐसा नहीं है कि अंधकार का नाश करने के लिए अलग से दीपक जलाया जाए और प्रकाश करने के लिए एक दीपक अलग जलाया जाए, ऐसा नहीं होता है। इसी प्रकार जब चेतना के विभावों का त्याग किया जाता है स्वकीय स्वभाव की प्राप्ति होती चली जाती है। महानुभाव! आप लोगों ने पाँच अवगुणों को त्यागने का पुरुषार्थ किया। आपने ये जाना ये पाँच चेतना के अवगुण हैं, चेतना के शत्रु हैं और यदि इन्हें पराजित कर दिया जाए तो ये ही चेतना के मित्र बन सकते हैं। जैन दर्शन में त्याग की प्रधानता है और यदि जैन दर्शन भोगविलास में विश्वास मानता तो मुझे लगता है संसार का प्रत्येक प्राणी इसे स्वीकार कर लेता। जैन दर्शन सर्वश्रेष्ठ होते हुए या यथार्थ दर्शन होते हुए और आत्मा के स्वभाव का प्रतिपादक होते हुए भी इस धर्म का अनुसरण करने वाले लोग अंगुलियों पर गिनने लायक हैं, बहुत कम हैं और जो अनुकरण और अनुसरण करते हैं उनमें भी यथार्थ रूप में अनुकरण करने वाले बहुत कम हैं। मन में कभी-कभी शंका होती होगी जो वस्तु श्रेष्ठ हो उसके ग्राहक तो अधिक होना चाहिए क्योंकि संसार में सभी जीव दुःखी हैं और वे सभी सुख चाहते हैं, इसी प्रकार श्रेष्ठ वस्तु के ग्राहक बहुत होने चाहिए। जैन दर्शन यदि श्रेष्ठ है, यथार्थ है, वास्तव में आत्मा का कल्याण करने वाला है, दुःखों का अंत करने वाला है, संसार सागर से पार करने वाला है तब तो जैन दर्शन को मानने वाले लोग बहुत होना चाहिए। यह आपकी सोच हो सकती है लेकिन अपनी सोच को और गहराई में ले जाओगे तो परिवर्तित कर दोगे। इस प्रकार कहने का आशय यह है कि श्रेष्ठ वस्तु के ग्राहक बहुत होते हैं तो स्वर्ण के खरीददार एक लाख होना चाहिए। यदि बीड़ी के खरीददार एक हजार हैं तो सोने के खरीदार एक लाख होने चाहिए और सोने से श्रेष्ठ हीरा होता है उसके ग्राहक और अधिक

होना चाहिए क्योंकि वह और श्रेष्ठ वस्तु है। उसे खरीदने वाले लोग बहुत कम होते हैं। यदि ऐसे कह दिया जाए जितनी संख्या पूरे भारतवर्ष में या विश्व में जैनियों की है उतने ही खरीददार पूरे विश्व में स्वर्ण और रत्नों के मिल पायेंगे। दुकान पर जाने वाले मिल जायेंगे किन्तु उसका असली उपभोग करने वाले उतने ही विश्व में लोग मिलेंगे जितनी संख्या जैन साधुओं की विश्व में है। श्रेष्ठता को प्राप्त करने वाले व्यक्ति बहुत कम होते हैं। आप जानते हैं कि मुझे सर्वश्रेष्ठ स्थान प्राप्त करना है, मैं उत्कृष्ट अवस्था प्राप्त करूँ चाहे किसी भी कार्य में हो। पढ़ने में आप जानते हो कि जिसके नम्बर 98 प्रतिशत या 99 प्रतिशत आये वह सर्वश्रेष्ठ कहलाता है, 100 प्रतिशत आये तो उसका कहना ही क्या है। जब वह श्रेष्ठ अवस्था है तो उस 99 प्रतिशत की अवस्था को प्रत्येक व्यक्ति (विद्यार्थी) प्राप्त नहीं करता। श्रेष्ठ अवस्था है तो श्रेष्ठ के ग्राहक तो बहुत होते हैं और सभी चाहते हैं कि मेरे नम्बर 99 प्रतिशत आयें किन्तु सभी के क्यों नहीं आते हैं। उसका कारण ये है कि सबका श्रम एक जैसा नहीं होता, सभी का भाग्य एक जैसा नहीं होता, सभी की अलग-अलग प्रकार की मान्यता होती है इसलिए उनका फल भी अलग-अलग प्रकार का होता है। तो जैन दर्शन भी श्रेष्ठ है इसे सभी दर्शनकार स्वीकार करते हैं कि जैन दर्शन विश्व का सर्वश्रेष्ठ धर्म है। इस धर्म का उल्लंघन आज तक कोई नहीं कर पाया। भगवान महावीर स्वामी को विश्व का महानतम वैज्ञानिक कहा गया है। अमेरिका के पुस्तकालय में उनका चित्र सबसे ऊपर टांग दिया गया है और लिख दिया है कि इस वैज्ञानिक की कोई भी बात खण्डित नहीं हुई और सभी की हो चुकी, उन सबके सिद्धान्त तो फेल हो गये किन्तु महावीर स्वामी

सर्वोदयी चिन्तन

संयम का अर्थ है स्वेच्छाचारिणी प्रवृत्ति पर नियंत्रण, आत्मानुशासन जब तक नहीं कर पाये तब तक अपने आप को पूर्ण संयमी मानना भूल है।

एक ऐसे वैज्ञानिक हुए उनकी बात कोई खण्डित नहीं कर सकता। महावीर स्वामी का जो सिद्धान्त है, उनके द्वारा प्रतिपादित जो नियम हैं वो किसी से सुने-सुनाए नहीं कह दिए हैं, किसी के रटे-रटाए नहीं कह दिए हैं, उन्होंने किसी के सिद्धान्त की चोरी नहीं की अपितु उन्होंने उन सिद्धांतों को अपनी आत्मा में प्रकट किया है, अपनी आत्मा में उगाया है। बाहर से छीना-झपटी धन की हो सकती है, वह दो नम्बर का कहला सकता है और जिसने अपनी आत्मा रूपी खेत में ही पैदा कर ली हो तो वह फसल दो नम्बर की नहीं कहलायेगी, इसलिए सभी व्यक्तियों पर टैक्स लग सकता है। चाहे कोई व्यापारी हो, कोई owner हो चाहे कोई भी हो सभी पर टैक्स लग सकता है, किन्तु किसान पर टैक्स नहीं है। क्योंकि वह श्रम कर रहा है, मेहनत कर रहा है। नौकरी करने वाले पर टैक्स लग सकता है भले ही वह परिश्रम करता है उसे भी टैक्स देना पड़ेगा। यदि तुम्हारी आय अधिक है तो, किन्तु किसान की आय पर टैक्स नहीं कितना भी कमायें। कहने का आशय यह है कि जिसने उस फसल को आत्मा में पैदा किया है तो उस पर कभी टैक्स नहीं लगता क्योंकि उसमें दो नम्बर की गुंजाइश कहीं नहीं रहती। भगवान् महावीर स्वामी ने अपने सिद्धांत स्वयं अपनी आत्मा में पैदा किए, उपजाये थे कहीं बाहर से लाकर नहीं डाले थे। भगवान महावीर स्वामी की दिव्य ध्वनि उनकी ही आत्मा रूपी गंगा से प्रवाहित हुई है, उन्होंने अपनी चेतना को ही गंगोत्री बना लिया है, उन्होंने बाहर के सिद्धान्तों को अपनी आत्मा पर थोपा नहीं है। इसलिए उनका सिद्धांत अकाट्य है, अकाट्य था और आकट्य रहेगा।

सर्वोदयी चिन्तन

बिना ब्रेक की गाड़ी, बिना लगाम का घोड़ा, अनुशासनहीन शासक, मूर्खता से युक्त नायक कभी भी नष्ट हो सकते हैं, उसी प्रकार आत्म नियंत्रण के बिना प्राणी का पतन अवश्यंभावी है।

महानुभाव,

भगवान् महावीर स्वामी के

सिद्धान्तों को जीवन में लाने वाला व्यक्ति अत्यन्त साहसी, अत्यन्त आस्थावान्, परिश्रमी, त्यागशील एवं समर्पित हृदय वाला होना चाहिए। यदि वह ऐसा नहीं है तो वह महावीर स्वामी के सिद्धान्तों को हृदयंगत नहीं कर सकेगा। जैनों की संख्या इसलिए कम है, जैन दर्शन का अनुसरण करने वाले कम हैं क्योंकि वह त्याग सिखाता है, और संसारी प्राणी राग में जीना चाहता है। किसी से त्याग की बात कहो तो त्याग करने से डरता है, किसी से कहो तुम ये वस्तु छोड़ दो तो वह वस्तु छोड़ना नहीं चाहता ग्रहण करना चाहता है। उससे कहो ''तुम ये पैन ले लो'' तो कहेगा लाओ। किसी से कहो तुम अपने पैन का त्याग कर दो तो कहेगा क्यों कर दें? हमारा पैन है। लेने के लिए तो तैयार हो जायेगा क्योंकि, अनादिकाल के संस्कार प्रत्येक प्राणी में पड़े हुए हैं। यदि एक छोटा-सा बालक भी हो और खिलौने से खेल रहा हो उससे खिलौना माँगो तो नहीं देगा और तुम्हारे पास खिलौना हो तो तुम बालक को दो वह लेने के लिए आ जायेगा। छोटा बालक भी जो कुछ नहीं जानता है, खिलौना लेने के लिए वहाँ से चलकर तुम्हारे पास आ जायेगा किन्तु अपने खिलोने को देगा नहीं, तुम छुड़ाने का प्रयास करोगे तो रोयेगा, मचल जायेगा और अपना खिलौना माँग करके ही छोड़ेगा, ऐसे नहीं मानेगा। ये संसारी प्राणी के संस्कार हैं, ग्रहण करने के संस्कार हैं, छोड़ने के संस्कार नहीं हैं। ऐसा कोई विरला महात्मा, विरला बालक मिलेगा जो छोड़ने की बात सोचे। उससे कहें-''भैया ये चीज दे दो'' और वह दे दे ऐसे बहुत कम मिलेंगे, बालकों को भी रुपये-पैसे दे दिये जायें तो वह मुट्ठी में बंद कर लेते हैं, छिपा लेते हैं कोई ले न जाए, बालकों के अंदर भी वह आसक्ति भाव पाया जाता है। तिर्यंचों के अंदर भी आसक्ति भाव

सर्वोदयी चिन्तन

पूर्ण संयम की प्राप्ति, कर्म भूमिज मनुष्य की पर्याय में ही संभव है, भोग भूमिज मनुष्य को नहीं। जो कर्म भूमि के मनुष्य बनकर भी संयम को अंगीकार नहीं करते, उनसे तो देश संयमी तिर्यंच श्रेष्ठ हैं।

पाया जाता है। महानुभाव! संसार के सभी प्राणी आसक्ति में जी रहे हैं। राग में जी रहे हैं, यदि उस राग और आसक्ति को थोड़ा कम करें तो मुझे लगता है जैन दर्शन अपने जीवन में फलित हो सकता है जबकि आसक्ति के कम न होने पर जैन दर्शन का वृक्ष आपकी आत्मा में फल नहीं दे सकेगा। वह धर्म जो तुम्हें आनंद न दे सके, आत्मा की अनुभूति न दे सके, जो संयम न दे सके वह दर्शन, वह ज्ञान नपुंसक है। उस ज्ञान को नपुंसक कहना चाहिए जो ज्ञान वैराग्य और संयम का उत्पादक नहीं होता है।

महानुभाव,

चारों गतियों में यदि कोई गति श्रेष्ठ कही है तो मनुष्य गति को श्रेष्ठ कहा है। कभी आपने सोचा? मनुष्य गति को श्रेष्ठ क्यों कहा? क्योंकि मनुष्य के पास बहुत सारा ज्ञान हो सकता है इसलिए, तुम्हारे पास क्या ज्ञान होगा, तुम्हारे पास तो पूर्ण श्रुत ज्ञान भी नहीं है। देवों के पास और नारकियों के पास अवधि ज्ञान होता है। तुम्हारे पास तो दो ही ज्ञान हैं। देवों के पास तीन-तीन ज्ञान होते हैं, तुम्हारे पास जो श्रुतज्ञान है वह भी अल्प है। जो देव सर्वार्थसिद्धि आदि के होते हैं वे सब द्वादशांग के पाठी भी होते हैं, तुम्हें तो चार पुस्तकों का ज्ञान भी नहीं है। तुमसे कह दिया जाए कि "रत्नकरण्ड श्रावकाचार" जो तुम्हारे आचरण का विषय है उसका मंगलाचरण ही सुना दीजिए तो नहीं सुना पाओगे, तुमसे कोई कहे हिन्दी की छहढाला ही सुना दीजिए नहीं सुना पाओगे, तुमसे कोई कहे अष्ट मूलगुण और बारहव्रतों के नाम ही सुना दीजिए, हो सकता है न सुना पाओ। ज्ञान की अपेक्षा से तुम श्रेष्ठ नहीं हो सकते। इस ज्ञान की अपेक्षा श्रेष्ठ नहीं है और जिस ज्ञान की अपेक्षा श्रेष्ठ हैं तो वह ज्ञान बिना संयम के प्राप्त नहीं हो सकता, दूसरी अपेक्षा से अपने आप को श्रेष्ठ कहें "महाराज जी! हमारे पास ऐसा बंगला है, बिल्कुल काँच के समान जहाँ पर मक्खी भी फिसल जाये इतना साफ है। बड़ा मजा आता है।

> **सर्वोदयी चिन्तन**
> संयम का अर्थ है कषायों रूपी सेनापतियों से युक्त मोह रूपी शत्रु राजा की इन्द्रिय विषयों में रमण/आसक्ति एवं अव्रतानुप्रवृत्ति रूपी सेना को रोकने के लिए मजबूत दुर्ग का निर्माण करना।

ऐसा बंगला क्या देवों के पास है? तुम्हारे पास क्या बंगला है, देवों के पास इतने रत्न आदि हैं कि वे पन्द्रह महीनों तक वर्षा करते हैं फिर भी उनके रत्नों में कमी नहीं आती, तीर्थंकर के जन्म से पहले, बारह योजन लम्बी और 9 योजन चौड़ी नगरी रत्नमय बना देते हैं फिर भी रत्नों की कमी नहीं आती और तीर्थंकरों का पूरा समोशरण रत्नों से बना देते हैं। एक सौ सत्तर समोशरण एक साथ बना दें फिर भी रत्नों की कमी नहीं आती, इतने रत्न उनके पास हैं, तुम्हारे पास क्या है? फिर भी तुम अपने आप को वैभव सम्पन्न समझो, इन काँच के मुकुटों को लगा कर के हम तो राजा बन गये। हम तो इन्द्र बन गये। यदि काँच का मुकुट भी मिल जाये लगाने के लिए पुनः भाव कुछ बढ़ जाते हैं वाह! हम तो मुकुट लगाये हैं, हमारे पास मुकुट है चाहे वह मुकुट कागज या कपड़े का ही हो, थोड़ी सी चमकनी उसमें लगा दी जाए बड़े खुश हो जाते हैं। अरे! इन्द्र आदि के मुकुट वे शाश्वत मुकुट होते हैं। वे मुकुट दिव्य मुकुट होते हैं, रत्नों से जड़ित और खचित होते हैं और तो क्या कोई तीर्थंकर, चक्रवर्ती कहे मेरा पूरा नगर रत्न का बन गया, मैं श्रेष्ठ हूँ। उनके असंख्यात योजन विस्तार वाले सभी विमान रत्नों के बने हैं, मिट्टी का तो वहाँ कोई काम नहीं है। ज्योतिषी देवों के विमान रत्नों से बने हैं। तुम्हारे पास क्या वैभव होगा? तुम अपने वैभव को देखकर इतना घमण्ड क्यों करते हो? महाराज जी? ''मैंने इक्कसीस हजार की बोली ली है'' ऐसा कोई इन्द्र कर सकता है क्या? क्या तुच्छ बुद्धि है? वही मेंढक जैसी बुद्धि, तो कहता है मैंने पूरे संसार को देख लिया, पृथ्वी गोल है, मैंने कुओं का चक्कर लगा लिया। वाह् अरे संसार को देख लिया कोई ऐसा कर सकता है क्या? उससे कहा जाए भैया! तुम कुए में पड़े हो तुम्हें मालूम नहीं संसार कहते किसे हैं? संसार कितना बड़ा

है? तुम्हें तो मालूम नहीं है। कहने का आशय ये है कि तुम वैभव आदि की अपेक्षा से भी इन्द्र आदि से श्रेष्ठ नहीं हो सकते। तो फिर किसकी अपेक्षा! सौन्दर्य की अपेक्षा से? महाराज जी यहाँ लड़कियाँ कुछ तो इतनी सुन्दर होती हैं जो कि देवांगनाओं को भी मात कर देती हैं? क्या बतायें उनके सौंदर्य को देखकर के लोग मोहित हो जाते हैं, बहुत सुन्दर होती हैं, ऐसी सुन्दर देवियाँ होती हैं क्या? उन देवियों के सामने तो ये कन्यायों कुछ नहीं हैं, दिग्कन्याओं का जो सौंन्दर्य होता है, या स्वर्ग की देवांगनाओं का जो सौन्दर्य होता है, पूर्ण आंगोपांग समचतुरस्त्रसंस्थान, उनका सौन्दर्य जो रूप होता है वह मनुष्यों का नहीं हो सकता। मनुष्यनी का रूप-सौन्दर्य तो क्षण-क्षण में गिरता रहता है, देवांगना का सौन्दर्य क्षण-क्षण में विलीन नहीं होता अपितु छः महीने आयु शेष रह जाने पर ही मुरझाता है और उनका सौंदर्य जन्म लेने से मृत्यु के छः महीने पूर्व तक ज्यों का त्यों रहता है। कहीं भी सिकुड़न नहीं आती, वृद्धत्व नहीं आता, रोग नहीं आता और कोई वेदना नहीं होती। तो उनके सौन्दर्य के सामने आज मनुष्यों का रंग लाल, नीला, पीला, हरा हो जाता है पंचरंगी मनुष्य, आज का मनुष्य गोरा नहीं है, पूरा काला भी नहीं है। वो नीला भी नहीं है, हरा भी नहीं है पचरंगी है। जितने भी मनुष्य हैं सब पचरंगी हैं। **''पचरंगी हैं इसलिए बदरंगी हैं''** यदि अलग-अलग होता तो अलग-अलग महत्व होता तो इस सौंदर्य की अपेक्षा से भी मनुष्य श्रेष्ठ नहीं कहा जाता। धन से श्रेष्ठ नहीं, ज्ञान से श्रेष्ठ नहीं, रूप सौंदर्य से श्रेष्ठ नहीं तो किससे श्रेष्ठ हैं? अब आया समझ में महाराज जी मानव जैसे पहलवान होते हैं वैसे देव नहीं, एक मुक्का मारें तो वे व्यक्ति को धराशायी कर दें, यदि वे वृक्ष की टहनी पकड़ लें तो शाखा तोड़ दें और छोटे-छोटे पेड़-पौधों को तो बायें हाथ से उखाड़ कर फेंक दें। बहुत ताकत होती है। महाराज जी और तो क्या पहले तो ऐसे-ऐसे मनुष्य भी हो गये कि जिन्होंने रुपये को चुटकी से मसल दिया सुनने में तो आया है कि उसने गेहूँ लेकर मींड़

(मसल) दिए उसने कहा तुम्हारा गेहूँ सड़ा हुआ है यह नहीं लेंगे तो वहाँ के राजा ने कहा अपना रुपया तो दिखाओ कैसा है? उस समय चाँदी का सिक्का लेकर मसल दिया तुम्हारा पैसा भी सड़ा है तुम्हारे सड़े पैसे को हम नहीं ले सकते, वह आश्चर्यचकित हो जाता है कि यहाँ के व्यक्ति में इतनी ताकत होती है जो कि चाँदी के सिक्के को मसल सकता है। अथवा चक्रवर्ती की पटरानी जब चौक पूरती है मुनि महाराज के आहार के लिए अथवा किसी मांगलिक कार्य के लिए तो वह रोली या चावल से नहीं पूरा जाता, आटे से नहीं पूरा जाता वह हीरे को हाथ से मसलती जाती है और चौक पूरती जाती है और तुम्हें एक चॉक ही दे दिया जाए तो हो सकता है आप न मसल पायें, इतनी ही तुम्हारी शक्ति है, किन्तु फिर भी यह शक्ति कुछ भी नहीं है, that is nothing उस इन्द्र की शक्ति के सामने। इन्द्र की शक्ति इतनी है कि यदि वह चाहे तो जम्बूद्वीप को पलटा करके रख सकता है, एक लाख योजन के विस्तार वाले जम्बूद्वीप को जिसमें इतना बड़ा सुमेरु पर्वत है पूरे जम्बूद्वीप को जैसे किसी थाली को पलट देते हैं वो ऐसे पलट भी सकता है। आपकी कितनी शक्ति है? कहने का आशय यह है कि देवों में इतनी शक्ति है कि उस अपेक्षा से भी तुम देवों से श्रेष्ठ नहीं को सकते। अब कौन-सी चीज है जिससे आप श्रेष्ठ हो सकते हैं? हमारे पास अच्छे-अच्छे वस्त्र हैं, आभूषण हैं। क्या सड़े से वस्त्र चार दिन पहनें तो गंदे हो जायें, पहने तो फट जायें और उन पर थेगड़ा लगाने पड़ें, कैसे वस्त्र? उनके वस्त्र तो ऐसे होते हैं कि जो पोशाक एक बार पहन ली जीवन में कभी फटेगी ही नहीं, कभी छोटी ही नहीं होगी, सिलाई खुलेगी ही नहीं, उधड़ेगी ही नहीं, थोड़ी टाइट पेंट पहनकर आये थोड़ा बैठे कि पीछे से फट गया ऐसे तुम्हारे वस्त्र तो इन वस्त्र और आभूषणों

सर्वोदयी चिन्तन

उत्तम संयम ही आत्मा का स्वभाव है, गुण है, धर्म है जो इसे प्राप्त करने में प्रयासरत है। वे पुरुष भी उत्तम कहलाते हैं।

के माध्यम से भी तुम अपने आपकी श्रेष्ठता साबित नहीं कर सकते। इन्द्रों के दिव्य आभूषण होते हैं, दिव्य वस्त्र होते हैं। महानुभाव! इन सभी बातों से मनुष्य श्रेष्ठ नहीं हो सकता देव आदि से, या चारों गति के जीवों से, तो फिर श्रेष्ठ किस प्रकार हो सकता है? श्रेष्ठता का एक ही कारण है वह उपाय है ''संयम''। आप लोग कहते हैं–

''सुरग नरक पशुगति में नाही''

चाहे स्वर्ग और नरक के देव मिलकर भी आ जायें, वे संयम नहीं धारण कर सकते, वे किसी भी देव को संयमी नहीं बना सकते, असंख्यात नारकी भी मिलकर संयम को धारण नहीं कर सकते और अनंतानंत तिर्यंच मिल के भी सकल संयम को अंगीकार नहीं कर सकते, तीनों गति के लोग मिल जायें तो भी संयम अंगीकार नहीं कर सकते।

सर्वोदयी चिन्तन

धन्य हैं वे महापुरुष जिन्होंने सम्पूर्ण कर्म रूपी शत्रुओं को नष्ट करने के लिए ज्ञान कृपाण व संयम ढाल को अंगीकार कर लिया है, वे ही इस युग के भगवान हैं।

इसलिए मनुष्य गति श्रेष्ठ है, मनुष्य गति में ही संयम धारण कर सकते हैं। वह संयम जिसने भी धारण कर लिया है वह मनुष्य तो चारों गतियों में श्रेष्ठ होता है और जिसने संयम धारण नहीं किया है तो वह मनुष्य श्रेष्ठ कैसे हो सकता है? श्रेष्ठ हो सकता है क्या? नहीं, वह श्रेष्ठ नहीं हो सकता, यदि तुमने देशव्रतों को भी स्वीकार नहीं किया है तो तुम तिर्यंचों से भी गये बीते हो, पशुतुल्य हो क्योंकि तुमने संयम को अंगीकार नहीं किया तब तुममें और पशु में क्या अंतर रह गया फिर जैसे पशु वैसे ही तुम।

''मनुष्य रूपेणमृगाश्चरन्ति''

मनुष्य के रूप में ऐसा मानना चाहिए, वे इस पृथ्वी के भार स्वरूप हैं।

"A man without self restrained has been compare to an animal" जो मनुष्य संयम से रहित है, ऐसा मनुष्य एक पशु से

तुलना करने योग्य है और जिसके पास संयम है वह इन्द्रों से भी बढ़कर है, क्योंकि संयमी के चरणों में इन्द्र भी सिर झुकाता है, माथा टेकता है, अहोभाग्य मानता है। दूसरा पक्ष ये भी है ''जिसे संयम की बराबरी भी कह सकते हैं''

सर्वोदयी चिन्तन

संसार में ऐसा कौन विद्वान् होगा जो संयमी महापुरुषों की श्रद्धा, विनय, भक्ति, सेवा, अर्चना न करे अर्थात् कोई नहीं। जो पुरुष ऐसा नहीं करता है, वह मूर्ख, मिथ्यादृष्टि, दीर्घ संसारी, अनंत दुःखों का भोक्ता ही होगा, विद्वान् नहीं।

उसके माध्यम से भी आप चारों गतियों में श्रेष्ठ कैसे हो सकते हो। बिना मुनि बने, बिना संयम अंगीकार किए तुम चारों गतियों में श्रेष्ठ हो सकते हो? देशव्रत तो पशु भी धारण करके सोलहवें स्वर्ग तक जा सकता है और तुम देश संयम से रहित हो तो पशु से भी गए-बीते हो। आचार्य भगवन् कुन्दकुन्द स्वामी ने समयसार की कई गाथाओं में कहा है कि मनुष्य तीनों गतियों में बिना मुनि बने श्रेष्ठ नहीं हो सकता है। बुन्देलखण्ड के लोग कहते हैं-

''**जा सेवा को सुरपति तरसे सो सेवा हम पाये,**'' दिगम्बर साधु को आहार दान तीन गति के जीवों में से कोई नहीं दे सकता, क्योंकि पशु आवास दान दे सकता है। दान तो दे सकता है सुअर ने भी आवास दान दिया प्रसिद्ध हो गया तुम क्या आवास दान दोगे, ठहरने के लिए धर्मशाला दोगे। ''सुअर ने मुनि महाराज को गुफा में स्थान दे दिया, कोई तुम पर वार नहीं करेगा, मैं तुम्हारी रक्षा करूँगा।'' आहार दान मनुष्य के अलावा और कोई नहीं दे सकता। कर्मभूमि के मनुष्य ही दे सकते हैं। मनुष्य और स्त्रियाँ वह भी, उच्च कुल में जन्म लेने वाले, सांगोपांग अवस्था के साथ, असहनीय रोग से पीड़ित न हो और उसके अलावा भी धर्म के संस्कार उनके अंदर हों, नवधा भक्ति हो, दाता के सात गुण हों तो दे सकते हैं अन्यथा नहीं दे सकते। तो यह भी एक ऐसी सेवा है जिसे प्राप्त करके अपनी श्रेष्ठता सिद्ध की जा सकती है।

महानुभाव,

संयम की परिभाषा करते हुए आचार्यों ने कहा कि संयम एक आग का दरिया है। आग का दरिया तैरना बहुत कठिन होता है। संयम तलवार की धार है, संयम लोहे के चने चबाना है, संयम ऐवरेस्ट की चढ़ाई है, संयम स्वयं के कन्धे पर खड़ा हो जाना है। कोई भी कलाकार हो वह अपने कंधे पर खड़ा नहीं हो सकता, दूसरे के कंधे पर खड़ा हो सकता है, सिर के बल खड़ा हो सकता है, हाथ के बल खड़ा हो सकता है। कोई भी नट या कलाकार अपने कंधे पर खड़ा नहीं हो सकता। संयम का आशय है इतनी कठिन साधना कि अपने कंधों पर ही खड़ा हो जाना। संयम एक ऐसी तलवार है जो इस आत्मा में पैदा होती है, जो आत्मा संयमी हो जाती है वह ऐसी तलवार बन जाती है कि आत्मा के द्वारा ही बांधे गये कर्मों को काट देती है, क्षय कर देती है। बिना संयम के इस आत्मा से कर्मों को नहीं काटा जा सकता। संयम ब्रेक है, कंट्रोल है, संयम घोड़े की लगाम है और जिसके पास लगाम नहीं है ऐसा व्यक्ति घुड़सवारी करने वाला सुरक्षित पहुँच सकता है और जिसके पास लगाम नहीं है ऐसा व्यक्ति बहुत बड़े खतरे को मोल ले लेता है। वह सुरक्षित अपने गन्तव्य पर जो उसका उद्देश्य है वहाँ तक नहीं पहुँच सकता। अंधकारमय जीवन में संयम एक सूर्य के समान है जिसके उदित होते ही असंयम का अंधकार नष्ट हो जाता है, संयम चंद्रमा की शीतल चाँदनी के समान है जिसके प्रकट होते ही भवाताप मिट जाता है, संयम एक ऐसी चाबी है जिसके माध्यम से आन्तरिक सुख और परम शांति को प्राप्त कर सकता है। एक आंतिरिक आनंद होता

सर्वोदयी चिन्तन

आत्मानुशासन करने वाला ही पर का अनुशासक हो सकता है। जो स्वयं स्वेच्छाचारी है वह अनुशासक बनने के योग्य नहीं, यदि बनता है उससे उत्थान का नहीं, पतन का मार्ग ही वृद्धिगत होगा।

है, अंतरंग से उत्पन्न होता है जो अन्तहीन, स्वाधीन, शाश्वत, अपना ही होता है। एक बाहरी आनंद होता है जिसे आप फन, जोक के माध्यम से, चुटकुले आदि के माध्यम से प्राप्त कर लेते हैं। वाह! मजा आ गया। बाहर के आनंद को तो कोई भी छीन सकता है, यदि तुम्हें स्वर की लहरियों में आनंद आ रहा है, कोई आये तुम्हारा आनंद बंद कर दे तो वह आनंद छिन गया। तुम हँसी-मजाक कर रहे हो कोई आकर तुम्हारे गाल पर एक तमाचा लगा दे तो वह आनंद छिन जायेगा। तो यह बाहर का आनंद होता है जिसे कोई भी छीन सकता है किन्तु आंतरिक आनंद परम शांति का है। जब गर्मी लगती है पंखे से शांति मिली तो ये आपकी बाहरी शक्ति हुई, उसे परमशक्ति नहीं कह सकते क्योंकि ये सर्वश्रेष्ठ नहीं है, उत्तम शक्ति नहीं है। उत्तम या सर्वोत्तम वही हो सकती है जिसे कोई छीन न सके, पराधीन न हो। तो संयम से वह शान्ति प्राप्त हो सकती है। इसलिए संयम को नीतिकारों ने अपनी नौका की पतवार कहा, जो आपके पूरे जीवन की पतवार है, नाव है और संसार एक समुद्र के समान है। उस संसार रूपी समुद्र में आपका जीवन एक नौका है। उस जीवन रूपी नौका की यदि संयम रूपी पतवार नहीं है तो पूर जीवन आपका व्यर्थ चला जायेगा, आपकी नौका डूब जायेगी, आपका जीवन डूब जायेगा फिर पुनः उस सागर से उबर नहीं पाओगे।

महानुभाव,

पहले यह देखना है जिस वाहन में बैठकर यात्रा कर रहे हैं उसका ब्रेक है या नहीं। यदि तुमसे कोई कहे भैया तुम बैठ जाओ हम तुम्हें यात्रा करायेंगे। अपनी गाड़ी से यात्रा करायेंगे, भले ही हम यात्रा न करें तुम्हें यात्रा करायेंगे। ठीक है हम तुमसे सहमत हैं हम तुम्हारी गाड़ी से चले जायेंगे। भैया एक बात है मेरी गाड़ी में ब्रेक नहीं है, तो क्या कहोगे– हमें बिना ब्रेक की गाड़ी में यात्रा नहीं करना है, हमें अपनी जिन्दगी बहुत प्रिय है। अभी जिन्दगी से डरे

नहीं है अभी बहुत जीना है, बहुत करना है। इसलिए तुम ब्रेक के बिना गाड़ी में बैठना पसंद नहीं करोगे। चाहे कोई भी तुमसे कहे कि हम तुम्हें 10,000 रुपये देंगे, स्पीड से गाड़ी चलायेंगे और ट्रैफिक वाले सड़क पर गाड़ी चलायेंगे तो वह कहेगा भैया जब कफन बाँध के आयेंगे तब गाड़ी में बैठेंगे, ऐसे तो नहीं बैठ पायेंगे। कहने का आशय ये है कि बिना ब्रेक की गाड़ी खतरे से बाहर नहीं है। यदि उसमें बैठ गए तो उसमें पल-पल, पग-पग पर खतरा है। कहीं भी गिर सकती है और बिना ब्रेक की गाड़ी हो, ड्राइवर अनाड़ी हो जो चलाना ही नहीं जानता है, बस उतना जानता है इससे स्पीड बढ़ती है और वह चालू करके गाड़ी को ये नहीं जानता बंद कैसे की जाती है। कभी-कभी बड़ी मुकिश्ल हो जाती है जब कोई बालक स्कूटर चलाना सीखते हैं, मोटर साइकिल चलाना सीखते हैं और चलाते वक्त कभी स्पीड बढ़ा देते हैं, आगे चली जाती है बेचारे भूल गए कि बंद कैसे करें? इस प्रकार–

''एक व्यक्ति के साथ ऐसा ही हुआ जब उससे बंद करना नहीं आया तो उसने क्या किया? वह अपने स्कूटर को आगे एक दीवार के पास ले जाता है, और दीवार से टकरा देता है और गिर पड़ता है, चलो अब तो बंद होगी। जब से कह रहे हैं बंद हो जा, बंद हो जा, बंद हो नहीं हो रही है।' ऐसे ही–

एक किसान था उसके गाँव में कभी लाइट नहीं आयी तो जब उसके घर में लाइट लगी तो उसने रात्रि में अपना बल्ब जला लिया किन्तु उसे ये नहीं मालूम था बंद कैसे किया जाए। अब वह उसे फूँक मारे, फूँक मारने वह क्यों बंद होता। उसने मना भी किया देखो मुझे नींद आ रही है अब तुम बंद हो जाओ। दो बार कहा, चार बार कहा, दस बार कहा बंद नहीं हुआ। देखो अब मुझे गुस्सा भी आ रहा है अब बंद हो जाओ, फिर भी नहीं हुआ, देखो मैं तुम्हें गालियाँ भी दूँगा फिर भी नहीं बंद हुआ, देखो मैंने डंडा उठाया हाथ में, फिर भी

नहीं हुआ तू ऐसे नहीं मानेगा तुझे अब हम समझ गए। लातों के भूत बातों से नहीं मानेंगे उठाया एक लट्ठ और कसकर बल्ब में मारा, बल्क फूट कर नीचे आ गया बंद हो गया। हम जानते थे तुम ऐसे बातों से नहीं मानोगे अब कैसे मान गये। और वहीं किसान फिर देखता है, ट्रांजिस्टर। उसने शुरू किया वह बज रहा था जब उसे सुनते-सुनते बोर हो गया वह सोच रहा कि अब बंद हो जाए, अब वह क्यों बंद होता? किसान ने बहुत समझाया, प्रेम से पुचकारा, अब हम सुनना नहीं चाहते हैं, तुम बहुत अच्छे हो, इतना अच्छा गाना सुनाते हो देखो कितना अच्छा संगीत है, खूब प्यार से पुचकार के कहा– देखो गुस्सा नहीं होना अब बाद में कल सुना देना 'हैं', अब नहीं सुनना है तुमको, अब तुम्हें कौन सुनने वाला। वह बजता रहा, बजता रहा, अब उसे गुस्सा आया तो उसने उस ट्रांजिस्टर को उठाकर जमीन में दे मारा। मैंने कहा था, ऐसे नहीं मानेगा ये। कहने का आशय है कि उस गाड़ी में बैठने से घबराते हैं जिसमें मात्र एक शरीर नष्ट होता है, किन्तु उस गाड़ी में बैठकर जीवन भर यात्रा करते हैं जिससे तुम्हारी आत्मा भी नष्ट हो रही है। महानुभाव! अपनी गाड़ी में ब्रेक लगवा लें, जब तुमने इतनी कीमती गाड़ी ली है तो उसमें ब्रेक कितना लगेगा, उसमें से दो प्रतिशत। जितने की गाड़ी की कीमत के 2 प्रतिशत में ब्रेक लग जायेगा किन्तु दो प्रतिशत पैसा तुम नष्ट करना नहीं चाहते हो। आश्चर्य है! तुमने कितना पुण्य किया है, कितनी साधना की होगी कि आज इस मनुष्य पर्याय को प्राप्त कर लिया, किन्तु प्राप्त करके ब्रेक नहीं लगा पा रहे फिर बाद में एक्सीडेंट हो जायेगा तो अस्पताल में भर्ती होना पड़ेगा। वहाँ पड़े रहेंगे। अच्छा यही होगा कि पहले से सावधान हो जायें। आचार्य पूज्यपाद स्वामी कहते हैं 'अच्छा है नहाने की अपेक्षा से कीचड़ न लपेटें, कीचड़ लपेटे और फिर नहायें, उसकी अपेक्षा उस कीचड़ में पैर ही न डालें ये बहुत अच्छा है।

''त्यागाय श्रेयसे वित्तमवित्तः संचिनोति यः।

स्वशरीरं स पंकेल स्नास्यामिति विलम्पति॥

वह व्यक्ति मूर्ख होता है जो ये कहता है मुझे अभी स्नान करना है। स्नान करना है तो क्या करें? नाली में जाकर लोट जायें। स्नान तो करना ही है, ''नहीं'' यदि ऐसा व्यक्ति करता है तो वह मूर्ख है क्योंकि उसे स्नान करना है, इसलिए वह नाली में लोट जाता है। ''पहले रोग पैदा करो और फिर दवाई खाओ''। पहले तो आपको लगा कि सर्दी भी हो रही थी फिर भी जूस आ गया, पीलो मिल रहा है तो। जूस तो पी लिया, जुकाम हो गया अब डॉक्टर के पास जा रहे हैं। 'मुझे जुकाम हो गया' क्या हो गया, जूस पी लिया था, पसीना भी आ रहा था, पानी पी लिया, ठण्डाई पी ली शिकंजी भी पी ली। पहले से थोड़ा-सा जुकाम हो भी रहा था। डॉक्टर कहेगा अभी तो जुकाम ही कम है, निमोनिया भी हो सकता है ज्यादा हुआ तो पुनः आपको भर्ती होना पड़े तो उससे अच्छा है जूस को न पीओ, उससे पहले ही बच जाओ।

सर्वोदयी चिन्तन

संयम सकल सुखों की जननी है, समस्त दु:खों को जलाने के लिए अग्नि के समान है, संसार रूपी वृक्ष को काटने के लिए कुल्हाड़ी के समान है।

संयम का आशय है कि आप अपनी सुरक्षा कर लें। आप अपना बचाव कर लें और बचाव करने का वह मार्ग संयम है। वह मार्ग है यम, नियम आदि के माध्यम से अपनी आत्मा को सुरक्षित कर लेना। संयम का शाब्दिक अर्थ है–

''सं-समीचीन, यम-जीवनपर्यंत के लिए, लिये गये व्रत''

''आपने जो समीचीन व्रतों को ग्रहण किया, जो यथार्थ व्रत हैं, जिनसे आपकी जिन्दगी पवित्र हो सकती है, शुद्ध हो सकती है ऐसे व्रतों को आपने अंगीकार कर लिया तो वह वास्तव में संयम कहलाता है। ''अथवा'' दूसरे शब्दों में–

यम–जो लोक व्यवहार में मृत्यु दूत कहा जाता हैं

सं–संहार।

उस यम का संहार करने के लिए जो हाथ में उपकरण या अस्त्र-शस्त्र ग्रहण कर लिया जाता है वह संयम कहलाता है। यम का संहार करने के लिए संयम ही समर्थ है और कोई यम का संहार करने में समर्थ नहीं है। संयम आत्म का स्वभाव है। लोग कहते हैं कि संयम तो सांसार का कारण है। ''नहीं'' ऐसा कहने वाले व्यक्ति अभी संसार में मिथ्यात्व में डूब रहे हैं। सात तत्त्वों में संयम संवर तत्त्व भी है। आप कहते भी हैं–

''पाँच महाव्रत समिति गुप्ति कर वचन काय मन को।
दस विधि धर्म परीषह बाईस, बारह भावन को॥
ये सब भाव सतावन मिलकर आस्रव को खोते।
स्वप्न दशा से जागो चेतन कहाँ पड़े सोते॥''

ये सतावन भेद संवर के हैं ये ही संयम है, पाँच महाव्रत, तीन गुप्ति, पाँच समितियाँ, ये ही संयम है, व्रतों का पालन करना संयम है। ये संयम ही संवर तत्त्व है, संयम ही निर्जरा तत्त्व है और परम्परा से संयम ही मोक्ष तत्त्व है। प्राणी अज्ञानी है। बहुत बड़ी भूल कर रहे हैं अपनी जिन्दगी को छल रहे हैं। जो कहते हैं कि संयम संसार का कारण है संयम तो आस्रव तत्त्व है, संयम तो बंध तत्त्व है और आश्रव, बंध संसार का कारण होता है जो ऐसा कहते हैं वे अपने जीवन के साथ खिलवाड़ कर रहे हैं, वे साधर्मी का अहित कर रहे हैं। उन्हें अपनी भाषा को सुधार लेना चाहिए। संयम कभी संसार का मार्ग नहीं हो सकता, संयम कभी संसार में डुबोने वाला नहीं हो सकता है। यदि अमृत मार दे तो क्या जिन्द जहर पीकर होगे? ''नहीं'' अमृत मारने वाला नहीं हो सकता, मारने वाला तो जहर होगा, अमृत तो जिलाता है। महानुभाव! वह संयम तुम्हारे जीवन में भी फलित हो, उसके

> **सर्वोदयी चिन्तन**
> जिसने अपनी आत्मा को वश में कर लिया, वह दूसरे प्राणियों को वश में करने की इच्छा नहीं रखता। दूसरे जीवों को अपने अधीन वही करना चाहता है जो स्वयं को नियंत्रित नहीं करता है।

सूरज की कुछ किरणें तुम्हारे ऊपर आवें। किरणें आने का आशय है तुम्हारे जीवन में अणुव्रत ही आ जायें, श्रावक के व्रत आ जायें उत्तम संयम धर्म की बात तो बहुत ऊँची है। उत्तम संयम धर्म क्या किसी असंयमी के जीवन में हो सकता है? उस उत्तम संयम धर्म को ऐसा कहें 'संयम का फल' है। जिसके पास संयम का वृक्ष ही नहीं, बीज ही नहीं तो क्या उसे फल की प्राप्ति होगी। उत्त्म संयम धर्म का आनन्द संयमी ही ले सकता है, असंयमी कभी आनंद नहीं ले सकता। महानुभाव! संयमी की बात तो संयमी ही जान सकता है। जैसे विद्वान् की बात को विद्वान् ही जान सकता है।

संयमी की तपस्या को साधक ही जान सकता है, असंयमी नहीं जान सकता। असंयमी संयम के गीत गा सकता है लेकिन संयम के आनंद को नहीं पा सकता। इसलिए संयम के गीत गाना अलग बात है और संयम को प्राप्त करना अलग बात है।

''सुख संयम से होत है, मात्र ज्ञान से नाहीं।
विषय भोग सुख ना मिले, कुँवारी गीतन गाहीं॥''

क्योंकि संयम की अनुभूति, सुख की अनुभूति संयम के माध्यम से होती है। असंयमी संयम की लम्बी-चौड़ी व्याख्या भी कर दे, खूब उपदेश भी दे दे, असंयमी विद्वान् गद्दी के ऊपर लम्बे-चौड़े भाषण देते हैं, वे खूब संयम की बात करते हैं किन्तु उनके जीवन को देखेंगे तो असंयम से पूरा भरा मिलेगा। उनकी कोई वजनदार बातें नहीं होती हैं। सुख-शान्ति की खूब लम्बी-चौड़ी गाथा कहने से सुख नहीं आता है। सुख की अनुभूति संयम से होती है, मात्र ज्ञान से नहीं होती है। कैसे नहीं हो सकती? किसी कवि ने दृष्टांत दे दिया- ''यदि कोई कुवाँरी कन्या विषयभोगों की चर्चा करे, विषयभोगों के गन्दे-गन्दे गीत गाये और उन बातों का चिन्तवन करे तो सुख की अनुभूति नहीं होगी।''

महानुभाव!

कहने का आशय केवल यहाँ इतना है यदि आप संयम को ग्रहण

कर लेते हैं तो आप चेतना के स्वभाव को, निधि को प्राप्त कर सकते हो। यदि आप ऐसा नहीं कर पाये तो आपका किया हुआ सब व्यर्थ में ही चला जायेगा। उससे कोई भी लाभ नहीं है, कितना भी करें। जिसने अपनी आत्मा पर अनुशासन नहीं किया, ऐसा व्यक्ति सब कुछ कन्ट्रोल करने के उपरांत भी कुछ नहीं कर पाता। इसलिए अपनी इस नीति को बदल दें जो नीति चार्वाक की बनी हुई है। जैनियों में भी चार्वाक मत को मानने वाले हो सकते हैं, चार्वाक मत का सिद्धान्त होता है।

'यावद् जीवं सुखं जीवेत् ऋणं कृत्वा घृतं पिबेत्।
भस्मी भूतस्य देहस्य, पुनरागमनं कुत:।।'

सर्वोदयी चिन्तन
संयम के लिए संसार के सम्पूर्ण पदार्थों को छोड़ा जा सकता है किन्तु संयम को किसी के लिए भी नहीं छोड़ा जा सकता।

जब तक तुम्हारा जीवन है, सुख से जीयो और खूब घी पीओ, खूब मस्ती छानो घर में न हो तो कर्ज लेकर पीओ। जब ये शरीर नष्ट को जायेगा तो आत्मा कहाँ से आयेगी। वे मानते हैं शरीर ही आत्मा है आत्मा ही शरीर है यदि मेरा शरीर खूब मोटा-तगड़ा हो गया तो मानते हैं कि मेरी आत्मा खूब मोटी हो गयी। यदि इन्द्रियाँ, शरीर पुष्ट हो जाता है तो मानते हैं मेरी आत्मा संतुष्ट हो गई किन्तु ऐसा नहीं है। शरीर की पुष्टि से आत्मा की पुष्टि नहीं होती, शरीर के पोषण से आत्मा का पोषण नहीं होता अपितु उल्टा है, आत्मा के पोषण से नहीं आत्मा के शोषण से शरीर की पुष्टि होती है। इसलिये ज्ञान की प्राप्ति भी संयम के लिए की जाती है। आचार्य शर्ववर्म कातन्त्र रूप माला में कहते हैं-

संयमाय श्रुतं धत्ते, नरो धर्माय संयमं।

संयम के लिए ही व्यक्ति श्रुत ज्ञान को प्राप्त करता है और संयम मनुष्य धर्म के लिए स्वीकार करता है।

धर्मं मोक्षाय मेधावी, धनं दानं च भुक्तये।

सर्वोदयी चिन्तन
दूसरों के कान पकड़ने की बजाय स्वयं की जीभ पकड़ना अतिश्रेष्ठ है, यदि अपनी इन्द्रियाँ नियंत्रण नहीं रख सकते तो तुम जीवन में संयम का रसास्वादन नहीं ले सकते।

धर्म को मोक्ष के लिए स्वीकार करता है। ये तो साधु की बात कह दी अब श्रावक की बात कह रहे हैं। श्रावक धर्म धारण नहीं करता धन धारण करता है। वह सोचता है मैं धन से धन्य हो जाऊँ तो आचार्य शर्ववर्म यहाँ कह रहे हैं कि तुम धन से भी धन्य हो सकते हो। यदि वह धन आपका दान के लिए है और स्वयं के भोग के लिए है अथवा-

''धनं दानं च मुक्तये'

यदि वह धन दान के लिए है, मुक्ति (त्यागने) के लिए है तो आप धन के माध्यम से भी मुक्ति को प्राप्त कर सकते हो। महानुभाव! कहने का आशय ये है संयम हमारे जीवन में कैसे फलित हो? महाराज जी! हम उत्तम संयम धर्म को प्राप्त नहीं कर सकते तो कहाँ से ग्रहण करना प्रारंभ करें? आचार्य कुंदकुंद स्वामी जी ने चारित्र पाहुड़ में चारित्र/संयम के दो भेद किये- 1. देश संयम, 2. सकल संयम।

जब सकल संयम को स्वीकार करने में आप असमर्थ हैं तो पुनः देशसंयम की ओर कदम बढ़ाना शुरु करें। पाँच अणुव्रतों को अंगीकार करना चाहिये, सात शील के भेदों को अंगीकार करना चाहिये, श्रावक की ग्यारह प्रतिमाओं को यथायोग्य धारण करना चाहिये, ये देशसंयम कहलाता है। ये सूरज की एक किरण है, संयम का सूर्य नहीं।

'देशव्रत और कुछ नहीं सुबह का नाश्ता है,
इसका परम्परागत मोक्ष से सीधा वास्ता है।
जो देश संयम को अंगीकार कर लेते हैं,
उनके लिए ही खुल पाता है मोक्ष का रास्ता है।।'

यदि आप पूर्ण खुराक प्राप्त नहीं कर पाते तो नाश्ता ही प्राप्त कर लें, कई लोग चाय के माध्यम से ही पूरा दिन पार कर जाते हैं। यदि तुम अपने जीवन में संयम की पूर्ण खुराक नहीं प्राप्त कर पा रहे हो, तो चलो जितना मिल जाए उतना सही और पुनः उसे जीवन में अंगीकार करके उस देश संयमी रूपी नाश्ता से आपका पूरा जीवन पार हो सकता है। तुम यहाँ से अभी देव गति के सुखों को प्राप्त कर सकते हो। पुनः कालान्तर में सकल संयम को अंगीकार करके मोक्ष भी प्राप्त कर सकते हो। किन्तु यह प्रवृत्ति मनुष्यों में दिखाई नहीं देती वह तो पाँचों इन्द्रियों के विषय में इतना आसक्त हो गया है, जब देखो तब वह किसी न किसी इन्द्रिय के विषय की पूर्ति करने में लगा है, अपने मन को भी वह जहाँ चाहता है वहाँ ले जाता है और संतुष्ट हो जाता है। उसका मन विषयों की चाहना को, प्राप्त करके संतुष्ट हो जाता है।

'काय छहों प्रतिपाल, पंचेन्द्रिय मन वश करो।
संयम रतन संभाल, विषय चोर बहु फिरत हैं।।'

यदि तुम्हारे पास 10,00,000 रुपये हों और तुम्हें यात्रा करनी हो तो तुम्हें पचास लोग समझायेंगे– 'भैया' सावधान रहियो, आपकी जेब न कट जाए, कुछ हो न जाए, और तुम भी सावधान रहते हो, ग्रुप में चलते हो कहीं कुछ हो न जाए, सुरक्षा के लिए बड़ा इंतजाम कर लेते हो। अब तो दिन-दहाड़े बैंकों की लूट-पाट, बड़ी कंपनियों की लूटपाट हो जाती है। कहने का आशय ये है उस संयम को लूटने वाले लुटेरे इस पंचम काल में बहुत से पैदा हो गये हैं, मुझे लगता है चतुर्थ काल में पंचेन्द्रिय के विषय शायद कम होंगे। आज के पंचम काल में तो उसने ऐसा साम्राज्य जमा लिया है, उसकी भौतिकता का पर्दा, उसकी चकाचौंध जब आँखों में पड़ती है, तो अंधे के समान होकर के अपनी प्रवृत्ति करने लगते हो और त्रसकायिक जीवों की हिंसा भी करने लगते हो, फिर नहीं सोच पाते

कि इसके माध्यम से कितनी हिंसा हो रही है, कितने जीवों का वध हो रहा है। चाहे कुछ भी हो मैं लोगों की नजर में अच्छा दिखूँ। यदि मैंने कपड़े के जूते पहन लिए तो लोग क्या कहेंगे– अरे! तुम कपड़े के जूते पहने हो। हमें तो शौक करना है चमड़े के जूते दिखाना है, वाह! चमाचम जूते हैं। चमड़े की ही बैल्ट होना चाहिए, चमड़े का ही पर्स होना चाहिए और कोट-कैप होना चाहिए। लेकिन ये नहीं मालूम उस चमड़े में अंतर्मुहूर्त में बड़ी संज्ञी पंचेन्द्रिय जीवन जन्म भी लेते हैं और मृत्यु को भी प्राप्त करते हैं। महानुभाव! किन्तु व्यक्ति अपने शौक के लिए अपनी इन्द्रियों पर कंट्रोल न करता हुआ वह प्रवृत्ति करता है। क्षणिक रसना इन्द्रिय के स्वाद के लिए वह ऐसे पदार्थों का सेवन कर लेता है जो हिंसाजन्य है, अभक्ष्य का सेवन कर लेता है। क्या कहें मनुष्य के बारे में, इसने मानवता की सीमा को तोड़ दिया, धर्म की सीमा का उल्लंघन कर लिया और कहाँ तक गिर गया है, जो मनुष्य पहले शाकाहार का सेवन करता था आज मांसाहार का सेवन कर रहा है। पहले मनुष्य जो दूसरों को दु:खी देखकर करुणामय, दयामय हो जाता था वह आज अण्डे खा रहा है, वह मनुष्य आज शराब पीने लगा और ऐसा भी है, कभी-कभी तो सुनकर इतना दु:ख होता है वास्तव में इतनी पीड़ा होती है कि जैनेतर लोगों में ही नहीं जैन लोग भी शराब पीने लगे। एक व्यक्ति ने बताया– महाराज ही! मैं तो उसका नौकर हूँ किन्तु मेरा जो मालिक का लड़का है वह पीता है और उसी के माध्यम ये मैं पी लेता था किन्तु आपने मेरा त्याग करा दिया, अब आज से कभी शराब नहीं पीऊँगा, अण्डा नहीं खाऊँगा, माँस नहीं खाऊँगा और नियम को जीवन भर निभाऊँगा किन्तु महाराज जी मेरा एक निवेदन और था जो तुम्हारा भक्त है रोज पूजा-अर्चना करता है, मंदिर रोज जाता है,

सर्वोदयी चिन्तन

असंयमी को ज्ञानी कहना उसी प्रकार हास्यास्पद है, जैसे किसी रोगी को वैद्य कहना, बालक को वृद्ध कहना, मुर्दे को जीवित कहना।

उसका पाँच-छः पूजा करने का नियम है, आलू-प्याज नहीं खाता है उसका लड़का शराब पीता है, माँस खाता है। महाराज जी! जब आप उसका त्याग नहीं करायेंगे, मैं तो उसके यहाँ काम करने वाला हूँ मेरा त्याग कैसे चल पायेगा और वास्तव में उस व्यक्ति के बारे में कल्पना नहीं कर सकता इतना शुद्ध व्यक्ति उसका पिता रोज पूजा करने वाला, उसकी माँ इतनी शुद्ध कि मंदिर में बीसों माला फेरने वाली, उपवास करने वाली, व्रत करने वाली और उसका पुत्र शराब पीने वाला, अण्डा खाने वाला। वह लड़का जब उस अवस्था को प्राप्त हुआ और जब वह लड़का भवों के पाप कहें या वर्तमान के पाप कहें किसी दुर्घटना में आ जाता है उसे बहुत गहरी चोटें लगती हैं और उसके इलाज में दस-बीस लाख रुपया लग जाना मामूली बात है। अब पाप का उदय आया एक पापी होने से वह सम्पत्ति भी छोड़ जाती है, जिसके पिता की बड़ी इज्जत थी पूरे नगर में सम्मान की दृष्टि से देखा जाता था आज उसके पिता की कोई इज्जत नहीं रही। फैक्ट्री में घाटा लग गया वह व्यक्ति अब दूसरी अवस्था को प्राप्त हो गया।

सर्वोदयी चिन्तन

कोई कितना भी बड़ा विद्वान् क्यों न हो, जब तक उसके जीवन में संयम नहीं तब तक उसका समग्र ज्ञान स्टेशन मास्टर की तरह व्यर्थ है, वह जानता तो है, कौन गाड़ी कब-कहाँ जायेगी? किन्तु स्वयं कहीं नहीं जाता।

महानुभाव,

ऐसे व्यक्तियों को देखकर बड़ा तरस आता हैं ''धिक्कार है'' ऐसे कुल में उत्पन्न हुए लड़के भी शराब, अण्डा, माँस खाने लगें तो आगे हम किनसे उम्मीद करें? कौन जैन धर्म चलायेगा? इस श्रमण-संस्कृति की रक्षा करने वाला कौन है? तुम्हारे माता-पिता के चले जाने के बाद क्या तुम साधुओं को भी अभक्ष्य का सेवन कराओगे? कैसे रक्षा होगी? बड़ा दुःख होता है कि ऐसे कुलों में भी ये अभक्ष्य आ गया। महानुभाव! जैन धर्म की रक्षा के लिए अपने

कुल की रक्षा के लिए, संस्कृति की रक्षा के लिए सभी को ये संकल्प लेना चाहिए कि महाराज जी कुछ भी हो जाए हम अपने चौके में अण्डा, माँस, शराब जीते जी नहीं आने देंगे। पहले वह रसोई, चौका कहलाता था, जहाँ चार प्रकार की शुद्धि होती थी–द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव की शुद्धि होती थी उसे चौका कहते थे। आज तो वह चौका कहना, रसोई, कहना बंद कर दिया उसे ''किचन'' कहने लगे जहाँ किच-किच मची रहती है तो ऐसी किच-किच को दूर करके पुनः चौके जैसे प्रवृत्ति बनाना है। चौका ही लगाना है। महाराज जी! हम तो छक्का भी लगा लेते हैं। छक्का न लगाओ, चौका ही लगाओ, छक्का लगाओगे तो डूब जाओगे, मुँह के बल गिरोगे तो बत्तीस दाँत टूट जायेंगे।

महानुभाव!

पहले शुद्धि होती थी अब प्रायः कर ऐसे परिवार बहुत कम रह गये हैं, जिस परिवार में सूर्य अस्त होते ही परिवार में भोजन आदि खाने को नहीं मिलता, जिस परिवार में पाँच पीढ़ियों से आलू-प्याज का प्रवेश नहीं हुआ ऐसा भी परिवार है। यदि दो-चार परिवार वाले व्यक्ति भी यहाँ होंगे तो मुझे आत्मिक प्रसन्नता होगी कि कम से कम यहाँ भी एक परिवार ऐसा है। आदर्श परिवार बहुत कम होते हैं एक भी हो सकता है। आदर्श चौका वही कहलाया जाता है जहाँ सूर्य उदय के बाद कार्य प्रारम्भ होता है और सूर्य अस्त के दो घड़ी पहले ही कार्य बंद हो जाते हैं। महानुभाव! हमें कंट्रोल करना है पाँचों इन्द्रियों को, छः कायिक जीवों की यथायोग्य रक्षा करना है, चमड़े का यथायोग्य त्याग करना है। कभी-कभी कहने में शर्म आती है किसी पत्रकार ने टिप्पणी भी की कि अहिंसा महाकुम्भ तो कर रहे हैं जो अहिंसा महाकुम्भ में भाग लेने आये हैं, वे ही चमड़े के जूते पहनकर आये हैं, चमड़े की बैल्ट पहनकर आये हैं, पर्स भी चमड़ा का ही लाये हैं। तुम पशुओं की रक्षा करने आये हो तुम ही

> **सर्वोदयी चिन्तन**
> उत्तम संयम धर्म शब्द ज्ञानी के नहीं ब्रह्म ज्ञानी या आत्म ज्ञानी के लिए ही संभव है।

उन पशुओं के चमड़े को पहन रहे हो, खरीद रहे हो बड़े शर्म की बात है। यदि भगवान् महावीर स्वामी के सिद्धान्त ''जीओ और जीने दो'' पर तुम्हें आस्था है तो आज से नियम ले लेना चाहिए कि जीवन में न तो कभी चमड़े का प्रयोग करेंगे और न खरीदेंगे, महिलायें माँस निर्मित नेलपेन्ट, लिपिस्टिक, क्रीम, पाउडर का प्रयोग नहीं करेंगी। आचार्यों ने कहा है–एक-एक इन्द्रिय के विषय में प्रवृत्ति करने वाले प्राणी जब उन दुःखों को, बंधन को प्राप्त हो गए तो जो पाँचों इन्द्रियों के विषयों में प्रवृत्ति करेगा उसका न जाने क्या होगा?

''अलि पतंग गज मीन मृग, इनके एक ही आँच।
सन्मति बाकी कौन गति, जाके पीछे पाँच॥''

हाथी स्पर्शन इन्द्रिय के लोभ में आकर बंधन को प्राप्त हो जाता है। कागज की हथिनी को देखकर वह विषय सेवन करना चाहता है, पास में जाता है किन्तु वह कागज की हथिनी गड्डे के ऊपर बाँस की फंच्चटों के ऊपर रखी रहती है। हाथी दौड़ता हुआ जाता है गड्डे में गिर जाता है और महावत उसे अपने बंधन में कर लेते हैं। वह इतना बलवान् हाथी, जंगल में रहने वाला ताकतवर हाथी उसमें शेर से भी ज्यादा ताकत पायी जाती है किन्तु शेर पराक्रमी होता है। वह इतना स्फूर्ति वाला होता है कि वह बार-बार उस पर हमला कर देता है और सामने से वार करता है। हाथी इतनी जल्दी मुड़ नहीं पाता, यदि हाथी शेर को अपनी सूँड़ में लपेट ले तो ऐसे कसकर फेंक सकता है कि शेर के प्राण ही निकल जायें, वह ताकतवर हाथी भी एक हथिनी के व्यामोह में आकर बंधन को प्राप्त हो जाता है।

मछली (मीन) स्वतंत्र जल में विचरण करने वाली, पानी में भ्रमण करने वाली वह सामान्यता से पकड़ में नहीं आ सकती किन्तु

मछुआरा काँटे में आटा लगाकर पानी में डालता है तो मछली लोभ में खाने आती है, वह कांटा उसके गले में फँस जाता है इसलिए पकड़ में आ जाती है। रसना इन्द्रिय को नियंत्रण न कर पाने के कारण मछली बंधन को प्राप्त हो जाती है।

उस गंध का लोभी भौंरा जो कमल आदि पुष्प पर बैठ जाता है शाम को कमल बंद हो जाता है। चाहे तो वह भौंरा कमल को तोड़कर बाहर निकल सकता है, उसकी इतनी सामर्थ्य है कि वह लकड़ी को भी काट सकता है। किन्तु वह भौंरा उसमें इतना मस्त और आसक्त हो जाता है कि वह उस कोमल कली को, फूल को कष्ट देना नहीं चाहता। उसमें लिप्त होकर अपनी मृत्यु को प्राप्त हो जाता है। भौंरा मृत्यु को घ्राण इन्द्रिय के कारण प्राप्त कर लेता है।

इसी प्रकार पतंगा चातुर्मास के समय में जब रात्रि में लाइट जलती है तो लाइट पर बहुत सारे पतंगे आ जाते हैं, वे वहाँ मंडराते हैं और मंडराते-मंडराते प्राण दे देते हैं अपनी इन्द्रिय को वश में न करने से और ध्वनि का लोभी हिरन तथा सर्प। वैसे सर्प को पकड़ा नहीं जा सकता किन्तु बीन बजाने वाले जब बीन बजाते हैं तो पुनः सर्प अपने बिल में से निकल कर बाहर आते हैं और हिरण बाँसुरी की मधुर आवाज सुनकर के ठहर जाते हैं और शिकारी लोग उन्हें पकड़ लेते हैं या सपेरे लोग साँप को पकड़ लेते हैं। कहने का आशय ये है–

जब एक-एक इन्द्रिय के विषयों में आसक्त होकर के इन जीवों ने अपनी स्वतंत्रता खो दी, ये बंधन को प्राप्त हो गए। उनके पीछे तो एक-एक इन्द्रिय की तीव्रता थी, जो पाँचों इन्द्रियों का तीव्र लोभी है उसकी कौन सी गति होगी इसे तो भगवान ही जान सकते हैं। इसलिए पंचेन्द्रियों को नियंत्रित करने का प्रयास करना है, ब्रह्मचर्य का अधिकांशतः सेवन करने का प्रयास, अभक्ष्य पदार्थों को त्याग करके रसना इन्द्रिय को वश में कर सकते हो और गंध, इत्र आदि

में लिप्त न होने से उसका त्याग करने से आप अपनी नासिका को नियंत्रण कर सकते हो और आप वर्ण के लोभी न होकर, सौन्दर्य के लोभी न होकर आप अपनी चक्षु को नियंत्रण कर सकते हो और फिल्मी गाने आदि का त्याग करने से अप.ो कर्ण इन्द्रिय को भी नियंत्रित कर सकते हो। आपको अपने संयम रूपी रतन को बहुत संभाल के रखना है इस संसार में विषय रूपी चोर बहुत अधिक हैं इसलिए आपको सावधान रहना है और दूसरी बात ये है–

''जिस बिना नहीं जिनराज सीजे तू रूलो जग कीच में।
इक घड़ी मत बिसरो करो, आव जम मुख बीच में।।''

जब तक यम के मुख के बीच में नहीं आ गया तब तक तुझे अपना कल्याण कर लेना चाहिए। जब यम के मुख के बीच में आ जायेगा तब क्या कर पायेगा और संयम के बिना किसी का कल्याण नहीं होता है। संयम को ग्रहण करना है चाहे वह तीर्थंकर ही क्यों न हो वह भी संयम के बिना मोक्ष नहीं जा सकते।

महानुभाव!

यदि तुम ज्यादा आगे नहीं बढ़ सकते हो तो कम से कम मनुष्य ही बने रहो किन्तु अपना डिमोशन न करो, अपने प्रमोशन की सामर्थ्य तुममें न हो तो अपना डिमोशन भी नहीं करना चाहिए। यानि मनुष्य, मनुष्य कब तक कहलाता है? ''जब जक उसके दो पैर रहते हैं जब तक मनुष्य पराधीन नहीं है, अपने ऊपर निर्भर है तब तक वह मनुष्य वास्तव में मनुष्य कहलाने का अधिकारी है और यदि उसकी शादी हो गई तो उसके कितने पैर हो जाते हैं?'' ''चार'' चार पैर वाला पशु, चौपाया कहलाता है तो जिनकी शादी हो गई है वे चौपाये के समान हैं। एक बात और भी है जिसकी शादी हो गई है वह यही चाहता है दूसरे की भी शादी हो जाए और जिसकी नाक कट गयी है, तो वह सोचता है इसकी भी कट जाये, इसकी साबुत दिख रही है न।

एक बार कुछ बालक खेल रहे थे। ''राष्ट्रीय खेल'' जो होना चाहिए परंतु है नहीं ''गिल्ली डंडा'' तो ये खेलते समय बालक ने गिल्ली में चोट कसकर मारी किन्तु गिल्ली जाकर उसकी नाक में लगी और नाक कट गई, खून बहता रहा। ग्रामीण क्षेत्र की बात थी वहाँ कोई बड़ा अस्पताल नहीं था। अब बालक बड़ा हुआ, उसे चिन्ता हुई कि मेरी शादी हो जाय किन्तु नाक वालों की तो शादी आज होती नहीं है वे भी आज पच्चीस-तीस साल के हो गए उनकी शादी तो हो नहीं रही। उसने सोचा शादी की कोई गुंजाइश नहीं, कोई अवसर नहीं जब लम्बी-लम्बी नाक वालों की नहीं हो रही तो बिना नाक वाले की कैसे होगी? उसकी वैसे ही छोटी सी नाक थी। एक व्यक्ति मिला, उसने कहा--महाराज जी! ये व्यक्ति अपने कार्यक्रम को सेट नहीं कर रहे हैं, नाक कट जायेगी। मैंने कहा–उनकी कटेगी तुम्हारी थोड़े ही कटेगी तुम संगठन के अध्यक्ष या मंत्री हो। उसने कहा महाराज जी! मुझे भगवान् ने बहुत लंबी दी है दो बार कट जायेगी तब सम स्थिति में आ पायेगी। किन्तु उस बालक की नाक वैसे ही छोटी सी थी और वह भी गिल्ली से कट गयी जब शादी नहीं हुई तब कहा– अब क्या करना चाहिए? तो उसने सोचा– बहुत अच्छा उपाय है इससे अच्छा तो साधु बन जायें, संन्यासी बन जायें ठीक रहेगा शादी तो नहीं होगी तो वह साधु बन गया और साधना करने लगा खूब ध्यान, गहन साधना की किन्तु फिर भी लोग उसे टोकते रहते थे। महात्मा जी! एक बात बता दो आपकी नाक कैसे कट गयी थी? महात्मा जी क्या कहें? कैसे बतायें? अब बता नहीं पा रहे थे तो पुनः उन्होंने युक्ति सोची क्या कहना चाहिए? क्योंकि यद्यपि महात्मा जी को बुरा लगता था किसी से पूछो जिसकी आँख फूट गयी हो कि तुम्हारी आँख कैसे फूट गयी?

''काने से कानो कहो, कानो आवे टूट।
होले-होले पूछ ले, कैसे गयी है फूट॥''

उसको धीरे-धीरे पूछने का प्रयास करना चाहिए। किन्तु महात्मा

जी ने कहा यदि मैं बता दूँगा कि मेरी गिल्ली-डंडा से नाक कट गयी पुनः मैंने दीक्षा ग्रहण कर ली संन्यासी बन गया तो लोग मजाक बनायेंगे। कोई नई युक्ति सोचनी चाहिए। पुनः उन्होंने युक्ति सोच ली जब बालक ने पूछा– महात्मा जी नाक कैसे गोल हो गयी? उन्होंने कहा–'तुम इस रहस्य को नहीं समझ पाओगे ये बड़ी गहरी बातें हैं, सिद्धान्त की बातें हैं सभी की समझ में नहीं आती हैं। महात्मा जी मुझे तो समझना है चाहे कैसे भी हो। बेटा देखो जिद नहीं करते हैं हम महात्मा लोग हमने अपना शरीर छोड़ दिया तो और कुछ छोड़ने का फायदा है। पर आपने नाक क्यों छोड़ दी? भले ही शरीर छोड़ देते। नहीं। इसमें कोई कारण है। क्या कारण है? महात्मा जी ने कहा– देखो, तुम मत पूछो, पूछोगे तो उस कारण को करना पड़ेगा–हाँ महाराज जी! तो बात यह है मैंने दीक्षा ली है साधना करते-करते बहुत समय हो गया तो मुझे परमात्मा के दर्शन हुए, सिद्धात्मा के दर्शन हुए तो पुनः वह दर्शन लुप्त तो गये। मैंने पूछा कि दर्शन कैसे हो सकते हैं? परमात्मा ने कहा कि जो परम सिद्धात्मा है उसके बीच में और तुम्हारे (मध्य लोक के) बीच में तुम्हारी नाक आती है। नाक (स्वर्ग) आज नहीं होती तो सीधे सिद्धों को, परमात्मा को देख लेते। तो उस व्यक्ति ने कहा कि यदि परमात्मा के और मेरे बीच में कोई है तो वह नाक है। जो महापुरुष, तीर्थंकर आदि होते हैं वह नासा के ऊपर दृष्टि रख लेते हैं तो उन्हें परमात्म दिख जाते हैं और हम लोग छद्मस्थ हैं तो हमें परमात्मा दिख नहीं सकता तो नाक काटना आवश्यक है। बहुत अच्छा महात्मा जी, यदि ऐसी बात है तो मैं भी परमात्मा के दर्शन करना चाहता हूँ। नहीं, नहीं जिद्द नहीं करते हैं, तुम अभी छोटे हो। नहीं मैं करना चाहता हूँ, वह जिद्द कर गया। महात्मा जी ने बहुत समझाया नहीं माना। चलो ठीक है नाक काटनी पड़ेगी, 'ठीक' मैं अपनी नाक काटने के लिए तैयार हूँ। उसने अपनी नाक काट दी। जब नाक कट गयी पुनः खून बहता रहा बड़ी मुश्किल से ठीक हो पाई। बड़ी पीड़ा और कराहना उसके अंदर

से आ रही थी। जब ठीक हो गया तो पुन: महात्मा जी से कहा–''मुझे अब परमात्मा के दर्शन कराओ। 'महात्मा जी ने एक तमाचा उसके गाल पर लगाया, बोले– मूर्ख! कहीं नाक कटने से महान् परमात्मा के दर्शन हुए हैं? मेरी तो गिल्ली-डंडा खेलने से कट गयी थी, तूने व्यर्थ में कटवा ली। अब वह कहता है मैं जाता हूँ उस महात्मा ने कहा–नहीं अगर गया तो समझ लेना। अब क्या करना है–

''तू न कहे मेरी, मैं न कहूँ तेरी, चलने दे ढेरी की ढेरी।

सबकी नाक कटवाओ, मेरी कटी तेरी कटी तो सबकी नाक कटवाना है। मैं कहूँगा नाक कटने से परमात्मा के दर्शन होते हैं। तू कहेगा–हाँ जी, बिल्कुल सही कह रहे हैं, सबकी कटने दो। तो उन दोनों नकटों ने पूरे गाँव को नकटा बना दिया।

महानुभाव,

जिसकी नाक कट जाती है तो वह दूसरों की नाक कटवाने का भी प्रयास करता है। जिस व्यक्ति की शादी हो गयी है वह चाहता है इसकी भी शादी हो। शादी एक ऐसा किला है, ऐसा दुर्ग है जो शादी रूपी किले के बाहर खड़े हैं प्रवेश करना चाहते हैं, जो प्रवेश कर गये हैं, वे बाहर निकलना चाहते हैं। मनुष्य जिसकी शादी हो जाए तो चौपाया पशु कहलाता है। एक संतान हो जाए तो छ: पैर वाला भौंरा कहलाता है फिर उसका प्रेम कहीं बालक के प्रति, कहीं पत्नी के प्रति तो कभी भोग सामग्री के प्रति हो जाता है। यदि एक संतान और हो जाए तो उसके आठ पैर हो जाते हैं। वह मक्खी कहलाता है और मक्खी के उपरांत एक और संतान हो जाने से दस पैर वाला वह मकड़ी के समान हो जाता है और वह पुन: स्वयं ही जाल बुनता है, स्वयं ही फँस कर मर जाता है। मकड़ी चाहे तो अपने बुने हुए जाल को तोड़कर बाहर निकल सकती है। वह जाल भी ऐसा बनाती है चारों ओर से बनाती जायेगी; बनाती जायेगी, बीच में

स्वयं फँस जाती है। इसी प्रकार संसारी प्राणी बाहर से जाल बुनता जाता है, बुनता जाता है उसी से राग हो जाता है; पुन: जाल को तोड़ना नहीं चाहता उसी में फँस कर बेमौत ही मर जाता है।

महानुभाव,

आपके लिए यही संकेत है आप अपने जीवन में उस संयम को स्थान दें, देशसंयम सकल संयम जितनी आपकी सामर्थ्य हो उसे स्थान देकर अपने जीवन को कृतार्थ एवं सफलीभूत बनायें जिसके माध्यम से आत्मा पवित्र एवं पुनीत हो सकती है।

अर्थ सहित कुछ छंद

कषायेन्द्रिय दण्डानां, विणयो व्रत धारणं।
संयमः संयतैः प्रोक्त श्रेयः श्रयितुमिच्छताम्॥

अर्थ–मुमुक्षु जीवों का कषाय, इन्द्रिय और योग पर विजय प्राप्त करना व्रतों का धारण करना संयतों द्वारा संयम कहा जाता है।

षडङ्गिनां दयां कृत्वा, निग्रहं चाक्षचेतसां।
संयमो धर्म सिद्ध्यर्थ-मनुष्ठेयो न चेतरः॥

अर्थ–ख्याति पूजा तथा इन्द्रिय विषयों की चाह से रहित पाँच स्थावर और त्रस जीवों पर दया करके संयम धर्म की सिद्धि के लिए पाँच इन्द्रिय और मन को वश में करना चाहिए।

मानुष्यं किल दुर्लभं भवभूत, स्तत्रापि जात्यादयः,
तेष्वेवाप्तवचः श्रुति स्थितिरत, स्तस्याश्च दृग्बोधने॥
प्राप्ते ते अतिनिर्मले अपि परं, स्यातां न येनोज्झिते,
स्वर्गमोक्षपुलप्रदे स च कथं, न श्लाघते संयमः॥

अर्थ–प्राणियों को मनुष्य पर्याय दुर्लभ है उसमें भी उत्तम कुल, उसमें भी जिनवाणी का श्रवण, उस धर्म का धारण करना उसमें भी सम्यग्दर्शन ज्ञानपूर्वक स्वर्ग मोक्ष को देने वाला संयम है वह प्रशंसनीय क्यों नहीं होगा?

प्राणिनां रक्षणं त्रेधा तदाक्षप्रसराहतिः।
एकोदशेमिति प्राहुः, संयमं गृहमेधिनाम्॥

अर्थ–त्रस जीवों की मन, वचन, काय से रक्षा करना, इन्द्रियों पर विजय प्राप्त करना, गृहस्थों का एक देश संयम कहलाता है।

असिमषिवृषिविद्या, शिलणिज्ययोगैः
तनुधनसुतहेतोः कर्म यादृक् संयमार्थं विधत्से,
सवदपि यदि तादृक संयमार्थं विधत्से,

सुखमलमलन्तं किं तदा नाश्नुषेऽनम्।।

अर्थ–असि, मसि, कृषि, विद्या, शिल्प, व्यापार के द्वारा प्राणी शरीर, धन पुत्र के लिए जितनी मेहनत करता है, उतना पुरुषार्थ यदि एक बार भी संयम के लिए करे, तो निर्मल अनन्त सुख को क्या प्राप्त नहीं करेगा? अर्थात् अवश्य प्राप्त करेगा?

चित्तत्त्वभावनासक्त, मतयो यतयो यमं।
यतन्ते यातनाशील, यमनाशन कारणम्।।

अर्थ–आत्म तत्त्व की भावना में आसक्त है बुद्धि जिनकी ऐसे यति यातना देने वाले यम का नाश करने के लिए संयम में यत्न करते हैं।

संयमं द्विविधं लोके, कथितं मुनिपुङ्गवैः।
पालनीयं पुनश्चित्ते, भव्य जीवेन सर्वदा।।

अर्थ–गणधर देवों ने लोक में संयम दो प्रकार का कहा है उसका भव्य जीवों को हृदय से नित्य पालन करना चाहिए।

मन, वचन, काय की शुद्धि पूर्वक चेतन-अचेतन या अंतरंग बहिरंग परिग्रह का त्याग करना संयम कहलाता है।

पंचासदेहि विरमणं, पंचिंदिय णिग्गहो कसाय
जओ य।
तिहिं दंडाहि य विरदी सत्तारस संजमा भणिया।।

अर्थ–पाँच पापों का त्याग, पाँच इन्द्रियों का निग्रह, कषायों पर विजय, मन, वचन, काय की चंचलता के त्याग से सतरह प्रकार का संयम कहा गया है।

संचिन्तननुप्रेक्षाः स्वाध्याये नित्यमुद्यतः।
जयत्येव मनः साधुः रिन्द्रियार्थपराङ्मुखः।।

अर्थ–अनुप्रेक्षाओं का चिन्तन करने वाला इन्द्रिय विषयों से परांगमुख साधु स्वाध्याय में रत रहकर मन को सहज में जीत लेता है।

यमादिषु कृताभ्यासो, निसङ्, गो निर्ममो मुनिः।
रागादिवलेशनिर्मुक्तं, करोति स्वदशं मनः॥

अर्थ– यम आदि में जिन्होंने अभ्यास किया है ऐसे परिग्रह रहित निर्मम साधु रागादि क्लेशों से रहित होकर मन को वश में करते हैं।

क्षान्तियोषिति यः सक्तः सम्यग्ज्ञानातिथिप्रियः।
स गृहस्थो भवेन् नूनं मनो मर्कटसाधकः॥

अर्थ– सम्यग्ज्ञान ही जिसका प्रिय अतिथि है एवं क्षमा रूपी स्त्री में आसक्त गृहस्थ भी निश्चय से अपने मन रूपी बन्दर को वश में कर सकता है।

दक्षैः समितयः पंच, यत्र संवरमातृकाः।
यत्नेन प्रतिपात्यन्ते, अपहृतारव्यः स संयम्॥

अर्थ– बुद्धिमानों के द्वारा जो संवर की माता स्वरूप पाँच समितियों का यत्नपूर्वक पालन किया जाता है। वह अपहृत संयम कहलाता है।

संयमः स जिनैः प्रोक्तः, साक्षान्मुक्तिनिबन्धनः।
तपो दृग्ज्ञानधर्मादि, गुणानां शुद्धिकारकः॥

अर्थ– वह संयम जिनेन्द्र भगवान् ने कहा है जो तप, दर्शन, ज्ञान, धर्मादि गुणों की शुद्धि करने वाला है और मुक्ति का साक्षात् कारण है।

अर्थ– उपेक्षा और अपहृत के भेद से संयम दो प्रकार का कहा गया है। उपेक्षा संयम उत्कृष्ट संहनन वालों के होता है और अपहृत संयम अन्य संहनन वालों के होता है।

उत्कृष्टांग बलाद्यस्य विदस्त्रिगुप्ति धारिणः।
राग द्वेषाद्यभावो यः, उपेक्षा संयमोऽत्र सः॥

अर्थ– उत्तम संहनन से युक्त तीन गुप्ति के धारक ज्ञानी जीव का जो राग, द्वेष आदि का अभाव है वह उपेक्षा संयम कहलाता है।

विषयोरगदष्टस्य, कषायविषमोहिनः।
संयमो हि महामन्त्रः, त्राता सर्वत्र देहिनाम्॥

अर्थ–इन्द्रिय विषय रूपी सर्प से काटे गए एवं कषाय रूपी विष से मूर्छित प्राणियों को सर्वत्र संयम रूपी महामंत्र ही रक्षक है।

विषयेषु यथा चित्तं, जंतो र्मग्नमनाकुलं।
तथा यद्यात्मरस्त्वे, सद्यः को न शिवीभवेत्॥

अर्थ–जिस प्रकार प्रणी का मन विषयों में लगता है उसी प्रकार यदि आकुलता रहित आत्म-तत्त्व में लगे तो कौन शीघ्र ही मुक्त नहीं होगा?

आपदां कथितः पन्था, इन्द्रियाणामसंयमः।
तज्जयः सम्पदां मार्गो, येनेष्टं तेन गम्यताम्॥

अर्थ–इन्द्रिय जन्य असंयम आपत्तियों का मार्ग है और इन्द्रियों पर विजय सुख-सम्पत्ति का मार्ग है। आपको जो इष्ट हो उस मार्ग पर गमन करो।

संवृणोत्यक्षसैन्यं यः, कूर्मोऽङ्गानीव संयमी।
स लोके दोषपङ्कादूये, चरन्नपि न लिप्यते॥

अर्थ–जो संयमी कछुयें की तरह इन्द्रिय रूपी सेना को वश में करता है वह दोष रूपी कीचड़ से युक्त लोक में विचरण करता हुआ भी लिप्त नहीं होता है।

यथा यथा हृषीकाणि, स्ववशं यान्ति देहिनो।
तथा तथा स्फुरत्युच्चै र्हृदि विज्ञानभास्करः॥

अर्थ–जैसे-जैसे प्राणी की इन्द्रियाँ वश में होती हैं, वैसे-वैसे हृदय में ज्ञान रूपी सूर्य प्रकट होने लगता है।

शौर्य गाम्भीर्य मोदार्यम् ध्यानमध्ययनं तपः।
सकलं सफलं पुंसां, स्याच्चेन्द्रियनिग्रहः॥

अर्थ–यदि मनुष्य इन्द्रियों पर विजय प्राप्त कर लेता है तो शूरवीरता, गम्भीरता, उदारता, ध्यान, अध्ययन, तप सभी सफल हैं।

रुणद्धि नैवात्मानं, इन्द्रियार्थेषु यः पुमानः।
सर्वत्रापत्पदं स स्यादत्, पतङ्ग इस दुर्गतौ॥

अर्थ–जैसे पतंगा, चक्षु इन्द्रिय के विषय दीपक की खिशा से जलकर दुर्गति का पात्र होता है इसी तरह जो पुरुष इन्द्रिय विषयों से आत्मा की रक्षा नहीं करता वह सर्वत्र आपत्ति को प्राप्त होता है।

दुर्जयान् नरनिलिम्पभर्तृभिः, पंच यो विजयतेऽक्षविद्विषः।
तस्य सन्ति सकलाः करस्यिताः, सम्पदो भुवननाथपूजिताः॥

अर्थ–चक्रवर्ती इन्द्रों द्वारा भी बड़ी कठिनाई से जीतने योग्य पंच इन्द्रिय रूपी शत्रुओं को जो जीत लेता है, उसे इन्द्रों से पूजित सम्पत्तियाँ प्राप्त होती हैं।

अनिषिद्धाक्षसन्दोहं, यः साक्षान् मोक्षमिच्छति।
विदारयति दुर्बुद्धिः शिरसा स महीधरम्॥

अर्थ–जो पुरुष इन्द्रिय समूह को रोके बिना साक्षात् मोक्ष को चाहता है, वह दुर्बुद्धि मस्तक से पर्वत का विदारण करना चाहता है।

शिवं दूरं भवेन्नात्र, जिताक्षस्य स्वसंविदः।
नरनाथ सुरेन्द्राण, पदं जीर्णतृणं यथा॥

अर्थ–इन्द्रिय विजेता! आत्मज्ञानी पुरुष को चक्रवर्ती, धरणेन्द्र, इन्द्र आदि के पद जीर्ण तृण की भाँति प्राप्त हो जाते हैं और निकट भविष्य में मोक्ष भी प्राप्त हो जाता है।

निरुध्य बोधपाशेन, क्षिप्ता वैराग्यपंजरे।
हषीकहरयो येन, स मुनिां महेश्वरः॥

अर्थ–जिन्होंने इन्द्रिय रूपी घोड़ों को ज्ञान रूपी रस्सी में बाँधकर वैराग्य रूपी पिंजड़े में डाल दिया है। वही योगीश्वर है।

दन्ती दन्तदलनेकदिधौ समर्धाः,
सन्त्यत्र रुद्रमृगराजवधे प्रवीणाः।
आशीर्विषस्य च वशीकरणेऽपि दक्षाः,
पंचाक्षनिर्णय परास्तु न सन्ति मर्त्याः॥

अर्थ– इस जगत् में हाथी दाँत तोड़ने में भयंकर सिंह का वध करने में और आशीर्विश सर्प को वश में करने में समर्थ लोग हैं किन्तु इन्द्रियों पर विजय प्राप्त करने में तत्पर लोग नहीं हैं।

तप के परिकर को संयम कहते हैं–उपवास बढ़ाने से, अवमौदर्य करने से, रस परित्याग करने से, व्रतपरिसंख्यान करने से, ध्यान अध्ययन करने से, एकान्त में शयन आसन करने से, उग्र कायक्लेश करने से संयम होता है, पंच इन्द्रियों को वश में करने से, त्रस और स्थावर जीवों की रक्षा करने से, मन के प्रसार को रोकने से, बहुत गमन-आगमन का त्याग करने से, सूत्र के अर्थ का विचार करने से, कार्य के व्यापार को रोकने से, कषाय का दमन करने से, आत्मा के गुणों का चिंतन करने से, ग्रहण किये हुए यम नियम का पालन करने से संयम होता है। संयम के बिना जीव संसार समुद्र में परिभ्रमण करता है और संयम के बिना सारा मनुष्य जीवन व्यर्थ है। समस्त जीवों को इस लोक और परलोक में संयम ही शरण है। जीवों की रक्षा के लिए ही साधु पिच्छी को ग्रहण करते हैं।

रजसेदाणगहणं, मद्दव सुकुमालदा लहुत्तं च।
जत्थेथेदे पंच गुगा, तं पणिलिहणं पसंसंति॥

अर्थ– मयूर पिच्छिका धूल, पसीना को ग्रहण नहीं करती, कोमल, सुकुमार और वजन में हल्की होती है, स्वयं मोर के द्वारा पंख छोड़े जाते हैं इसलिए अहिंसक होने से प्रशंसनीय होती है।

अतृम दोहावली

कथनी बिन करनी करें, ज्ञानी जन दिन रात।
निजी बढाई के बिना, जैसे मुँह में दाँत॥1॥

विषय बढ़ा विष है सुनो, विष सेवन से मौत।
विषय कषाय विसार के, आतम सिद्धि होत॥2॥

ज्यों मति हीन विवेक बिना नर, पाय मतङ्गज ईंधन ढोवे।
कंचन भाजन धूर भरे शठ, मूढ़ सुधारस सों पग धोवे॥

चाहत काग उड़ावन कारण, डार महामणि मूरख रोवे।
त्यों यह दुर्लभ देह बनारस, पाय अज्ञानी अकारण खोवे॥3॥

मनुज जन्म दुर्लभ यहे, होय न दूजी बार।
पक्का फल जो गिर गया, फेर न लागे डार॥4॥

नीचे देखे तीन गुण, पड़ी वस्तु मिल जाय।
ठोकर भी लागे नहिं, जीव जन्तु बच जाय॥5॥

तिल तैल मेवमिष्टं येन, न दृष्ट घृतं क्वापि।
अतिदित परमानंदो, वदति स विषय एव रमणीय॥6॥

बीतने वाली घड़ी को, कौन लौटा पायेगा।
यह सुअवसर खो दिया तो, अंत में पछतायेगा॥7॥

जिन्दगी भर का कमाया, साथ में क्या जायेगा।
इस धरा का इस धरा पर, सब धरा रह जायेगा॥8॥

अन्तर विषय वासना वर्ते, बाहर लोक लाज भयकारी।
ताते परम दिगम्बर मुद्रा, धर न सके दीन संसारी॥9॥

उत्तम संयम धर्म के सम्बन्ध में

1. **बाल ब्रह्मचारी संयमी तीर्थंकर–** संयम के द्वारा आत्मा लोक पूज्य तो होती ही है साथ ही आत्म कल्याण को भी प्राप्त करती है। बिना संयम के किसी भी आत्मा का कल्याण संभव नहीं है। असंयमी चारों गतियों में जा सकता है, किन्तु संयम का पालन करने वाला, क्षपक यति नियम से मोक्ष प्राप्त करता है। वासुपूज्य, मल्लिनाथ, नेमिनाथ, पार्श्वनाथ, महावीर स्वामी ये पाँच बालयति तीर्थंकर हुए।

2. **संयम से भरतादि अन्तर्मुहूर्त में केवली बने–** बिना संयम के मन: पर्यय ज्ञान व केवल ज्ञान संभव नहीं है और न ही परमावधि व सर्वावधिज्ञान ही संभव है। भरत चक्रवर्ती आदि कई महापुरुष ऐसे हुए जिन्होंने संयम को स्वीकार करते ही प्रत्यक्ष ज्ञान को प्राप्त किया तथा अपनी आत्मा का कल्याण किया।

3. **संयम से ही कर्म क्षय–** तीर्थंकर आदि अनंतानंत महापुरुष संयम साधना के द्वारा कर्मों का क्षय कर मोक्ष को प्राप्त हुए, वर्तमान काल में भी विदेह क्षेत्र से मोक्ष जा रहे हैं, भविष्य में भी जाते रहेंगे।

4. **संयम से दीन-हीन व पराजित व्यक्ति भी पूज्य–** समीचीन संयम साधना को स्वीकार करने वाले दीन-हीन, गरीब, पतित व असहाय जन भी देवों के द्वारा पूज्यता को प्राप्त कर मोक्ष को प्राप्त हुए। भीम मुनि, नंदिमित्र, भवदेव, पुष्पडाल, वसुभूति ब्राह्मण आदि।

5. **संयम से चोर, डाकू व हिंसकों ने भी जगत् प्रतिष्ठा व**

आत्म वैभव को प्राप्त किया—संयम समस्त कर्मों को तोड़ने में वज्र के समान है, संयम से एक नहीं अनेक चोर मोक्ष व स्वर्ग को प्राप्त हुए। जैसे—ललितांग चोर, विद्युत्दृष्ट, विद्युत्प्रभ।

6. **संयम से चाण्डाल भी पूज्य**—समीचीन संयम साधना से युक्त एक चाण्डाल भी हो, तब भी वह देवों द्वारा पूज्य है। यमपाल चाण्डाल, मातंग, भील, मंगोलादि भी।

7. **संयम से पशु भी पूज्य**—देश संयम/स्थूल पापों के त्याग रूप पंचाणु व्रत का नियम लेने से, उत्तम रीति से सल्लेखना पूर्वक समाधि मरण करने से पशु भी पूज्यावस्था व देव गति को प्राप्त हुए। कालान्तर में इन्हीं तिर्यंचों ने मनुष्य भव धारण कर संयम को अंगीकार कर मोक्ष को प्राप्त किया। जैसे शेर से महावीर स्वामी, हाथी से पार्श्वनाथ, शेर से भरत चक्रवर्ती, हाथी से अभय कुमार, कुत्ते से देव, मेंढक से देव, कुत्ती से रोहिणी, बन्दर से देव, मेढ़ा से देव, बैल से सुग्रीव इत्यादि।

8. **संयमी की संगति से सुख-शांति प्राप्त की**—अनेक महानुभावों ने संयमी महापुरुषों की संगति प्राप्त करके दुर्व्यसनों का, पापों का, असंयम का परित्याग किया और अपने आत्म कल्याण के मार्ग में गमन करते हुए स्वर्ग व मोक्ष को प्राप्त हुए। जैसे वृन्दावन वन में रहने वाला मृग जो अनन्त बल बना, सरोवर पर रहने वाला हंस-मुनि राज की संगति से कालांतर में भामण्डल बना, जटायु पक्षी मुनि संगति से देव बना, सुभग ग्वाला सुदर्शन सेठ बना, हथिनी जो कि सीता बनी, रतिवर कबूतर व रतिवेगा कबूतरी क्रमशः जय कुमार व सुलोचना बने, बन्दर, नेवला, शेर, शूकर आदि जानवर भी सागर सेन व दमधर मुरिज की अंतर्मुहूर्त की संगति पा आदिनाथ के पुत्र हुए, हंस-हंसिनी चित्रसेन पद्मावती हुए इत्यादि।

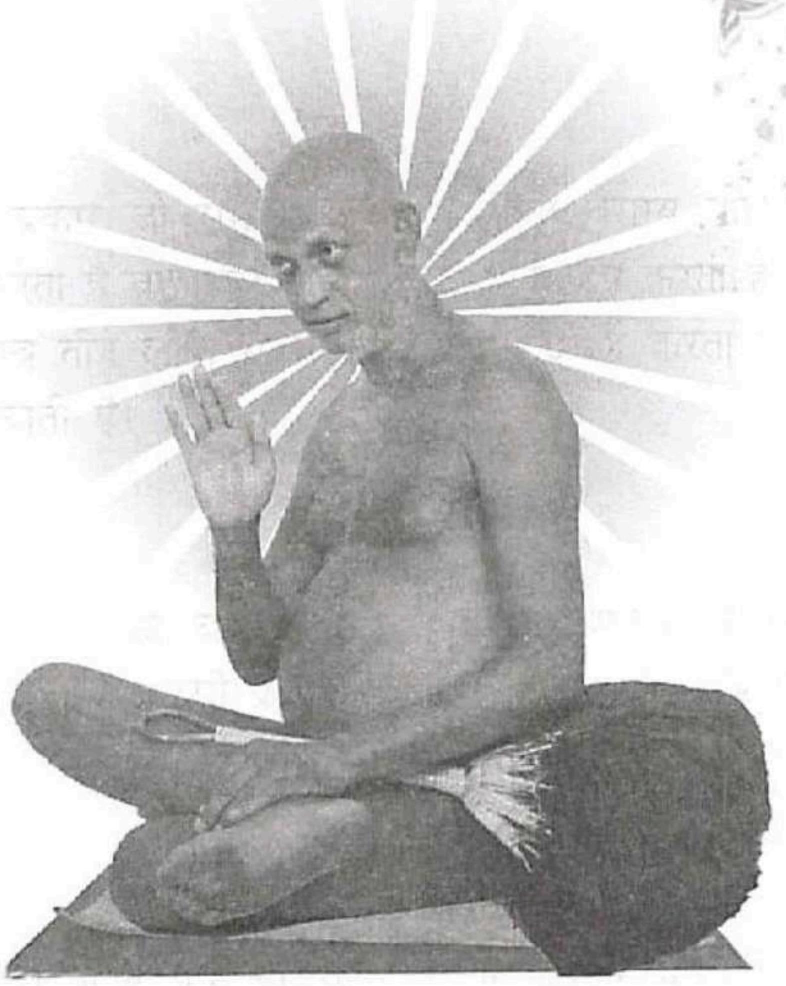

उत्तम तप

इंदियिच्छाणं सया,
णिरोहभावं महातवो भणिदो।
धारंति सुविग्गंथा,
सयल-सुजणेहिमच्चणीया।।

दशामृत
अहसास अंतस का

तप चाहें सुर राय

महानुभाव!

आज मोक्षमार्ग के साक्षात् हेतु तप के संबंध में कुछ चर्चा करेंगे। वह तप धर्म तपस्वियों के ही होता है। कुछ लोगों की धारणा है श्रावक के षट् आवश्यक कर्तव्यों में तप कहा गया है।

देवपूजागुरुपास्ति स्वाध्याय संयमस्तपः।
दानश्चेति गृहस्थानां षट्कर्माणि दिने-दिने॥

यह मिथ्या धारणा है श्रावकों में तप का अभ्यास हो सकता है, श्रावक तप की भावना भा सकते हैं, किन्तु वह तप श्रावक अवस्था में संभव नहीं है। तप करने वाला तपस्वी कहलाता है और तपस्वियों की परिभाषा बताते हुए आचार्य भगवन् समन्तभद्र स्वामी 'रत्नकण्डश्रावकाचार' में कहते हैं-

विषयाशावशातीतो निरारम्भोऽपरिग्रहः।
ज्ञान ध्याना तपोरक्त-स्तपस्वी सः प्रशस्यते॥

जिसने विषयों की आशा को छोड़ दिया है, जो समस्त आरम्भों से मुक्त हो चुका है, जिसके पास रंच मात्र भी परिग्रह नहीं है, ज्ञान, ध्यान में जिसका निरन्तर प्रत्येक समय व्यतीत होता है, ऐसा पुरुष ही तपस्वी कहलाता है। वही प्रशंसा के योग्य है, या तपस्वी शब्द से संबोधन करने के योग्य है, किन्तु गृहस्थ शब्द स्वयं संकेत देता है ''गृहस्थ जो घर में स्थित है।' तपस्वी लोग घर में नहीं रहते। आप

लोग कहेंगे महाराज जी! कभी-कभी मौका पड़ जाता है तो तपस्वी लोग घर में रुक जाते हैं। वे श्रावक के मकान में तो रुक सकते हैं किन्तु तपस्वी लोग घर में नहीं रहते। 'मकान में रह सकते हैं घर में नहीं रह सकते।' आप कहेंगे महाराज जी! मकान या घर कोई अलग-अलग चीज है? बहुत अन्तर है जितना साधु और श्रावक में अन्तर होता है उतना ही मकान और घर में अन्तर होता है। जितना किरायेदार की भावना में और मकान मालिक की भावना में अन्तर रहता है उतना ही मकान और घर में अन्तर होता है। किसी भी इमारत का नाम मकान हो सकता है किन्तु घर वह कहलाता है जिसमें गृहणी हो। यदि गृहिणी नहीं है तो वह घर नहीं कहलायेगा और गृहणी आने पर ही घर बसता है, घर बसाया जाता है, मकान बनाया जाता है। घर को बना नहीं सकते बसा सकते हैं। एक व्यक्ति होता है वह अपना जीवन साथी खोज लेता है। दो के माध्यम से और संख्या वृद्धि होती जाती है तो वह घर बन जाता है। कभी-कभी आप लोक व्यवहार में भी कहते हैं साथ में कौन आया है? पूरा घर आया है, घरवाली आ गई, पूरा घर आ गया। उसमें घरवाली ही कहा जाता है उसे कहते हैं गृहिणी, घरवाली।

'कहता है सियार वनी का, घर नहीं है बिगर जनी के'

अर्थात् 'बिना स्त्री के कोई घर नहीं होता'। जंगल का सियार भी कहता है यदि उसके पास स्त्री है तब तो वह गृहस्थ हो सकता है, घरवाला हो सकता है। और उसके पास यदि स्त्री नहीं है तो वह गृहस्थ नहीं हो सकता। जो स्त्री के त्यागी हैं, परम विरक्त हैं ऐसे व्यक्ति भी आधे साधु कहलाते हैं, पूरे साधु तो नहीं कह सकते क्योंकि जिन्होंने परम विरक्ति को स्वीकार कर लिया है, घर में रहते हुए भी उसी प्रकार रह रहे हैं जैसे कमल कीचड़ में

सर्वोदयी चिन्तन

बिना तपे स्वर्ण शुद्ध नहीं होता, मिट्टी कलश नहीं बनती, चावल दाल आदि भी नहीं पकते, उसी प्रकार बिना तप किये आत्मा शुद्ध दशा या परमात्म अवस्था को प्राप्त नहीं होती।

रहता है। महापुरुष भरत जो कि राम के अनुज थे, घर में वे भी आधे साधक के समान थे।

सर्वोदयी चिन्तन

तप का अर्थ है इच्छाओं को रोकना। जो इच्छाओं का निरोध कर लेता है, वही महा तपस्वी है।

महानुभाव!

तपस्वी वही कहलाता है जिसने समस्त परिग्रहों का त्याग कर दिया हो। गृह आदि सभी परिग्रहों का त्याग कर दिया है वह अनगार कहलाता है और जिसने गृह आदि परिग्रहों का त्याग नहीं किया है वह सागार कहलाता है। सागार तपस्वी नहीं होते, तपस्वी अनगार होते हैं। तप एक ऐसी अनुपम निधि है जिसके माध्यम से मोक्ष की साक्षात् प्राप्ति होती है। अन्य किसी माध्यम से मोक्ष की साक्षात् प्राप्ति नहीं हो सकती, अन्य किसी माध्यम से कर्मों का साक्षात् क्षय नहीं होता, प्रत्यक्ष में क्षय नहीं होता। परम्परा से भक्ति आदि मोक्ष के हेतु होते हैं। परंतु तप मोक्ष का साक्षात् हेतु है, बिना तप किये आज तक कोई न मोक्ष गया है और न कोई जा सकेगा। तप के माध्यम से–

'यद्दूरं यच्च दुरासाध्यं, यच्च लोकत्रये स्थितम्।
अनर्घ्यं वस्तु तत्सर्वं, प्राप्यते तपसाचिरात्॥'

जो वस्तु बहुत दूर हो, या जो वस्तु कठिनाई से प्राप्त हो अथवा कोई वस्तु तीन लोक में कहीं विद्यमान हो वह सम्पूर्ण वस्तु तप के माध्यम से प्राप्त की जा सकती है। तप के माध्यम से ऐसी कोई भी वस्तु नहीं है जो प्राप्त नहीं की जा सके।

जब भरत चक्रवर्ती दिग्विजय के लिए गए तो उन्होंने भी बीच में कई उपवास किये, विद्याओं को प्राप्त करने के लिए, देवों को वश में करने के लिए और श्रीकृष्ण जब युद्ध आदि के लिए गए तो उन्हें भी आठ-आठ उपवास करने पड़े तो तप एक ऐसी चीज है जिसके माध्यम से इन्द्र का आसन भी कम्पायमान हो जाता है।

जिसके माध्यम से सामान्य प्राणी भी नतमस्तक हो जाता है, वह तपस्या का प्रभाव देखता है तो उसका मस्तक स्वत: ही झुक जाता है। मस्तक झुकाया नहीं जाता, तप के प्रभाव को देखकर झुक जाता है। जहाँ मस्तक तप के प्रभाव से झुक जाता है वह मस्तक धन्य हो जाता है। मस्तक तो कई जगह झुकते हैं। एक जगह मस्तक तुम्हारा शर्म से झुक जाता है तो जहाँ मस्तक शर्म से झुकता है वह व्यक्ति पाप का आस्रव कर लेता है, अपने अन्दर, संक्लेशता, दु:ख अशान्ति आदि का अनुभव करता है और जहाँ मस्तक एक स्वाभिमान के साथ अपने आपको धन्य बनाने के लिए झुकता है तो वहाँ सारा जीवन कृत-कृत्य हो जाता है।

महानुभाव!

तप के माध्यम से तीनों लोकों में विद्यमान कोई भी वस्तु तुम प्राप्त कर सकते हो। तप के माध्यम से लोक व्यवहार के उद्देश्यों की भी पूर्ति कर सकते हो, उस तप के माध्यम से भले ही उसे कुतप ही क्यों न कहें यदि भूख हड़ताल प्रारम्भ कर दी जाती है अनशन पर बैठ जाते हैं तो तुम्हारी माँगें पूर्ण हो जाती हैं। क्योंकि आपके तप में इतनी शक्ति है इन्द्र के सिंहासन को भी हिला सकती हैं तो फिर राष्ट्रपति प्रधानमंत्री के सिंहासन कौन बड़ी बात है? इसलिए कोई भी कार्य आप सिद्ध करना चाहते हो, आपके जीवन में दुख भी आ गए हों, इतने बड़े संकट आ गये हों और आप भगवान् के सामने, पंचपरमेष्ठी की साक्षी में चारों प्रकार के आहार जल का, कषायों का त्याग करके जब बैठ जाते हो, प्रभो! तुम्हारे चरणों में बैठा हूँ चाहे मुझे बचाओ चाहे मारो, चाहे मेरा उद्धार करो, चाहे डुबा दो, जो कुछ करो सो तुम

सर्वोदयी चिन्तन

तुम्हारे तापसी रूप को देखकर जनता जनार्दन भले ही तुम को तापसी कहकर पूज ले, स्तुति प्रार्थना व प्रशंसा करे किन्तु इच्छाओं का निरोध किये बिना तुम्हारा कल्याण असम्भव ही है।

> **सर्वोदयी चिन्तन**
> ''सत्ता नहीं समता को पाने के लिए, वित्त को पाने नहीं, चित्ता को शुद्ध बनाने के लिए'' किया गया तप ही उत्तम तप है, और यही आत्मा का स्वभाव है, धर्म है।

करो। चारों प्रकार के आहार का त्याग करके परमात्मा के सामने बैठ जाने वाला व्यक्ति कभी उदास नहीं हो सकता, उसकी प्रत्येक इच्छा नियम से पूरी होती है। प्रथामानुयोग के शास्त्रों में ऐसे अनेक उदाहरण प्राप्त होते हैं जिन-जिन महापुरुषों पर उपसर्ग आया, उपसर्ग के समय उन्होंने चारों प्रकार के आहार का त्याग करके और परमात्मा की भक्ति में लीन हो गये। चाहे सुदर्शन सेठ हो, चाहे वारिषेण हो, चाहे वह यमपाल चाण्डाल हो उसकी कथा आपने सुनी होगी जो कि अहिंसाणुव्रत में प्रसिद्ध हुआ। वह चाण्डाल चतुर्दशी को हिंसा न करने का नियम ले करके, चाण्डाल व्यक्ति के भी व्रत हो सकते हैं, सामान्य को छोड़ो वह अपने व्रत में स्थिर रहा और उसकी भी रक्षा करने के लिए देवों को आना पड़ा। यमपाल चाण्डाल हो चाहे सीता चाहे द्रोपदी, चाहे सोमा, चाहे मैना सुन्दरी कोई भी क्यों न रहा हो जिसके ऊपर संकट आये उसने चारों प्रकार के आहार जल का त्याग करके जिनेन्द्र भगवान के सामने यह प्रतिज्ञा कर ली कि जब तक मेरा उपसर्ग नहीं हट जायेगा, तब तक मेरे भोगोपभोग का त्याग है मैं आपके चरणों में बैठा हूँ या तो आपके चरणों में प्राण छोड़ दूँगा या आपकी भक्ति के माध्यम से वह उपसर्ग दूर हो जायेगा। तो आज तक किसी ऐसे भक्त का नाम इतिहास में पढ़ने में नहीं आया कि किसी भक्त ने भगवान् की भक्ति की हो, चारों प्रकार के आहारों का त्याग करके भक्ति की हो और उसकी भावना पूर्ण नहीं हुई हो, उसे प्राण छोड़ने पड़े हों, ऐसा आज तक कोई भी सुनने में नहीं आया है। तप के साथ जब समीचीन भक्ति की जाती है तो वह समीचीन भक्ति नियम से अपने फल को देने वाली होती है। खेत में बीज बोया है हो सकता है वह बीज नष्ट हो जाए, सूख जाए, फल न दे पाये किन्तु आत्मा रूपी भूमि में जो श्रद्धा रूपी बीज

बोया है भक्ति से, तप के माध्यम से उसे प्रकाश मिला है भोजन बनाने के लिए ऐसा वह श्रद्धा का बीज कभी खाली नहीं जाता।

महानुभाव!

तपस्वी लोग तप को करते हैं और श्रावक लोग तप करने की भावना भाते हैं। तपस्वी जब तप को करते हैं तो आपके मन में एक विकल्प आया होगा कि तपस्या करने से तो अंतरंग में दुःख होता होगा, कष्ट होता होगा, संक्लेषता बनती होगी। किन्तु नहीं तपस्या करने से कभी संक्लेषता नहीं बनती। तपस्वी कभी अशान्त नहीं होता, तपस्वी अंतरंग से बहुत शीतलता का अनुभव करता है, अंतरंग में बहुत शीतलता रहती है। बहुत आनन्द आता है। आप कहेंगे जब वे तपस्या कर रहे हैं, आतापनयोग धारण कर रहे हैं, ग्रीष्मकाल में सूर्य की प्रखर तेज, प्रखर धूप और नीचे से भी पहाड़ तप रहा है, उस समय उनके अंदर शीतलता कहाँ से आयेगी? किन्तु यही तो तपस्या का प्रभाव है, अतिशय है, आश्चर्य है। बाहर से तपते हुए भी अंतरंग से शीतल होते हैं जैसे–सूर्य बाहर से बहुत तपता है किन्तु अंतरंग में सूर्य बहुत ठण्डा है, किन्तु सूर्य के विमान मे रहने वाले एकेंन्द्रिय जीवों का आतप नाम कर्म का उदय है और आतप नाम कर्म की विशेषता होती है, उससे निकलने वाली किरणें गर्म होती हैं। जितनी दूर किरण जायेगी उतनी अधिक गर्म होती जायेगी यह आतप नाम कर्म का प्रभाव है। सूर्य के जितने समीप पहुँचते जायेंगे उतनी अधिक शीतलता आती जायेगी और सूर्य से जितनी दूर पहुँचेंगे उतनी आपको गर्मी होगी। आप कहेंगे महाराज जी! ये तो आप उल्टी बात कह रहे हैं बात बिल्कुल सीधी है, लेकिन वैज्ञानिकों ने तुम्हारी बुद्धि उल्टी कर दी है, सीधी करके देखो–''सर्दियों के दिनों में धूप तेज

सर्वोदयी चिन्तन

यदि तापसी बनकर भी इच्छाओं में कुछ कमी नहीं हुई तो तापसी का भेष धारण करना व्यर्थ है, संसार परिवर्धक भी हो सकता है।

क्यों नहीं होती? गर्मियों के दिनों में धूप तेज क्यों होती है? जबकि सर्दियों के दिनों में सूर्य अपने बिल्कुल पास में आ जाता है, गर्मियों के दिनों में सूर्य बहुत दूर चला जाता है। सूर्य की एक सौ चौरासी जो गलियाँ हैं उनमें वह

सर्वोदयी चिन्तन

सच्चा तपस्वी ख्याति, पूजा, लाभ, पद प्रतिष्ठा आदि समस्त लिप्साओं से बहुत दूर रहता है, जो यदि इन सबको चाहता है तो वह सच्चा तापसी नहीं और उसे बाहर का सब कुछ मिल सकता है किन्तु आत्मा का कल्याण नहीं।

चक्कर लगाता है। चौदह जनवरी के दिन सूर्य प्रथम गली में होता है, बिल्कुल निकट में आ जाता है, इसलिए सूर्य के विमान में विद्यमान उस अकृत्रिम चैत्य के दर्शन चक्रवर्ती अपनी अयोध्या नगरी के छियानवे वें खण्ड में खड़े हो करके करता है। साक्षात् उस अकृत्रिम चैत्य के पास आ जाता है क्योंकि सूर्य पहली गली में आ गया, बिल्कुल निकट आ जाता है इसलिए जब सूर्य निकट में आता है तो सर्दी पड़ती है, शीत काल की धूप ज्यादा तेज नहीं होती और जब सूर्य दूर पहुँच जाता है, समुद्र में पहुँच जाता है फिर सूर्य चक्कर लगाता है और बहुत दूर से जब किरणें आती हैं उसकी किरणें बहुत तेज होती हैं, पास में चक्कर लगाने में वह जल्दी घूम जाता है इसलिए सर्दी के दिन छोटे होते हैं और दूर से चक्कर लगाने में समय लगता है इसलिए गर्मियों के दिन बड़े होते हैं।

जो लोग ऐसा मानते हैं पृथ्वी गोल है, विश्व गोल है, वे नितान्त मूर्ख हैं। वैज्ञानिकों ने जितनी भी खोज की है वे सब अधूरी हैं। पृथ्वी गोल तो है किन्तु उन्होंने समीचीन खोज नहीं की, अभी आपने पृथ्वी का नक्शा ग्लोब के माध्यम से देखा होगा उसके माध्यम से समझ लेते हैं पृथ्वी गोल है, क्योंकि कोई कहता है नारंगी जैसी है, कोई कहता है सेब जैसी है, कोई कहता है थाली जैसी ये सब धारणायें मिथ्या हैं-मिथ्या हैं-मिथ्या हैं। यदि विश्व का नक्शा भी आप देखें तो आपको अलग-अलग दिखाई देंगे। जो आज का विश्व है, उसमें लगभग दो सौ बाइस देश माने जाते हैं, आर्य खण्ड का एक छोटा

सा टुकड़ा है। अभी वैज्ञानिकों ने पूरे आर्यखण्ड को भी नहीं खोज पाया। इसके अलावा पाँच मलेच्छ खण्ड हैं, पूरा भरत क्षेत्र आगे और भी क्षेत्र हैं, असंख्यात द्वीप और समुद्र हैं किन्तु उन्होंने कोई विशेष नहीं खोज पाया। लगता है गंगा और सिन्धु के बीच में जो आर्य खण्ड का थोड़ा सा टापू आ गया है उस टापू को ही सारा विश्व बता दिया है।

महानुभाव!

जैन शास्त्रों में उद्योत और आतप दो कर्म अलग-अलग कहे हैं। जिसने अंतरंग की भावनाओं से युक्त होकर के उपवास किया है उसे उपवास में बड़ा आनन्द आता है, और जो उपवास नहीं करता वह कहता है 'अरे तुम उपवास कर लेते हो तुम्हें कष्ट होता होगा, वेदना होती होगी किन्तु वह कहता है नहीं, बड़ा आनंद आता है, करने के पहले तो डर लगता है, होगा कि नहीं होगा, लेकिन अंतरंग में जब समता धारण किये रहें और हिम्मत से उपवास करते हैं, तो बड़ा आनंद आता है, ऐसा आनंद आता है कि हमने किसी युद्ध को जीत लिया हो, जितना आनंद किसी राजा को शत्रु की सेना के जीतने पर आता है, उतना ही आनंद उपवास करने वाले साधर्मी को आता है। उपवास करना शत्रु को जीतना ही तो है। एक उपवास के माध्यम से जितनी विशुद्धि होती है, उतने ही कर्मरूपी शत्रुओं पर विजय प्राप्त होती है। पंचम काल में चौबीस घंटे तक उपवास करना, आहार जल का त्याग करके रहना बहुत कठिन है। तप के मुख्य रूप से दो भेद होते हैं– 1. बाह्य तप, 2. अंतरंग तप।

सर्वोदयी चिन्तन

हे संयमी साधक महापुरुषों, ''तुम अपनी तपस्या की चर्चा अपने मुख से मत करो, तुम्हारी संयम साधना व तपस्या को देखकर सज्जन पुरुष स्वतः ही गुण ग्रहण करके झुक जायेंगे।''

छः बाह्य तप होते हैं और छः अंतरंग तप होते हैं। बाह्य तप की विशेषता है, कि बाह्य तप मिथ्या

दृष्टि भी कर सकता है। बाह्य तप उसे कहते हैं 'जिसे बाहर का व्यक्ति देख सके'। जिसे तुम किसी व्यक्ति को दिखा सको, अंतरंग तप की विशेषता है कि इसे अंतरात्मा ही कर सकता है। जिसे देख नहीं सकते, जिसे तुम दिखा नहीं सकते वह अंतरंग तप है। बाह्य तप छः प्रकार का होता है।

पहला है 'अनशन'। 'अन् + अशन', अशन का अर्थ होता है भोजन और अन् प्रत्यय लगा लिया, उसका अर्थ हो गया 'आहार का अभाव' अर्थात् 'उपवास'। चारों प्रकार के आहार का त्याग कर देना, 16 पहर के लिए तो वह 'अनशन उपवास' कहलाता है। केवल जल भी ले लेना अनुपवास कहलाता है। उपवास करने में जितना फल मिलता है उसका 7/8 हिस्सा अनुपवास में मिलता है, 1/8 हिस्सा पुण्य का कम हो जाता है। दूसरी बात ये भी है उपवास शब्द का आशय है–

'उपसमीपं वासं करोति, इति उपवासः'

समीप में वास करना, अपनी आत्मा के निकट वास करना, उपवास के दिन आरंभ-सारंभ कम करना चाहिए। उपवास करने पर कभी ऐसा होता है कि इतना गुस्सा, इतने झुंझला जाते हैं, पहले से कहते हैं, मेरे लिए ये बनाना, ये बनाना, यदि कमी हो गई तो कहीं थाली फेकेंगे, कहीं लोटा तो कहीं गिलास फेकेंगे। ये उपवास का फल है, कैसा रहा उपवास? ऐसा रहा उपवास, इतनी विशुद्धि बढ़ी कि खाने के लिए ऐसे टूट पड़े कि जैसे अकाल से मर रहे हों, नरक से निकलकर आये हों। अरे भले आदमी! ऐसे उपवास से तो दिन, दो दिन भोजन कर लेते लेकिन ऐसा उपवास कर्म निर्जरा का कारण नहीं होता है, अपितु उससे ज्यादा कर्म आस्रव का हेतु बन जाता है।

एक बार एक बालक ने उपवास कर लिया, उसकी माँ ने उससे बहुत मना किया, किन्तु उसने किसी भी बात नहीं सुनी।

'जिसने न मानी बड़ों की सीख, उसने माँगी खपरों की भीख'

इसलिए बड़ों की बात तो स्वीकार कर लेना चाहिए, यदि बड़े विश्वस्त हों तो वह तुम्हारे हित की ही बात करेंगे। सच्चे देव शास्त्र गुरु कभी अहित की बात नहीं कह सकते। अत: बड़ों की बात माननी चाहिए। उस लड़के ने अब बात तो सुनी नहीं, उसका स्वास्थ्य बिगड़ गया, उसके तो बसकी नहीं रही, न स्वाध्याय, न पूजन, न सामायिक, स्वाध्याय करते ही उसके शरीर में ऐसा धक्का सा लगा जैसे उसके प्राण ही निकल गये हों। जैसे-तैसे करके दिन तो उसने पार कर लिया अब रात्रि आयी, जब नींद नहीं आती है तो घड़ी बहुत धीरे-धीरे चलती है, कई बार ऐसा विकल्प हो जाता है कि घड़ी बंद तो नहीं है, सेल डाउन तो नहीं है। बालक की भी यही अवस्था हुई, बालक सोने का खूब प्रयास कर रहा है लेकिन नींद नहीं आ रही है। उसने अपनी मम्मी से पूछा, मम्मी आपके कितने बेटे हैं? बेटा, चार हैं, बोला– सवेरे तीने ही रह जायेंगे मुझसे भूख सहन नहीं हो रही, मुझे अभी भोजन चाहिए। यदि तुमने मुझे भोजन नहीं दिया तो मैं सुबह तक जीवित नहीं रह पाऊँगा।

कहने का आशय यह है कि जिसके अंदर इतनी आसक्ति है, उस त्यागी व्यक्ति से प्रतिदिन भोजन करने वाला व्यक्ति बहुत अच्छा है। क्योंकि त्याग करने का मुख्य उद्देश्य है 'आसक्ति कम हो' यदि तुम्हारी आसक्ति बढ़ रही है, तो त्याग से क्या लाभ हुआ। उस आसक्ति के बढ़ने से उस कर्म का आस्रव ज्यादा होगा, वस्तु छोड़ने से कर्म रुक नहीं जायेगा। कर्म का आस्रव वस्तु के लेने से ही नहीं होता, कर्म का आस्रव होता है परिणाम बनाने से। वस्तु तुमने कदाचित् ले ली तो भी इतने कर्म का आस्रव नहीं भी हो और नहीं भी ली लेकिन आसक्ति भाव रखा है तो बहुत सारे कर्म का आस्रव हो

सर्वोदयी चिन्तन

यदि संसार में तपस्वी साधक नहीं रहे तो संसार इन्द्रिय विषयों की इच्छा रूपी भयंकर आग की लपटों से जलकर भस्म हो जायेगा।

जाये।

तंदुल मच्छ-जो जीव हिंसा न करते हुए भी सातवें नरक में जीव हिंसा की भावना भाने से जाता है। राघवमच्छ हिंसा करके भी सातवें नरक में जाता है। ऐसा अनशन कार्यकारी नहीं होता है, उस अनशन में विषय कषायों का भी त्याग करना चाहिए। नीतिकारों ने भी कहा- भोजन का त्याग करना उपवास नहीं कहलाता वरन्-

सर्वोदयी चिन्तन

उन तपस्वी महापुरुषों के चरणों में अनंतशः प्रणाम करता हूँ जिन्होंने पाप पंक से बचकर इच्छा निरोध करते हुए द्वादश तपों को आत्म कल्याण हेतु अंगीकार किया है।

कषाय विषयाहारो त्यागो यत्र विधीयते।
स उपवास विजयो शेषं लङ्घनं विदुः॥

जिसमें कषायों का और पंचेन्द्रिय विषयों का त्याग किया जाता है, उसे ही उपवास जानना चाहिए अन्यथा जिस उपवास में भोजन का सेवन तुम कर रहे हो, कषायों का पोषण कर रहे हो वह उपवास-उपवास नहीं है अपितु भूखों मरना है। भूखों मरने से कल्याण नहीं होता जब तक परिणाम विशुद्ध नहीं हो। उपवास करने वाले तपस्वी वर्तमान में बहुत विद्यमान हैं जैसे तपस्वी सम्राट आचार्य सन्मति सागर ही महाराज हैं, इनकी उपवास करने की क्षमता देखते हैं तो श्रद्धा से मस्तक झुक जाता है। ऐसा तपस्वी वर्तमान में कोई भी दिखायी नहीं दिया। जिन्हें तपस्वी सम्राट कहा जाता है, लगातार दस-दस उपवास करना या एक आहार दो उपवास, एक आहार चार उपवास, पूरे चातुर्मास में बीस, पच्चीस, तीस आहार बड़ी मुश्किल से करते हैं, उनकी बहुत कठिन साधना है, वह बहुत बड़े साधक हैं। ऐसे तपस्वी के दर्शन ही पुण्य के प्रेरक होते हैं, उनके दर्शन पुण्य के उदय से ही होते हैं, उन्हें देखकर भावनाएँ पुनीत हो जाती हैं। आचार्य श्री विमल सागर जी महाराज सात-सात उपवास कर लेते थे। चातुर्मास में कभी एक आहार दो उपवास, दो आहार तीन

उपवास करते थे। आचार्य श्री शान्तिसागर जी महाराज भी हुए उन्होंने हजारों की संख्या में उपवास किये। तीर्थंकर बनने वाले महापुरुष अपने पूर्व भव में सिंहनिष्क्रीड़ित व्रत करते हैं। सिंहनिष्क्रीड़ित व्रत का अर्थ होता है 'एक आहार पुन: एक उपवास, फिर एक आहार दो उपवास, एक आहार तीन उपवास क्रमश: बढ़ते हुए पन्द्रह उपवास तक पहुँच गये, फिर पन्द्रह उपवास के बाद एक आहार फिर पन्द्रह उपवास फिर एक आहार फिर चौदह उपवास, एक आहार फिर तेरह उपवास क्रमश: घटते हुए क्रम से आये यह कहलाता है सिंहनिष्क्रीड़ित व्रत। आचार्य शांतिसागर महाराज ने यह सिंहनिष्क्रीड़ित व्रत किया। आचार्य सन्मति सागर जी महाराज के बारे में भी सुनने में आता है कि उन्होंने दस दिन का सिंहनिष्क्रीड़ित व्रत किया। पन्द्रह दिन के उपवास करने के उपरांत वह पुन: आहार लें, फिर पन्द्रह दिन के उपवास करें, यानि एक महीने के उपवास इस पंचमकाल के लिए प्रथम आश्चर्य की बात है और सब आश्चर्य इसके पीछे हैं। यह नौवाँ आश्चर्य नहीं पहला आश्चर्य है।

महानुभाव! ऐसे उपवास करने वाले तपस्वियों के प्रति सदैव, विनय, भक्ति का भाव बनाये रखना चाहिए यदि आप उपवास नहीं कर पाते हैं। अनशन तप में परम प्रसिद्धि को प्राप्त होने वाले थे प्रथम कामदेव बाहुबली भगवान् जिन्होंने दीक्षा लेने के उपरांत आहार किया ही नहीं, किसी के सामने जाकर हाथ फैलाये ही नहीं और इतने दीर्घ काल तक वे साधना भी करते रहे। आहार का त्याग करने वाले अंतिम तीर्थंकर भगवान् महावीर स्वामी 12 वर्ष के छद्मस्थ काल में मात्र उन्होंने दो सौ चौवन पारणा की यानि एक साल भी पूरा नहीं हुआ। बारह साल की अवधि में और सब उपवास किये, भगवान् आदिनाथ ने छ:-छ: महीने के उपवास किये। जो प्रथम पारणा हुआ था वह तेरह महीने आठ दिन के उपरांत हुआ था। अनशन बहुत बड़ी साधना है, जिसके माध्यम से संपूर्ण कामनायें,

वांछायें पूर्ण हो जाती हैं। अनशन तप प्रत्येक प्राणी के जीवन में ग्रहण करने योग्य है, अनशन अन्य कारणों से भी किया जाता है, ब्रह्मचर्य की रक्षा के लिए, संयम का पालन करने के लिए, समाधि के लिए, उपसर्ग आदि के निवारण करने के लिए, धर्म-ध्यान करने के लिए, कर्मक्षय के लिए, ज्ञान प्राप्ति के लिए, विषयों को जलाने के लिए इत्यादि कई कारणों से अनशन किए जाते हैं और अवमौदर्य इच्छाओं को निरोध करने के लिए किए जाते हैं। तप का अर्थ ही होता है।

सर्वोदयी चिन्तन

तपस्वी बाहर से तप्तायमान दिखतास हुआ भी सूर्य के समान अंदर में अत्यंत शीतल होता है, वह तपस्वी परम आनन्द का भोक्ता होता है।

'इच्छा निरोधः तपः'

इच्छाओं को रोकना, जिस भववर्द्धक कार्य को करने की इच्छा हो रही है, जिसे विषय सेवन करने की इच्छा हो रही है फिर भी उसका सेवन न करना, छोड़ देना, यह इच्छा का निरोध, इन्द्रियों को रोकना तप कहलाता है। अवमौदर्य का अर्थ होता है–

उदर से कम भोजन करना, जितनी भूख आपको लगी है, उससे कम भोजन करना। उत्कृष्ट अवमौदर्य वह कहलाता है, जिसमें मात्र एक चावल का आहार लिया जाता है। इस उत्कृष्ट अवमौदर्य में उपवास से भी ज्यादा निर्जरा होती है, क्योंकि सामने सभी सामान रखा हुआ है, फिर सब का त्याग करके एकमात्र चावल लेना है, यही उत्कृष्ट अवमौदर्य तप होता है, भूख से एक ग्रास कम लेना जघन्य अवमौदर्य कहलाता है। उत्कृष्ट अवमौदर्य करने वाले व्यक्तियों में गौतम बुद्ध का नाम आया। गौतम बुद्ध बौद्ध भिक्षु बनने से पूर्व दिगम्बर साधु थे। उन्होंने गहन साधना की, खूब कठोर तपस्या की, एक-एक चावल लेकर वे रहे। ''मैंने पाणिपात्र में आहार लिया है, मैं दिगम्बर भिक्षु बनकर के रहा, ये उनके जातक आदि ग्रन्थों में

आता है, लेकिन जब मुझे बोध की प्राप्ति नहीं हुई तो मैंने मार्ग परिवर्तन कर लिया और पुनः वस्त्रों को अंगीकार कर लिया।'' कहने का आशय यह है कि एक-एक चावल का आहार करने वाले भी महापुरुष हुए, ये भी बहुत बड़ी साधना है। व्यक्ति तो पेट से ज्यादा खाने का प्रयास करता है, यदि नहीं समाये तो वह और खाता है। और खाता है, ठूँस-ठूँस के दबा-दबा कर खाता है, जैसा कि उन ब्राह्मण पंडित जी, जो निमंत्रण में गए थे और उसे भोजन खिलाया उसने पेट भरकर खाया वह जजमान कहता है-'पंडित जी! यदि एक रसगुल्ला और खालो तो दस रुपये आपको दे दिए जायेंगे। पंडित जी कहते हैं, ''दस रुपये भी मिल रहे हैं, रसगुल्ला भी मिल रहा है, ले लें तो क्या है! पुनः कहता है, पंडित जी ये रखा है सौ का नोट दो रसगुल्ला खा लो, पंडित जी ने जैसे-तैसे हिल-हिल के दो रसगुल्ला और खा लिए। पंडित जी एक हजार रुपये की यह थैली रखी है, यदि चार रसगुल्ले खा लो तो! पंडित जी ने कहा अब तो गुंजाइश नहीं है, बस भर गयी, अरे पंडित! बस ही भरी है अभी कन्डक्टर की सीट तो खाली है, तो पुनः पंडित जी ने प्रयास किया पंडित जी ने कहा यदि चार रसगुल्ले और खा जाओ तो दस हजार रुपये मिलेंगे। पंडित जी ने कहा- अब नहीं खा पायेंगे, फिर भी दस हजार रुपये सामने रखे थे। 'ये लोभ जो नहीं करा दे वह थोड़ा है।' पंडित जी ने जैसे-तैसे खाने का प्रयास किया। पुनः पंडित जी से कहा-ये एक लाख रुपये रखे हैं, अब एक रसगुल्ला और खाना है, पंडित जी ने कहा ये तीन तो बड़ी मुश्किल से खा पाये हैं। लेकिन पंडित जी खाते-खाते उस चौथे को भी खाते हैं, वे सोचते हैं, इसके उपरांत ये खाना है, थोड़ी-सी भी जगह रह गयी, लाख रुपये मिल जायेंगे तो फिर भी खाने का प्रयास करते हैं। तीसरा खाकर, चौथा खाते-खते लुढ़क जाते हैं। अब उनसे खड़ा नहीं हुआ गया उनके लड़के को फोन किया गया तुम्हारे पिता जी लुढ़क गए हैं। वह बेचारा लड़का आया, पिताजी को उठाने के लिए, चार व्यक्तियों से

उठवाया बड़ी मुश्किल से सांकल पकड़ कर खड़ा हुआ और जैसे-तैसे उसे गाड़ी में डाल दिया डॉक्टर के पास ले गए डॉक्टर ने देखा कोई बीमारी तो नहीं दिखती है, बात क्या है? कुछ नहीं उल्टी सी आ रही है और यह रसगुल्ला आधा रह गया है, इसे खाना चाहता था। बात क्या है? एक काम करो पाचन करना है, चार हाजमोला की गोली खा लो। अरे डॉक्टर साहब! यदि चार हाजमोला की गोली खाने की जगह होती तो रसगुल्ला को छोड़कर क्यों आता।

''जो दबा-दबा के खाते हैं, वे ही दवाखाने जाते हैं।
जो दबा-दबाकर नहीं खाते हैं, वे दवाखाने नहीं जाते हैं॥''

अवमौदर्य का अर्थ है अपनी इच्छाओं को कम करना, अपनी आसक्ति को कम करना, जितनी भावना खाने के लिए हो रही है और पेट में जगह भी है, फिर भी इच्छा को रोक देना ही तप कहलाता है।

महानुभाव!

इसके उपरांत तीसरा तप है 'व्रतपरिसंख्यान'। एक नियम ले लेना, एक सीमा बांध लेना, परिधि खींच लेना कि इतने स्थान में, मैं वृत्ति करूँगा। साधु लोग जब आहार के लिए जाते हैं तो अपने मन में कोई संकल्प लेकर जाते हैं, कि इस प्रकार नियम मिलेगा तो मैं आहार करूँगा अन्यथा आहार नहीं करूँगा। व्रतपरिसंख्यान व्रत भी दो प्रकार का होता है–1. नियम रूप से, 2. यम रूप से।

एक तो ऐसा संकल्प लेकर जाते हैं, कि इस प्रकार नियम मिलेगा तो मैं आहार करूँगा अन्यथा आहार नहीं करूँगा। भले ही जीवन भर न मिले। ये कहलाता है, यम रूप से व्रतपरिसंख्यान।

एक होता है नियम रूप से कि आज की हमारी विधि ये है, इस

सर्वोदयी चिन्तन
संसार की किसी भी वस्तु को प्राप्त करना असंभव नहीं है यदि तुम्हारे अन्दर तप करने की सामर्थ्य विद्यमान है।

प्रकार की विधि मिलेगी तो हम आहार करेंगे अन्यथा आहार नहीं करेंगे। ये विधि आज के लिए है, कल दूसरी विधि लेंगे। व्रतपरिसंख्यान नियम की कोई सीमा नहीं है।

दूसरे शब्दों में व्रतपरिसंख्यान व्रत नियम को कहते हैं। अटपटी प्रतिज्ञा यानि जैसा मन में आया और साधु को भी नहीं मालूम कि कल क्या विधि लेंगे? जब आहार के लिए निकला मन में आया वो विधि ले ली। श्रावक कहता है, 'जब विधि न मिले तब महाराज जी! आप न जाने कैसी विधि लेते हैं, एक काम करो सभी विधियों के नाम लिखा दो जितनी भी विधि होती है, उतनी सारी वस्तुयें हम चौके में रखेंगे!' 'राग-द्वेष की निवृत्ति के लिए विधि ली जाती है।' व्रत परिसंख्यान व्रत द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव की अपेक्षा से कई प्रकार के हो सकते हैं। द्रव्य की अपेक्षा से, कि साढ़े दस बजे या (अन्य कोई समय) यदि कोई व्यक्ति मुझे उस अमुक स्थान पर पड़गाहने के लिए खड़ा होगा तो मैं आहार करूँगा अन्यथा नहीं करूँगा। क्षेत्र की अपेक्षा-आज पूर्व दिशा की ओर जाऊँगा और इस गली में मैं जाऊँगा। यदि किसी व्यक्ति ने मुझे पूर्व की गली में पड़गाहन किया तो आहार करूँगा, 15 घरों में आहार के लिए जाऊँगा, सोलहवें घर में गोचरी के लिए, चर्या के लिए नहीं जाऊँगा। उन पन्द्रह घरों में से किसी ने पड़गाहन कर लिया तो आहार करूँगा, आदि अनेक क्षेत्र की अपेक्षा से पड़गाहन किया जा सकता है। इस विधि में भीम मुनिराज का नाम प्रसिद्ध हुआ। उनके बारे में कहा जाता है, बहुत अच्छा आहार करते थे। एक बार वैदिक परम्परानुसार सुनने में आया कि जहाँ कीचक की मृत्यु हुई थी, (जैनागम में आता है, कि मोक्ष भी गया और मृत्यु भी हुई दो प्रमाण प्राप्त होते हैं।) तो उसे लेकर कौन जाए? कीचक के बारे में कहा जाता था कि उसमें दस हजार हाथी के बराबर बल था। किन्तु भीम में साठ हजार हाथी के बराबर बल था। कीचक की विशेषता वैदिक

परम्परानुसार मानी जाती है, कि यदि कीचक को कोई मारे और कीचक के खून की एक बूँद जमीन पर गिर जाये तो सौ कीचक वहाँ उत्पन्न हो जायें किन्तु भीम ने उसे मुक्कों से, घूसों से मार दिया। अब संस्कार करने के लिए कौन उसे लेकर आये तो उस भीम के बारे में आता है कि उसने कीचक के दोनों पैरों को काखों में दबाया और घसीट कर ले गया।

सर्वोदयी चिन्तन

तप कल्याणक को मैं तीर्थंकर के अन्य सभी कल्याणकों से श्रेष्ठ मानता हूँ क्योंकि उस के बिना ज्ञान व मोक्ष कल्याणक नहीं हो सकते।

एक बार भीम जब मुनि बन गए तो उन्होंने नियम ले लिया कि अगर कोई मुझे भाले से पड़गायेगा तो मैं पड़गूँगा और पड़गाहन के समय एक भी व्यक्ति ऐसी धातुओं का प्रयोग नहीं करता साधु के सामने। अब कौन पड़गायेगा? बहुत समय हो गया भ्रमण करते-करते विधि नहीं मिली। एक बार रानी को स्वप्न हुआ ये विचार मन में आया कि भीम मुनिराज की विधि बहुत दिनों से नहीं मिली, पड़गाहन करना है।' सभी सामान पड़गाहन वाले रखे थे। राजा रानी ने पड़गाहन किया तभी रानी के मन में विचार आया, भाले से पड़गायेंगे। राजा कहता है– तुम पागल तो नहीं हो गयी हो, उपवास तो मुनि महाराज के हो रहे हैं, गर्मी उन्हें चढ़ना चाहिए। तुम पागल क्यों हो रही हो? किन्तु रानी कहती है, मेरे मन में आज भाले से पड़गाहन करने को मन में आ रहा है। वह जल्दी से महल में जाती है और महल में जो सोने के भाले रखे थे उसे लेकर खड़ी हो जाती है, संयोग की बात भीम महाराज पड़ग जाते हैं। पड़गाहन के बाद महाराज अंदर चौके में गये। अब आहार प्रारम्भ हुआ, महाराज ने जल तो ले लिया, लेकिन आहार नहीं लिया। बड़ा मुश्किल है जल लेते जाए, तभी रानी के मन में आया 'कि आहार भी भाले की नोंक से दें' जैसे ही भाले की नोंक से आहार देना शुरू किया वैसे ही महाराज ने आहार लेना प्रारम्भ कर दिया। ऐसी कठिन तपस्या करने

वाले भीम मुनिराज हुए। वर्तमान काल की अपेक्षा से व्रतपरिसंख्यान व्रत में आचार्य शान्तिसागर मुनिराज भी प्रसिद्धि को प्राप्त हुए। उनके भी कठिन-कठिन नियम थे। उन्होंने एक बार कटनी में, जब उनका चातुर्मास हुआ था तब नियम लिया कि बैल के सींग पर गुड़ हो तभी मैं आहार करूँगा। कटनी में उनके कई उपवास हो गये। जब उनकी विधि नहीं मिली तब एक सप्ताह बाद संयोग से जिस समय बैलगाड़ी में गुड़ (की परिया होती थी), वह रखकर जा रहे थे। संयोग से एक सांड दौड़ता हुआ आया, गाय के पीछे दौड़ रहा था। गाय तो एक तरफ हो गई और उसने गुस्से में आकर पारी में ठोकर मारी तो उसका सिर परिया में लगा तो गुड़ की परिया थी वो तो नहीं फंसी लेकिन थोड़ा-सा गुड़ सींग पर चिपका रहा। संयोग की बात ही है' दस बजे का समय था, शान्ति सागर जी महाराज अपने संघ के साथ अपने नियम सहित आहारचर्या के लिए निकले और सांड दौड़ता हुआ निकला सींग में गुड़ दिखाई दे गया और सामने वाले चौके में पड़ग गए। पुन: आहार के उपरांत उनसे पूछा महाराज! आप कौन-सी विधि से पड़गे थे? ये सामान तो हम रोज ही रखते थे, आज भी आप उसी विधि से पड़ग गये, लगता है शायद आज आपने विधि परिवर्तित कर ली होगी। उन्होंने कहा-भैया मेरी विधि तुमसे नहीं मिली, मेरी विधि उस सांड ने मिलायी, वह सांड कौन है। कह नहीं सकते। वह सांड गायब हो जाता हैं। कहने का आशय यह है कि एक बुद्धि ऐसी भी प्राप्त होती है, हो सकता है कि देव ने ही आकर विधि मिलायी हो, हो सकता है उस सांड की बुद्धि ऐसी हो गयी, किसी देव ने उसकी बुद्धि वैसी ही कर दी हो जैसा भी हुआ हो। महाराज की विधि मिली आहार हुआ।

एक बार शान्तिसागर महाराज ने इन्दौर में एक विधि ली कि ''जमीन पर हीरे-मोती पड़े हों, तब आहार ग्रहण करेंगे।'' अब पड़गाहन करते समय व्यक्ति अपनी माला तो उतार कर पड़गाहन कर सकता है, किन्तु जमीन पर कौन डालेगा। महाराज शान्ति सागर

जी की विधि बहुत दिनों तक नहीं मिली, जब एक सप्ताह से अधिक हो गया तो सेठ हुकुम चन्द जी उस पड़गाहन में शामिल हुए और उनकी लड़की भी जिसकी शादी हुए कुछ ही दिन हुए थे, वह अपनी ससुराल से आयी थी और समस्त आभूषणों को पहने हुई थी। भीड़ बहुत ज्यादा लगी हुई थी, उस भीड़ में पड़गाहन करने की सभी की भावना थी कि महाराज के बहुत उपवास हो गये, कैसे विधि मिले। उस भीड़ में उस लड़की के गले का हार टूट गया, वह हार-रत्नों से जड़ित था, वह हार पूरे मध्य प्रदेश में एक ही था। संयोग से हार का टूटना हुआ, जमीन पर गिरना हुआ, उसी समय महाराज का आना हुआ और हार को जमीन से उठा नहीं पाया था, तब तक महाराज की नजर वहाँ पड़ गयी, जमीन पर हीरे-मोती पड़े देखकर महाराज वहाँ पड़ग जाते हैं। आचार्य सुधर्म सागर महाराज के बारे में भी आता है, उन्होंने एक बार इन्दौर में विधि ले ली थी कि कोई आम से पड़गायेगा तो पड़गूँगा। जब कई दिनों तक उनकी विधि नहीं मिली तब आचार्य विमलसागर जी महाराज पंडित नेमिचन्द्र अवस्था में थे। वे मुम्बई से लौट रहे थे, उन्हें विदाई में श्रीफल के स्थान पर एक आम भेंट किया था। जब वे आये तो उन्होंने देखा कि महाराज की विधि नहीं मिल रही है, उस समय उनकी बुआ चौका लगा रही थी। जैसा भी रहा हो, वे किसी चौके में खड़े हो जाते हैं, जब पड़गाहन नहीं होता है महाराज लौटकर चले जाते हैं। नेमिचन्द्र जी ने सोचा कि जो मेरे पास आम है एक नयी चीज है, उसे ही लेकर खड़े हो जायें। यद्यपि वे जानते थे कि ये बिना सीजन (मौसम) की वस्तु है, ये विधि तो नहीं लेंगे फिर भी बिगड़ता क्या है? जब है तो सामने लेकर खड़े हो जाओ और जैसे ही नेमिचन्द्र पंडित जी उस आम को लेकर खड़े होते हैं। महाराज सुधर्म सागर जी पड़ग जाते हैं, उनका आहार हो जाता है।

महानुभाव!

इसके उपरांत आता है 'रसपरित्याग' अर्थात् छः प्रकार के रस होते हैं, या पाँच प्रकार के होते हैं–खट्टा, मीठा, कड़वा, चरपरा, कसैला। इनमें से एक–दो, चार या पाँचों का त्याग कर देना परित्याग है। छः प्रकार के रस–नमक, मीठा, दूध, घी, दही, तेल। अपनी रसना इन्द्रिय को जीतने के लिए आचार्य विमलसागर जी महाराज, आचार्य सन्मति सागर जी महाराज और भी अन्य आचार्य ऐसे हैं, जिनके प्रायः चार-चार, पाँच-पाँच रसों के आजीवन त्याग थे। इस कलिकाल में यह भी एक आश्चर्य है। इसके उपरांत अलग तप है–'विविक्तशय्यासन' अर्थात् शय्या और आसन सम्बन्धी कष्टों को सहन करना, एकान्त में वास करना, ऐसी साधना विविक्तशय्यासन कहलाती है।

अंतिम बहिरंग तप है कायक्लेश। कायक्लेश का अर्थ है–शरीर को कष्ट देना, खूब कष्ट देना, फिर भी परिणामों में विकल्प नहीं आये, परिणाम रंच मात्र भी खराब न हों, यह कायक्लेश तप है। छः अंतरंग तप होते हैं–पहला है 'प्रायश्चित' कोई गलती हो जाने पर कोई दोष हो जाने पर अपने गुरु के पास जाना और निवेदन कर देना कि पूज्यवर मेरे द्वारा ऐसा अपराध हुआ है, क्षमा करें। प्रायश्चित देकर मेरी आत्मा को परिशुद्ध करें। जितनी जल्दी गलती का प्रायश्चित ले लिया जाता है उतनी ही जल्दी चेतना की परिशुद्धि हो जाती है, उन अपराधों से उन दोषों से आत्मा मुक्त हो जाती है। जितनी देर लगायी जाती है, उतना कर्म आस्रव अधिक चलता रहता है। प्रायश्चित मिथ्यादृष्टि नहीं ले सकता। अंतरंग आत्मा से तो प्रायश्चित सम्यग्दृष्टि ही ले सकता है। दण्ड अलग चीज है, प्रायश्चित अलग चीज है। दण्ड दिया जाता है, प्रायश्चित लिया जाता है। दण्ड

सर्वोदयी चिन्तन

तीर्थंकरादि महापुरुषों के तप कल्याणक में लौकान्तिक देव (ब्रह्मर्षि) आते हैं, अन्य कल्याणकों में नहीं, क्यों?

अपराध को दूर करने के लिए एक अपराधी की सजा है जबकि प्रायश्चित आत्मा की शुद्धि करने वाला तप है। प्रायश्चित आलोचना के दोषों से रहित होकर के लिया जाता है।

सर्वोदयी चिन्तन

हे तपस्वी.... साधकों! यदि तुम ही तपस्या करने से जी चुराओगे तो क्या साधना व तपस्या असंयमी लोग करेंगे, और तुम्हीं आत्म-साधना के सागर में डुबकी लगाने से प्राप्त होने वाले गुण रत्न, मणियों को पाने का प्रयास नहीं करोगे तो क्या असंयमी श्रावक संयम, साधना, तप का अपलाप नहीं करेंगे।

''प्रायश्चित का शाब्दिक अर्थ है–'प्राय: + चित्तं''

चित्त की शुद्धि के लिए जो उपाय किए जायें वह प्रायश्चित है। सबसे बड़ा प्रायश्चित तो यही है अपने अपराध का बोध हो जाना कि हमसे ऐसी गलती हुई है, उसे तुम्हारी आत्मा स्वीकार कर ले। प्रायश्चित अपनी आत्मा की विशुद्धि के लिए स्वत: ही आत्म निंदा, आत्मगर्हा होती है कि वास्तव में मेरे द्वारा कोई गलती तो हुई है। आगे गलती न हो, जो हो गया उसकी परिशुद्धि के लिए प्रायश्चित नहीं हो, उसके लिए गलती का प्रत्याख्यान ये तो साधक की भूमिका होती है। साधक प्रायश्चित से कभी घबराता नहीं, चाहे जितना भी प्रायश्चित दिया जाये। यदि बड़ा प्रायश्चित भी दे दिया तो भी रंचमात्र भी घबराता नहीं है। हमें यह अवश्य देख लेना चाहिए कि जिससे हम प्रायश्चित ले रहे हैं, वो सभी पापों से मुक्त हो, परिशुद्ध हो। पूज्य पुरुष सामने यदि नहीं है, तो आगम के अनुसार पंचपरमेष्ठी के सामने स्वयं प्रायश्चित शिष्यों को देकर शुद्ध करने का प्रयास करें।

दूसरा तप है–'विनय'। विनय कोई सामान्य चीज नहीं है। अहंकार पतन का मार्ग है तो विनय भी उत्थान का मार्ग है। ''मान नरक का द्वार है, तो विनय मोक्ष का द्वार है, किन्तु विनय को हर कोई नहीं कर सकता। विनय भाव सम्यक् दृष्टि धारण कर सकता है, अंतरंग से परिणाम सम्यक् दृष्टि के हो सकते हैं। वह पाँच प्रकार

के विनय–दर्शन, ज्ञान, चारित्र, तप और उपचार विनय ये पाँच प्रकार की विनय सम्यक् दृष्टि कर सकता है। विनय भी अंतरंग तप है, इससे कर्मों की निर्जरा होती है।

तीसरा तप है ''वैय्यावृत्ति'' वैयावृत्ति वही कर सकता है जिसके अंतरंग में विनय हो, वात्सल्य हो, श्रद्धा हो, भक्ति हो, समर्पण हो क्यों कि दूसरे के शरीर को दबाना, सेवा करना आसान बात नहीं है। ग्लानि को जीतना, अहं को तोड़ना, बिल्कुल झुक जाना वही वैय्यावृत्ति कर सकता है। इसलिए आचार्यों ने कहा–

''निशदिन वैयावृत्ति करैया, सो निश्चय भव नीर तिरैया।''

आचार्य वीरसेन स्वामी ने कहा–वैयावृत्ति करने वाला व्यक्ति उत्तम वज्रवृषभनाराच संहनन को प्राप्त कर लेता है। वज्रवृषभनाराच संहनन वाला व्यक्ति ही क्षायिक सम्यक्त्व और क्षपक श्रेणी को प्राप्त करने का अधिकारी होता है। कहने का आशय यह है कि उत्तम संहनन भी मोक्ष में कारण है। आचार्य समन्तभद्रस्वामी ने वैय्यावृत्ति के बारे में रत्नकरण्ड श्रावकाचार में कथन किया है। उन्होंने अन्य अणुव्रतों की तो दो–दो गाथायें कहीं हैं किन्तु वैय्यावृत्ति के बारे में दस–बारह गाथायें कहीं, उसका स्वरूप बहुत विशाल है। वैय्यावृत्ति के बारे में बहुत से आचार्यों ने बहुत विस्तार से कथन किया है। चार प्रकार का दान भी वैय्यावृत्ति है, पूजा करना भी वैय्यावृत्ति है, सेवा करना भी वैय्यावृत्ति है। साधक की साधना में जिस किसी प्रकार से सहयोगी बन जाना भी वैय्यावृत्ति है। यदि उनकी साधना के लिए और भी किसी प्रकार से सहयोगी बन रहे हैं, वे सब वैय्यावृत्ति कहलाती है। महानुभाव! मुख्यतः आज वैय्यावृत्ति में देखने को मिलता है कि वैय्यावृत्ति में सबसे आगे महिलायें हैं, पुरुष वर्ग वैय्यावृत्ति में कथंचित् पीछे हैं। उन्हीं के द्वारा बनाये गए आहार के माध्यम से ही साधक चौबीस घंटे की साधना करता है। यदि वे शुद्ध आहार, शुद्ध भावना से आहार नहीं बनाये और न दे, तो मुझे लगता

है, साधक चौबीस घंटे भी साधना नहीं कर पायेगा। केवल हाथ-पैर दबाने से साधना नहीं हो पाती उसके लिए आहार भी आवश्यक है।

इसके उपरांत है "स्वाध्याय"।

स्वाध्याय का आशय होता है, स्व (अपनी आत्मा) अध्याय (पाठ)। अपनी आत्मा को पाठ बनाकर शास्त्र को आधार बनाकर पढ़ते जाओ, अपनी आत्मा को देखते जाओ यही स्वाध्याय है। स्वाध्याय पाँच प्रकार का होता है—वाचना, पृच्छना, अनुप्रेक्षा, आम्नाय और धर्मोपदेश। ये पढ़ना तो बाह्य होता है। अनुप्रेक्षा नाम का स्वाध्याय अंतरंग तप है और अंतरंग तप सम्यग्दृष्टि ही कर पाता है।

अगला तप है "व्युत्सर्ग" इसे कायोत्सर्ग भी कह सकते हैं। कायोत्सर्ग का आशय है—शरीर से ममत्व का त्याग करना, कुछ नियम काल के लिए शरीर से ममत्व छोड़कर पंचपरमेष्ठी का ध्यान करना, णमोकार मंत्र का स्मरण करना, पंचमरमेष्ठी के गुणों का स्मरण करना, ये कायोत्सर्ग कहलाता है। काय (शरीर), उत्सर्ग (छोड़ना) शरीर से ममत्व भाव को छोड़ देना वह भाव सहित कायोत्सर्ग सम्यग्दृष्टि ही कर पाता है, अंतरात्मा कर पाता है, मिथ्यादृष्टि नहीं कर पाता। कायोत्सर्ग चार प्रकार का होता है—

1. खड़े होकर कायोत्सर्ग करना अर्थात् बाहर से भी खड़े और अंतरंग के परिणाम भी विशुद्ध हैं।
2. बाहर से खड़े हैं, किन्तु अंतरंग में परिणाम बैठे हुए हैं अर्थात् परिणाम धर्मध्यान में नहीं लग रहे हैं, कायोत्सर्ग कर रहे हैं।
3. बाहर से बैठकर कायोत्सर्ग कर रहे हैं किन्तु अंतरंग के परिणाम आपके विशुद्ध हैं, संलग्न हैं, लगे हुए हैं, परमविशुद्धि को प्राप्त हैं।
4. बाहर से भी बैठे हुए, अंतरंग से भी बैठे हुए।

इस चार प्रकार के कायोत्सर्ग में दो कायोत्सर्ग ग्राह्य हैं—अर्थात्

अंतरंग से खड़े और बाहर से खड़े और अंतरंग में खड़े बाह्य में बैठे। शेष दोनों हेय हैं।

इसके उपरांत अंतिम तप है—"ध्यान"

चित्त की एकाग्रता को ध्यान कहते हैं। मन को किसी एक ही पदार्थ में, ज्ञान को एक ही विषय में लीन कर देना ध्यान कहलाता है। वह ध्यान सामान्य प्रकार से चार प्रकार का होता है—आर्तध्यान, रौद्रध्यान, धर्मध्यान और शुक्ल ध्यान। आर्तध्यान का अर्थ होता है, जिसमें परिणाम संक्लेशित हों, दु:खी हों वह आर्तध्यान कहलाता है। ऐसा आर्तध्यान चार प्रकार का होता है—इष्टवियोग, अनिष्ट संयोग, पीड़ा चिन्तन और निदान बंध। रौद्रध्यान में परिणाम रुद्र होते हैं कषाय के तीव्र आवेग से युक्त होते हैं, उसमें हिंसाजन्य परिणाम होते हैं। वह रौद्रध्यान भी चार प्रकार का होता है—हिंसानंदी, मृषानंदी, चौर्यानंदी और परिग्रहसंरक्षणानंदी। आर्तध्यान तिर्यंचगति का कारण है। रौद्रध्यान नरक गति का कारण है। धर्मध्यान का अर्थ है, किसी भी धर्म का सहारा लेकर के उसमें लीन हो जाना ध्यान है। ये मुख्य रूप से चार प्रकार का है—आज्ञाविचय, अपायविचय, विपाकविचय, संस्थानविचय। ये स्वर्ग का कारण है। कथंचित यह मनुष्यगति का भी कारण हो सकता है। इसी प्रकार चार प्रकार के शुक्ल ध्यान होते हैं—पृथक्त्ववितर्क, एकत्ववितर्क, सूक्ष्मक्रियाप्रतिपाति और व्युपरतक्रिया निर्वृति।

इन सोलह ध्यानों में आर्त, रौद्रध्यान हेय और धर्म, शुक्ल ध्यान उपादेय तथा धर्म के हेतु हैं। सभी साधर्मी बंधुओं को उस धर्म ध्यान में संलग्न होना चाहिए क्योंकि पंचम काल में शुक्लध्यान की प्राप्ति नहीं होती है, धर्मध्यान प्राप्त कर सकते हैं, उसे प्राप्त करें और तप को अपने जीवन में महत्व दें। अपने कर्मों को नष्ट करने में सक्षम हों तथा आप भी उस परमस्थान और मोक्ष स्थान को प्राप्त कर सकें। इन्हीं सद्भावनाओं के साथ आप सभी लोगों के लिए बहुत-बहुत आशीर्वाद।

अर्थ सहित कुछ छंद

तपो मनोऽक्षकायानां, तपनात् सन्निरोधनात्।
निरुच्यते दृगाधावि, भवियेच्छानिरोधनम्।।

अर्थ—मन और इन्द्रियों के निरोध को और शरीर के तपाने को तप कहा जाता है एवं दर्शन आदि की अभिव्यक्ति के लिए इच्छाओं का निरोध करना तप है।

यद्वा मार्गऽविरोधेन, कर्मोच्छेदाय तप्यते।
अर्जयत्यक्षमनसो-तत्तपो नियमक्रिया।।

अर्थ—अथवा जिन मार्ग के अविरोध पूर्वक कर्मों का उच्छेद करने के लिए जो इन्द्रिय और मन को वश में करता है, वह तप कहलाता है।

अन्तर्बहिर्मलप्लोषा, दात्मनःशुद्धिकारणं।
शरीरंमानसं कर्म, तपः प्राहुस्तपोधनाः।।

अर्थ—अंतरंग और बहिरंग मल को जलाकर आत्मा की शुद्धि का कारण जो शारीरिक और मानसिक कर्म है उसे तपोधन तप कहते हैं।

ध्रुवं च सिद्धिश्चतुर्ज्ञान-स्तीर्थकृत् त्रिदशार्चितः।
अनिगूहितबंलंवीर्य, मुद्यतः कुरुते तपः।।

अर्थ—इन्द्रों द्वारा पूजनीय चार ज्ञान के धारक तीर्थंकरों को मुक्ति निश्चित है फिर भी वे बल को न छुपाकर शक्ति को बढ़ाकर तप करते हैं।

त्यजतु तपसे वक्रं चक्री यतस्पतसः फलं,
सुखमनुपमं स्वोत्थं, नित्यं ततो न तदद्भुतम्।
इदमिह महच् चित्रं, यत्तद् विषं विषयात्मकं,
पुनरपि सुधी स्त्यक्तं, भोक्तु जहाति महातपः।।

अर्थ—चक्रवर्ती तपश्चरण के लिए चक्रवर्तीपने को छोड़ता है तो छोड़ो, क्योंकि तपस्या का फल अनुपम आत्मजनित शाश्वत सुख होता है। अत: यह कार्य तो आचर्श्यजनक नहीं है परंतु इस लोक में यह बड़ा आश्चर्य है कि लोग सुबुद्धिपूर्वक छोड़े हुए विषय रूप विष को पुन: भोगने के लिए बड़ी तपस्या को भी छोड़ बैठते हैं।

आत्मनस्तपसा तुल्यं, न हितं विद्यते परं।
तस्मात् सर्वात्मना भवैयस्तस्मिन् यत्नो विधीयताम्॥

अर्थ—तप के समान आत्मा का हितकारी कोई दूसरा नहीं है इसलिए भव्यों को शक्ति के साथ तप में प्रयत्न करना चाहिए।

आत्मशुद्धिरियं प्रोक्ता, तपसैव विचक्षणै:।
किमग्निना बिना शुद्धि, रस्ति कांचनशोधने॥

अर्थ—बुद्धिमानों के द्वारा तप से ही आत्म शुद्धि कही गई है, क्या अग्नि के बिना स्वर्ण शुद्ध होता है? अर्थात् नहीं।

वरिससहस्सेण पुरा, जं कम्मं खवड तेण काएण।
तं संपहि वरिसेण हु, णिज्जरइ हीरणसंहणणे॥

अर्थ—पहले जिन कर्मों की उत्तम संहनन के द्वारा हजार वर्षों में निर्जरा होती थी। वर्तमान में हीन संहनन के द्वारा वे कर्म एक वर्ष की तपस्या में निर्जरा को प्राप्त हो जाते हैं।

दानेन पूजया साधु:, शोभते गृहिणां तप:।
ज्ञानेन क्षमया राग, द्वोषत्यागेन योगिनाम्॥

अर्थ—दान, पूजा में गृहस्थों का तप सुशोभित होता है एवं ज्ञान, क्षमा तथा राग-द्वेष के त्याग से साधुओं का तप सुशोभित होता है।

यावत् स्वास्थ्यं शरीरस्य, यावच्चेन्द्रियसम्पद:।
तावद् युक्तं तप: कर्तुम्, वार्धक्ये केवलं श्रम:॥

अर्थ—जब तक शरीर स्वस्थ है और इन्द्रियाँ समर्थ हैं तब तक तप करना योग्य है, वृद्धावस्था में तप करना केवल परिश्रम के लिए होता है।

बाह्यं तपः षड्विधमात्मशक्त्या, तथाऽन्तरंगं सकलंदिधक्त्या।
कर्मेन्ध दाहोर्ध्वगतिप्रकाशकं, विधीयतां पावकसन्निकाशम्॥

अर्थ–कर्म रूपी ईंधन को जलाने के लिए अग्नि के समान एवं ऊर्ध्वगति का प्रकाशक छः प्रकार का अंतरंग एवं छह प्रकार का बहिरंग तप शक्ति के अनुसार करना चाहिए।

तत्तपोऽभिमतं बाह्यं, येन चेतो न दुष्यति।
जायते येन च श्रद्धा, येन योगक्षति र्च न॥

अर्थ–जिससे मन दूषित न हो, श्रद्धा उत्पन्न हो, ध्यान में बाधा न आये, वह बाह्य तप माना गया है।

बाह्योस्तपोभिः कायस्य, कर्शनादक्षमर्दने।
छिन्नबाहुर्भट इव, विक्रामति क्रियन्मनः॥

अर्थ–बाह्य तपों के द्वारा शरीर के कृश तथा इन्द्रियों का दमन हो जाने पर बाहु कटे योद्धा की तरह मन कितना पुरुषार्थ करता है अर्थात् शरीर के कृश और इन्द्रियों के दमन हो जाने पर मन शान्त हो जाता है।

अहर्निशं जागरणोधतो जनः, श्रमं विद्यते विषयेच्छया यथा।
तपः श्रमं चेत् कुरुते तथा क्षणं, किमश्नुतेऽनन्तसुखं न पावनम्॥

अर्थ–जैसे मनुष्य विषय प्राप्ति की इच्छा से दिन-रात जागृत रहकर श्रम करता है उसी प्रकार यदि तपश्चरण में एक क्षण भी परिश्रम करे तो क्या पवित्र अनन्त सुख को प्राप्त नहीं होगा?

संयमादिप्रसिद्ध्यर्थं, रागविच्छेदनाय च।
कर्मनिर्मूलनायाहु, राद्यंत्वनशनं तपः॥

अर्थ–संयम की प्रसिद्धि के लिए, राग का उच्छेद करने के लिए तथा कर्मों का नाश करने के लिए पहला अनशन तप कहा गया है।

यदज्ञानेन जीवेन, कृतं पापं सुदारुणम्।
उपवासेन तत्सर्वं, दहत्याग्निरिवेन्धनम्॥

अर्थ–जीव ने अज्ञानता पूर्वक जो भयंकर पाप किये थे वे सभी

पाप उपवास से उस प्रकार नष्ट हो जाते हैं। जिस प्रकार अग्नि से ईंधन जल जाता है।

जीवेन यानि पापानि समुपात्तानि संसृतौ।
संहरेत् प्रोषधस्तानि, हिमवत् पद्मसंचयम्।।

अर्थ–जीव ने संसार में जो पापों का संचय किया है उन सभी पापों को प्रोषधोपवास उसी तरह नष्ट कर देता है जिस प्रकार तुषार कमल वन को नष्ट कर देता है।

उपेत्यक्षाणि सर्वाणि, निवृत्तानि स्वकार्यतः।
वसन्ति यत्र प्राज्ञै, रूपवासोऽभिधीयते।।

अर्थ–समस्त इन्द्रियाँ जहाँ पर अपने विषयों से विमुख होकर आत्मा में वास करती हैं वह बुद्धिमानों के द्वारा उपवास कहा जाता है।

विषयाहारकषायाणं, त्यागो यत्र विधीयते।
उपवासः स विज्ञेयः शेषं लंघनकं विदुः।।

अर्थ–जहाँ पर पाँचों इन्द्रियों के विषयों का, चारों प्रकार के आहार का और चारों कषायों का त्याग किया जाता है वह उपवास कहलाता है, शेष को लंघन जानना चाहिए। दाल, चावल, रोटी आदि को खाद्य, पान, इलायची आदि को स्वाद्य, चटनी, रबड़ी आदि को लेह्य और दूध-पानी को पेय कहते हैं, ये चार प्रकार के आहार कहलाते हैं।

एक्कं पि णिरारंभो उपवासं जो करेदि उचसंतो।
बहुभवसंचिय कम्मं, सो णामी खवदि लीलाए।।

अर्थ–जो शान्त आत्मा आरम्भ रहित एक भी उपवास करता है। वह ज्ञानी अनेक भवों के संचित कर्मों को अनायास ही नष्ट कर देता है।

उपवासं कुत्वंतो आरम्भं जो करेदि मोहादो।
सो णिदेहं सोसदि, ण झाइए कम्मलेसं पि।।

अर्थ–जो व्यक्ति उपवास के दिन मोह के कारण आरम्भ करता है, वह अपने शरीर का शोषण करता है, कर्मों की जरा भी निर्जरा

नहीं करता है।

दोषप्रशमसन्तोष, स्वाध्यायादिप्रसिद्धये।
द्वितीयमवचमौदर्य, तपः सद्भिः प्रशस्यते।।

अर्थ–दोषों के शमन के लिए, संतोष की प्राप्ति के लिए, स्वाध्याय आदि की प्रसिद्धि के लिए दूसरा अवमौदर्य तप विद्वानों ने माना है।

एकागारादिविषयः, संकल्पश्चित्तरोधकः।
तद्वृत्तिपरिसंख्यानं, तृतीयं कथ्यते तपः।।

अर्थ–एक घर, मौहल्ला, चौराहा आदि नाना प्रकार का मन को वश में करने वाला नियम लेना तीसरा वृत्ति परिसंख्यान नामक तप कहलाता है। इस तप से साधुओं का धैर्य दिखाई देता है, लोलुपता आशा आदि दोष नष्ट होते हैं।

रसत्यागो भवेत्तैल, क्षीरेसु दधि सर्पिषाम्।
स्वाध्याय सुख सिद्ध्यर्थ, मक्ष दर्प प्रशान्तये।।

अर्थ–तेल, दूध, मीठा, दधि, घी, नमक इन रसों का त्याग सुखपूर्वक स्वाध्याय की सिद्धि तथा इन्द्रियों को वश में करने के लिए किया जाता है। इस तप से इन्द्रिय मद का निग्रह, निद्राविजय, स्वाध्याय आदि की सुखपूर्वक सिद्धि होती है, ऐसा जानकर शक्ति अनुसार एक, दो, तीन आदि रसों का त्याग करना चाहिए।

शून्यागारादिषु ज्ञेयं साधु शय्यासनादिकम्।
पंचमं तत्तपः साधे र्विविक्त शयनासनम्।।

अर्थ–एकान्त तथा जीव रहित गृहादिक में शयन आसन स्वाध्याय आदि करना साधु का पाँचवां विविक्त शय्यासन नाम का तप है।

योगेस्त्रैकालिवेः र्नित्य-मुपवासादिषूद्यमः।
साधोः साधुभिरित्युक्तं, तपः षष्टमनिन्दितम्।।

अर्थ–मन, वचन, काय से ग्रीष्म, वर्षा और शीत ऋतु में उपवासादि तप में उद्यम रखना मुनियों के द्वारा साधुओं का षष्टम्

कायक्लेश नाम का तप कहा गया है।

तथाप्युग्रं तपोऽतप्त, सिद्धत्वे ध्रुव भाविनि,
सज्ज्ञानलोचनो धीरः, सहस्रं वार्षिकं परम्।
तेनाऽभीष्टं मुनीन्द्राणां, कायक्लेशाह्वयं तपः,
तपोऽङ्गेषु प्रधानाङ्, मुत्तमांगमिवांगीनाम्।।

अर्थ–जिन्हें मुक्ति प्राप्त होना निश्चित था ऐसे सम्यग्ज्ञानी धीर, वीर आदिनाथ भगवान् ने भी एक हजार वर्ष तक उग्र तपश्चरण किया था इसलिए मुनियों ने कायक्लेष को तप का प्रधान अंग माना है। जैसे मस्तक प्राणियों का उत्तम अंग माना जाता है।

इहपरलोय सुहाणं, णिरवेक्खो जो करेदि समभावो।
विविधं काय किलेहं तव धम्मो णिम्मलो तस्य।।

अर्थ–जो इस लोक परलोक के सुखों की इच्छा के बिना समतापूर्वक नाना प्रकार से कायक्लेश तप करता है उसके निर्मल धर्म होता है।

अष्टम्यामुपवासं हि, ये कुर्वन्ति नरोत्तमाः।
हत्वा कर्मष्टिकं तेऽपि, यान्ति मुक्तिं सुदृष्टयः।।

अर्थ–जो सम्यग्दृष्टि उत्तम पुरुष अष्टमी को उपवास करते हैं, वे आठों कर्मों को नष्ट कर मोक्ष को प्राप्त होते हैं।

यः पर्वण्युपवासं हि, विधत्ते भावपूर्वकं।
नाकराज्यं च संप्राप्य, मुक्तिनारीं वरिष्यति।।

अर्थ–जो मनुष्य पर्व के दिनों में भावपूर्वक उपवास करते हैं, वे स्वर्ग साम्राज्य को प्राप्त कर मुक्ति का वरण करेंगे।

चतुर्दश्यां समं पर्व, नास्ति कालत्रये परम्।
धर्मयोग्यं महापूत, मुपवासादिगोचरम्।।

अर्थ–उपवास आदि पवित्र धार्मिक कार्यों के लिए तीनों कालों में चतुर्दशी के समान दूसरा श्रेष्ठ पर्व नहीं है।

बुद्धिमानों को प्राणों का अंत होने पर भी धर्म, अर्थ, काम और

मोक्ष को देने वाला चतुर्दशी का उपवास नहीं छोड़ना चाहिए।

एवं यः प्रोषधं कुर्यात्, सव्रहि सादिवर्जितम्,
क्षिपेद् वैराग्यमापन्नः एनः संख्या विवर्जितम्॥
तपसाऽलंकृतो जीवो यद्-यद् वस्तु समीहते,
तत् तदेव समायाति भुवनतृतीये ध्रुवम्॥

अर्थ–इस प्रकार जो समस्त हिंसा से रहित वैराग्य को प्राप्त होकर प्रोषध करता है वह असंख्यात कर्मों की निर्जरा करता है। तप से अलंकृत जीव तीन लोक में जिस वस्तु की इच्छा करता है वह उसे प्राप्त हो जाती है।

तपः फलति कल्याणं, कृतमल्पमपि स्फुटं।
बहुशावोपशाखाद्यं, वटबीजं यथा वटम्॥

अर्थ–जैसे वट का बीज अनेक शाखा-उपशाखा से सहित विशाल वटवृष बनता है उसी प्रकार थोड़ा भी तप बहुत कल्याण को फलता है।

प्रायः प्राणी करोत्येत, यत्र चित्तं सुनिर्मलं।
तदाहुः शब्दसूत्रज्ञाः, प्रायश्चितं यतीश्वराः॥

अर्थ–जिसने प्राणी मन की शुद्धि करता है उसे सूत्र के ज्ञाता मुनि प्रायश्चित कहते हैं।

स्यात् कषाय हृषीकाणां विनीतेर्विनयोऽथवा।
रत्नत्रये तद्वति च, यथा योग्यमनुग्रहः॥

अर्थ–कषाय और इन्द्रियों पर विजय प्राप्त करना, रत्नत्रय का निर्दोष पालन करना तथा रत्नत्रय के धारक साधु साधकों का यथायोग्य आदर करना विनय तप कहलाता है।

समस्ताः सम्पदः सो विधाय यशवर्तिनीः।
चिन्तामणि रिवाभीष्टं, विनयः कुरुते न किम्॥

अर्थ–विनय समस्त सम्पत्ति को शीघ्र ही वश में कर देती है। विनय चिन्तामणि के समान कौन से इच्छित फल को नहीं देती

अर्थात् सब कुछ देती है।

विनयं न बिना ज्ञानं, दर्शनं चारित्रं तपः।
कायणेन बिना कार्य, जायते कुत्र कथ्यताम्॥

अर्थ—विनय के बिना ज्ञान, चारित्र तप नहीं होता। क्योंकि कारण के बिना कार्य नहीं होता अर्थात् विनय कारण है दर्शन चारित्र तप की प्राप्ति कार्य है।

क्लेशसंक्लेशनाशायाचार्यादि दशकस्य यः।
व्यावृत्तस्तस्य यत्कर्म, तद् वैयावृत्यमाचरेत्॥

अर्थ—आचार्य, उपाध्याय, तपस्वी, शैक्ष्य, ग्लान, गण, कुल, संघ, साधु, मनोज्ञ इन दस प्रकार के साधुओं के शारीरिक क्लेश तथा मानसिक संक्लेशों के निराकरण के लिए जो मन, वचन, काय की प्रवृत्ति की जाती है वह वैयावृत्ति कहलाती है।

गृहस्थों को संयमी साधुओं की शारीरिक ज्वर, कोढ़, भूख, प्यास आदि तथा क्रोध, मान आदि मानसिक व्याधि का प्रतिकार करना चाहिए।

सर्वेभ्योऽपि व्रतेभ्योऽयं, स्वाध्यायः परमं तपः।
यतः सर्वव्रतानां हि, स्वाध्यायो मूलमादितः॥

अर्थ—समस्त व्रतों में स्वाध्याय परम तप है क्योंकि स्वाध्याय समस्त व्रतों की जड़ माना गया है।

उत्सृज्य कायकर्माणि, भवं व भवकारणं।
स्वात्मावस्थानमव्यगं कायोत्सर्गः स उच्यते॥

अर्थ—संसार के कारण शारीरिक चेष्टा तथा भावों को छोड़कर एकाग्रता पूर्वक शरीर से विरक्त तीन गुप्ति के धारक शरीर भिन्न आत्मा का ध्यान करने वाले मुनि व्युत्सर्ग तप के धारक होते हैं।

नित्यं स्वाध्यायमभ्यस्येत् कर्म निर्मूलनोद्यतः।
सः हि स्वस्मै हितोऽध्यायः, सम्यग्वाध्ययनं श्रुतः॥

अर्थ–जो आत्मा का हितकारी अध्ययन है अथवा श्रुत का जो समीचीन अध्ययन है ऐसे कर्मों को जड़ से उखाड़ने में समर्थ स्वाध्याय निरन्तर करना चाहिए।

शास्त्राभ्यासो भवेन्नित्यं, देवार्चा गुरुवन्दनं।
इत्यं प्रवर्तते यत्र, धर्मध्यानं तदुच्यते।।

अर्थ–जहाँ नित्य शास्त्रों का अभ्यास होता है, देव की पूजा, गुरु की वन्दना की जाती है वहाँ धर्मध्यान होता है।

धर्मध्यान से मनुष्य क्रमशः स्वर्ग और मोक्ष के सुखों को प्राप्त होते हैं।

गुप्तेन्द्रिय मनो ध्याता, ध्येयं वस्तु यथास्थितं।
एकाग्र चिन्तनं ध्यानं, निर्जरासंवरौ फलम्।।

अर्थ–इन्द्रिय और मन को वश में करने वाला ध्याता कहलाता है यथावस्थित वस्तु ध्येय कहलाती है। एकाग्र मन से चिन्तन करना ध्यान कहलाता है तथा संवर और निर्जरा ध्यान के फल हैं।

शुभध्यानफलोद्भूतां, श्रियं त्रिदशसंभवाम्।
निर्विशन्ति नरा लोके, क्रमाद् यान्ति परं पदम्।।

अर्थ–इस लोक में मनुष्य शुभ ध्यान के फल से स्वर्ग में विभूति को प्राप्त होता है और क्रमशः मोक्ष सुख को प्राप्त होता है।

नास्ति ध्यान समो बन्धुः नास्ति ध्यान समो गुरुः।
नास्ति ध्यानसमं मित्रं नास्ति ध्यान समं तपः।।

अर्थ–ध्यान के समान कोई बन्धु नहीं है ध्यान के समान कोई गुरु नहीं है ध्यान के समान कोई मित्र नहीं है और ध्यान के समान कोई तप नहीं है।

ध्यानकल्पतरुलोवेरु ज्ञानपुष्पैः सुपुष्पितः।
मोक्षामृतफले र्नित्यं, फलितोऽरयं सुखप्रदः।।

अर्थ–ध्यानरूपी कल्प वृक्ष हमेशा सुख को देने वाले मोक्ष रूपी फल को फलता है।

जन्मलक्षार्जितं कर्म ध्यानाभ्यासेन योगिनः।
तमः सूर्योदयेनैव सर्व नश्यति तत्क्षणात्॥

अर्थ—लाखों जन्मों में अर्जित किये कर्म रूपी अन्धकार को योगी ध्यान रूपी सूर्य से क्षण भर में नष्ट कर देते हैं।

विरज्य कामभोगेषु विमुच्य वपुषि स्पृहां।
यस्य चित्तं स्थिरी भूतं स हि ध्याता प्रशस्यते॥

अर्थ—पंचेन्द्रियों के विषयों से विरक्त शरीर में ममत्व रहित जिसका मन स्थिर होता है वह ध्याता प्रशंसनीय होता है।

यथा बहिनलवेनापि, दह्यन्ते दारुसंचयः।
कर्मेन्धनानि दह्यन्ते तथा ध्यानलवेन तु॥

अर्थ—जैसे अग्नि की कणिका से भी ईंधन का समूह जल जाता है वैसे ही ध्यान से भी कर्म रूपी ईंधन जल जाता है।

बुभुक्षामत्सरानंग मानमायाभय क्रुधाम्।
निद्रा लोभादिकानां च, नाशः स्यादात्म चिन्तनात्॥

अर्थ—आत्मा का चिन्तन करने से भूख मात्सर्य, काम, मान, माया, भय, क्रोध, निद्रा, लोभ आदि का नाश हो जाता है।

अमृत दोहावली

तन मिला तुम तप करो, करो कर्म का नाश।
रवि शशि से भी अधिक है, तुममें दिव्य प्रकाश॥1॥

तप करते यौवन गयो, द्रव्य गयो मुनि दान।
प्राण गये सन्यास में, तीनों गये न जान॥2॥

माला तो कर में फिरे, जीभ फिरे मुख माँहि।
मनुआ फिरे बाजार में, ऐसा सुमरन नाहिं॥3॥

माला फेरत जुग गया, गया न 'मनका' फेर।
कर का 'मनका' डारि दे, मन का मनका फेर॥4॥

तप चाहें सुर राय, करम शिखर को वज्र है।
द्वादश विध सुखदाय, क्यों न करे निज शक्ति सम॥5॥

पुण्य प्रभाव नरभव मिल्यो, उत्तम कुल अवतार।
तप कर शिव को साधना, तब मनुष्य भव सार॥6॥

तप को तो तीर्थंकर ध्यावै, तप बिन मोक्ष कभी नहीं पावे।
तप शिव महल तनौ मग जानो, तप ही तैं सब कर्म हरानौ॥7॥

होय न तृप्त रतै, यह अनादि की जीत।
जो अनशन तप आदरै, रहे क्षुधा दुःख जीत॥8॥

सर्व कामना-सिद्धि में, रहता तप का योग।
इसलिए तप को सदा, करते सब उद्योग॥9॥

उत्तम तप में धर्म के सम्बन्ध में कतिपय कथानक

1. **अनशन तप में प्रसिद्ध**–वृषभ देवादि सभी तीर्थंकर, प्रथक कामदेव मुनिराज बाहुबलि, चातुर्मासिक एवं षट् मासिक योग धारण करने वाले सभी मुनिराज, विनय गुप्त, सुदर्शन, बलराम, पिहितास्रव, समाधिगुप्त, अनन्तबल इत्यादि अनंत मुनिराज।
2. **ऊनोदर तप में सुविख्यात**–अपनी भूख से कम आहार लेने वाले सभी मुनिराज, गौतम आदि मुनिराज।
3. **वृत्ति परिसंख्यान तप**–कठिन विधि लेकर आहारार्थ निकलने वाले मुनिराज जैसे श्रीराम मुनि, श्री भीम जी, महावीर स्वामी जी इत्यादि।
4. **रस परित्याग**–एक, दो, तीन अथवा सभी रसों का त्याग करने वाले मुनिराज जैसे–शांति सागर, विमल सागर, आदि सागर इत्यादि।
5. **विविक्त शय्यासन तप**–आसन सम्बन्धी कष्ट को समता से सहन करने वाले मुनिराज। दीर्घ तपस्वी, एक ही आसन से सुदीर्घ काल तक साधना करने वाले मुनिराज। ऋषभ देव, बाहुबली, पारसनाथ, मेघरथ, मय, अकम्पनाचार्यादि, यतिवृषभ, नेमिसागर आदि मुनिराज।
6. **कायक्लेश तप में विख्यात**–आतापन योग, अभ्रावकाश योग, वृक्षमूल योग आदि धारण करने वाले मुनिराज। ग्रीष्मकाल में पर्वत की चोटी पर योग धारण करना, शीतकाल में नदी किनारे, वर्षाकाल में वृक्ष के मूल में बैठ कर या खड़े होकर ध्यान करना। विष्णु कुमार मुनि, पणिक मुनि, चाणक्य मुनि,

वरदत्त, चन्द्रगुप्त मुनिराज, यति वृषभ आदि मुनिराज।

7. **प्रायश्चित तप में प्रसिद्ध मुनिराज**—अपने चित्त की शुद्धि बनाये रखना अपने संयम में कोई भी दोष न लगने देना सर्वोत्तम है। यदि दोष लग जाये तो तत्काल प्रायश्चित लेना। इस तप में प्रसिद्ध महानुभाव—माघनंदी मुनिराज, पुष्पडाल, भावदेव, ऋषभदेव स्वामी के साथ दीक्षित 4000 राजा, जो तप से च्युत हो गये थे बाद में आदिनाथ स्वामी को केवल ज्ञान की प्राप्ति होने पर पुनः दीक्षित हो गये। विष्णु कुमार मुनि, विशाखाचार्य मुनि, समंतभद्र मुनि, वेदवती, कनकोदरी, निर्नामक, राजा श्रीकण्ठ इत्यादि।

8. **विनय तप**—विनयशील श्रीराम चन्द्र जी, जम्बूस्वामी, शांतिसागर (समाधिस्थ), श्रुत सागर (समाधिस्थ), जिनसेन (प्रथम), मणिमाली, इन्द्रभूति, अग्निभूति।

9. **वैयावृत्ति तप में प्रसिद्ध**—सुभग गोपाल, श्रीकृष्ण, नंदिमित्र, पुष्पदंत, भूतबलि, चन्द्रगुप्त, श्रीराम, हनुमान, भामण्डल, शत्रुघ्न, श्रीषेण, वज्रजंघ आदि।

10. **स्वाध्याय में विख्यात**—पद्मनंदि, यतिवृषभ, वीरसेन, गुणधर, उमास्वामी, देवनंदि, अकलंकदेव, नर वाहन, सुबुद्धि, आर्य मंक्षु, काण भिक्षु, कौण्डेश, कुन्दकुन्द स्वामी, वामदेव, शामकुण्ड, सकलकीर्ति इत्यादि।

11. **कायोत्सर्ग तप में प्रसिद्ध**—वृषभ देव, बाहुबली, सुपार्श्वनाथ, महावीर स्वामी, श्रुतसागराचार्य, वारिषेण, सुदर्शन, अकम्पनाचार्यादि, विष्णुमित्र, यममुनि, कुंभकरण, इन्द्रजीत मुनि, सहस्त्र रश्मि, ललितांग, आनन्द मुनि, श्रीधर तथा सभी मोक्षगामी महापुरुष।

12. **ध्यान तप में प्रसिद्ध**—भरतेश, सकल भूषण, मल्लिनाथ, अनन्तबल, ययाोधर मुनिराज, मानतुंग, कुमुदचन्द्र, वादिराज, शिवभूति, संजयंत मुनि, वरदत्त मुनिराज, गुरुदत्त तथा सभी मोक्षगामी महापुरुष।

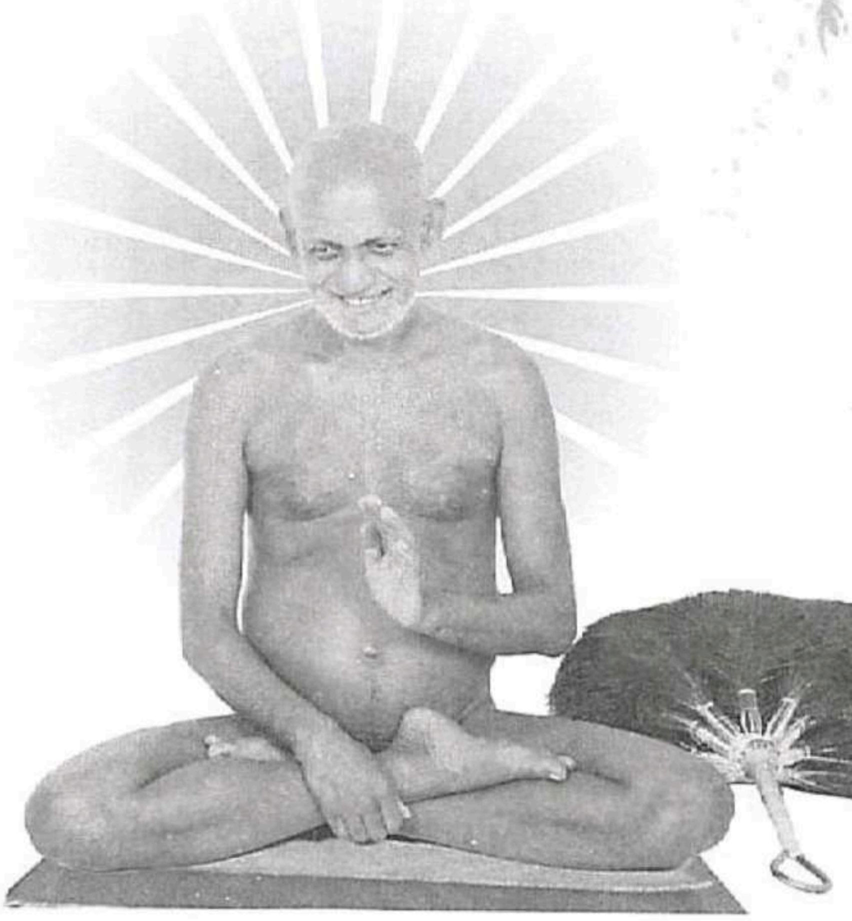

उत्तम त्याग

णिच्चं जे चागंति य,
परवत्थुं वियाराइ-परभावं।
लहंति चागं चागी,
ते णिग्गंथा वंदणीया।।

दशामृत
अहसास अंतस का

निज हाथ दीजे साथ लीजे

महानुभाव!

आज पर्यूषण पर्व का आठवाँ दिन है। सात दिन तक धर्म के लक्षणों के सम्बन्ध में सुना, जाना, समझा, ग्रहण करने का समाचीज पुरुषार्थ किया। आज इस अष्टम लक्षण के सम्बन्ध में चर्चा करना आवश्यक है। क्योंकि यह धर्म जैन धर्म का वेश है, ''जैन धर्म त्याग के ऊपर ही टिका हुआ है''। यदि जैन धर्म में त्याग नहीं होता, वीतरागता नहीं होती तो जैन धर्म को, जैन दर्शन को, विश्व के समस्त दर्शनों में श्रेष्ठ नहीं कहा जाता। वीतरागता, यह एक ऐसा गुण है, ऐसा लक्षण है, ऐसी विशेषता है जिसके कारण इस दर्शन को समस्त दर्शनों में श्रेष्ठ माना जाता है।

उत्तम त्याग धर्म– त्याग मोक्ष का कारण है तो राग संसार का कारण है। दोनों शब्द एक-दूसरे के विपरीत है। यदि कोई व्यक्ति त्यागशील है, तो वह मोक्षमार्गी है, यदि रागी है तो ऐसा व्यक्ति संसार मार्गी कहलाता है। त्याग के बारे में देखें तो ऐसे परिणाम हो जाते हैं कि क्या बिना त्याग के कल्याण नहीं हो सकता? कल्याण तो बहुत दूर की चीज

सर्वोदयी चिन्तन

त्याग के बिना जीना असंभव है। ये त्याग धर्म मरण का प्रतीक नहीं, नवीनता का द्योतक है, इस त्याग धर्म को वह भी प्राप्त कर सकते हैं जिन्होंने संयम धारण कर गहन तप किया है।

है, मोक्ष तो बहुत दूर की चीज है, संसार की भी यदि किसी वस्तु को प्राप्त करना है, तो बिना त्याग किये प्राप्त नहीं कर सकते, त्याग के माध्यम से ही प्राप्ति होती है।

महानुभाव!

यदि आप गृह त्याग नहीं करते, तो क्या आप इस मंदिर तक आ पाते? ''नहीं आ पाते''। घर में रहते मंदिर की प्राप्ति नहीं होती क्योंकि मंदिर घर में नहीं आ सकता और घर मंदिर में नहीं आ सकता। इसलिये तुमने पहले घर को छोड़ा तो मंदिर तक आ गये। कुछ लोग ऐसा भी करते हैं। पुराने संस्कारों को छोड़े बिना नये संस्कार ग्रहण करने का प्रयास करते हैं। किंतु वे नये संस्कार पुराने संस्कार में आकर पुराने हो जाते हैं और सड़ जाते हैं। पहले हमें पुराने संस्कारों को छोड़ना है। जब तुम बाहर की ड्रेस पहनते हो, तो पुराने कपड़े उताकर अलग कर देते हो। जब स्नान करते हो शुद्ध वस्त्र पहनते हो, तो अशुद्ध वस्त्र अताकर अलग कर देते हो, तब चेतना में ऐसा परिणाम क्यों नहीं आता कि मैं पुराने संस्कारों को उतार कर अलग कर दूँ और नये संस्कार ग्रहण करूँ। यदि आपकी दृष्टि उस ओर भी पहुँच जाये तो मुझे लगता है क्षणार्द्ध में तुम्हारा कल्याण हो सकता है। यदि कोई जीव समस्त कर्मों को एक समय के लिये अलग कर दे, तो वह पुनः कर्मों को ग्रहण नहीं करेगा, मुक्त हो जायेगा। इसी प्रकार, पुराने संस्कारों को अलग करने से ही पुराने कर्मों को अलग किया जा सकता है।

सर्वोदयी चिन्तन

वृक्ष पुराने पत्ते, फूल, फल न त्यागें, मादा पशु पय न तजें, अन्य प्राणी मलोत्सर्ग न करें या श्वांस का उच्छ्वास न करें तो उन का जीवन कठिन ही नहीं असंभव हो जायेगा।

महानुभाव!

त्याग करना है, किंतु त्याग करने वाले बाहर से त्याग कर देते हैं, अंतरंग में त्याग का परिणाम कभी

नहीं आता। जब तक अंतरंग में त्याग का परिणाम नहीं आता है, तब तक बाहर से किया गया पुरुषार्थ उतनी सार्थकता प्रदान नहीं करता, इसलिये त्याग तो अंतरंग से करना चाहिये। यदि घर का त्याग करके यहाँ भी घरवाली की याद आती रही, घर वालों के विकल्प बने रहे तो मुझे लगता है कि वह त्याग पूर्ण सार्थकता प्रदान नहीं करता है। यद्यपि व्यर्थ भी नहीं है। अत: त्याग करना है, किंतु त्याग के साथ-साथ वस्तु के मोह के भाव को भी त्यागना अनिवार्य है। यह बात भी सत्य है।

सर्वोदयी चिन्तन

त्यागमय जिन्दगी आनन्द का स्रोत है तो बिना त्याग की जिन्दगी है मुर्दा शरीर। नित्य नवीनता की प्राप्ति त्याग का ही फल है, ग्रहण करने का नहीं।

जब तक बुद्धि पूर्वक वस्तु का त्याग नहीं किया जायेगा तब तक वस्तु से मोह ममत्व को दूर नहीं किया जा सकता। बुद्धिपूर्वक वस्तु के पकड़ने का आशय है कि हमारा उस वस्तु के प्रति नियम से राग है। तीव्र राग में वस्तु पकड़ी जाती है और मंद राग में वस्तु को ग्रहण करने के परिणाम होते हैं। मुझे लगता है राग ही एक ऐसी परिणति है जो संसारी जीवों से नाना प्रकार के पाप करा देती है, यदि तुम्हारा राग टूट जाये तो संसार में कितने भी पाप हों, वह पाप तुम नहीं कर पाओगे। राग-द्वेष में ऐसा गठबंधन है, उनका ऐसा पक्का जोड़ है, कहीं बीच में तकरार नहीं होती। राग-द्वेष जब मरते हैं तो साथ-साथ मरते हैं और जीते भी साथ-साथ हैं।

महानुभाव!

द्वेष भी तब होता है जब आपका किसी के प्रति राग हो, बिना राग के तुम्हारा द्वेष नहीं हो सकता। एक से राग दूसरे से द्वेष ये नियामक है। राग चाहे धन के प्रति हो, चाहे तन के प्रति हो, चाहे अपने मन के प्रति हो, चाहे भवन के प्रति हो, चाहे भोग और

उपभोग के प्रति हो, जिन-जिन के प्रति राग होगा वहाँ पर हिंसा की संभावना है। आचार्यों ने कहा है- "राग ही भाव हिंसा है" और भाव हिंसा ही द्रव्य हिंसा का कारण बन जाती है। जब राग होता है, तो व्यक्ति विशेष रूप से पाप में आसक्त हो जाता है, जब राग घटता जाता है तो विरक्त होता जाता है। राग के घटने का नाम ही विरक्ति है, वैराग्य है। जब वैराग्य बढ़ता जाता है तो राग घटता जाता है और वही संयम का रूप ले लेता है, राग बाहर हो जाता है। बालक जब से जन्मता है, तब से राग करता है। "कब तक राग करता है?" आचार्य महोदय कहते हैं- राग भी चेतना का गुण है। इसे श्रद्धा कहें, लीनता कहें, क्योंकि बाहर की वस्तुओं के प्रति जब राग होता है, तो व्यक्ति बाहर की वस्तुओं को अपने हृदय से चिपकाता है, अपनी आँखों में ले जाता है, जो वस्तु उसे प्रिय लगती है अपने अंदर रखने का प्रयास करता है। जिसे अपनी आत्मा ही प्रिय लग रही है वह व्यक्ति अपने उपयोग को, अपनी आत्मा को आत्मा में ही ले जायेगा, लीन हो जायेगा और वह सिद्धत्व की प्राप्ति कर लेगा। कहने का आशय यह है कि बाहर की वस्तुओं के राग को छोड़ना है। कम से कम ये संकल्प ले लें कि " अन्यायपूर्वक पर-वस्तुओं को ग्रहण नहीं करेंगे।" यह भी बहुत बड़ा संकल्प हो सकता है।

"जो मेरा है, सो मेरा है।
जो तेरा है, सो तेरा है॥"

इतनी नीति भी अपना लें, तो भी कल्याण का मार्ग प्रारम्भ हो सकता है। बिना त्याग के एक समय भी विश्व नहीं ठहर सकता। यदि त्याग धर्म नहीं हो तो विश्व नष्ट हो जाये, पूरे तीन लोक नष्ट हो जायेंगे। विश्व में जितने भी द्रव्य हैं। उनके जितने भी गुण हैं,

सर्वोदयी चिन्तन

पुरातन पर्याय का त्याग किये बिना नई पर्याय की प्राप्ति उसी प्रकार असंभव है जैसे नरक से निकले बिना स्वर्ग की प्राप्ति करना।

वे सभी प्रत्येक समय में त्याग करते हैं, संसार में ऐसा कोई भी द्रव्य नहीं है, ऐसा कोई भी गुण नहीं है, जो त्याग नहीं करता हों। ये पुरानी पर्याय का त्याग करते हैं तभी तो नयी पर्याय को ग्रहण करतें हैं। प्रत्येक द्रव्य उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य ये युक्त होता है।

सर्वोदयी चिन्तन

नवग्रह-गृहवासी या परिग्रही को ही दुःख पहुँचाते हैं, जो अगृही या अपरिग्रही हैं, उसे नवग्रह दुःख नहीं पहुँचा सकते।

''उत्पाद व्यय ध्रौव्य युक्तं सत्, सत् द्रव्यलक्षणम्''

उत्पाद और व्यय की अवस्था प्रत्येक द्रव्य में पायी जाती है। यदि एक पर्याय नष्ट नहीं होगी तो दूसरी पर्याय उत्पन्न नहीं होगी। तुम्हारी मनुष्य पर्याय का अंत नहीं होगा तो तुम नई पर्याय प्राप्त नहीं कर सकते। तुम चाहो कि मैं देव बन जाऊँ, नहीं बन सकोगे, जब यह पर्याय छोड़ी जाती है, इसका त्याग किया जायेगा, तभी तो आप देव पर्याय को प्राप्त कर पाओगे और इसे नहीं छोड़ोगे तो नयी पर्याय को प्राप्त नहीं कर पाओगे। जब व्यक्ति त्याग करता है, तो आगे की भूमिका को प्राप्त कर पाता है। चलते समय व्यक्ति पीछे के पैर को उठाता है तब आगे बढ़ता है। यदि पीछे के पैर को नहीं उठाये, जहाँ पर पैर रख लिया है, उस भूमि का त्याग नहीं करे तो आगे की भूमि की प्राप्ति जीवन में उसे नहीं हो सकेगी। यदि आप लोग आगे की भूमिका को प्राप्त करना चाहते हैं, वह तभी संभव है जब आगे बढ़ पायेंगे, जब पीछे की भूमिका को छोड़ते जायेंगे। जब नरक की पर्याय को त्याग किया तो तिर्यंच बने होंगे, तिर्यंच पर्याय का त्याग किया तो देव बने होंगे, उसका भी त्याग किया तो आज मनुष्य पर्याय को प्राप्त किया। जो शैशव अवस्था की पर्याय थी, उसे छोड़ा बचपन आया, उसे भी छोड़ा जवानी आयी, उसे भी छोड़ा प्रौढ़ावस्था आई, उसे भी छोड़ दिया वृद्धावस्था आ गई। कहने का आशय यह है कि छोड़ने से ही काम चलता है, बिना छोड़े काम नहीं चलता। मुझे

लगता है कंजूस से कंजूस व्यक्ति होगा वह भी त्याग करता है, बिना त्याग किये वह जी नहीं सकता, नियम से त्याग करता है। जब पशु-पक्षी भी त्याग करते हैं, एकेन्द्रिय वृक्ष भी त्याग करते हैं तब तुम तो मनुष्य हो, क्या त्याग नहीं करते होंगे? किंतु अभी तक आपने ऐसा त्याग किया है जिसके माध्यम से अभी जीवन सार्थक नहीं हो सका। अब ऐसा त्याग करना है जिससे जीवन धन्य हो जाये, कृत्य-कृत्य हो जाये, वह त्याग करना है। वृक्ष भी त्याग करते हैं, पुराने पत्तों को छोड़ देते हैं, तभी तो नये पत्तों को प्राप्त करते हैं।

''ऋतु बसन्त याचक भये, दिये तरु मिल पात।
याते नव पल्लव भये, दिया दूर नहीं जात।।''

जब बसन्त ऋतु आकर याचना करती है (वृक्षों से) कि हमें दो तो तरु अपना सब कुछ लुटा देते हैं। केवल तना और शाखायें रह जाती हैं। सम्पूर्ण बाहर की सम्पत्ति को हाथ का मैल कहते हैं। बसन्त ऋतु के चरणों में वे पत्ते, फूल, फल सब कुछ समर्पित कर देते हैं, **वृक्ष एकेन्द्रिय होते हुये भी बसन्त ऋतु के चरणों में अपना ''सब कुछ'' समर्पण करने के लिये तैयार हो जाता है। किंतु मनुष्य, संज्ञी-धर्मात्मा होते हुये भी तीन लोक के नाथ के चरणों में अपना ''कुछ-कुछ'' समर्पण करने में भी कतराता है।**

महानुभाव!

तुमने जो कुछ भी प्राप्त किया है, जो कुछ भी तुम्हारे पास दौलत है, सब इनकी (परमात्मा) बदौलत है और इन्हीं के लिये जब आवश्यकता पड़ जाये–चाहे मूर्ति के लिये, चाहे मंदिर के जीर्णोद्धार के लिये, चाहे वेदिका के जीर्णोद्धार के लिये, चाहे और किसी कार्य के लिये तो आप मुट्ठी सिकोड़ लेते हो। जिसके पास नहीं है, वे वास्तव में ऐसी भावना भाते हैं, कि **''प्रभो! मुझे धन देना, किंतु**

मेरी भावनाओं को मत छीन लेना।'' क्योंकि संसार में ऐसे बहुत से लोग हैं जिनके पास धन की कमी नहीं है, किंतु उनके पास भावना नहीं है। मैं भगवान् से यही प्रार्थना करता हूँ कि या तो मुझे धन देना ही नहीं और यदि प्रभो! मुझे धन देना तो किसी कार्य करने के मुझे योग्य बनाओ, काबिल बनाओ मेरी भावनाओं को मत छीन लेना। भावना ऐसी रहे कि ''मेरे पास एक ही रोटी हो, उसकी आधी दान कर मैं खाऊँ।'' ऐसी पवित्र भावना रखने वाला व्यक्ति वास्तव में धर्मात्मा कहलाता है।

सर्वोदयी चिन्तन

त्याग प्राणी का सामान्य गुण नहीं अपितु स्वाभाविक गुण है, इसलिए इसे धर्म कहा गया है, जब त्याग उत्कृष्टता को प्राप्त हो जाता है ही परम धर्म कहा जाता है।

महानुभाव!

नदियाँ भी होती हैं, वे भी किसी महासागर को प्राप्त करके, उनके चरणों में अपना सब कुछ समर्पण कर देती हैं। जो एकेन्द्रिय जल वह भी अपना समर्पण कर देता है, पत्थर भी एकेन्द्रिय होता है, वह भी परमात्मा की मूर्ति बनने के नाम से अपनी सारी जिंदगी समर्पित कर देता है, सम्पूर्ण संघर्षों को सहन करता है, हथौड़ों की चोटों को सहन करता है और परमात्मा के स्वरूप को प्राप्त कर लेता है। ऐसा कोई पुरुष हो जो अपना समूचा जीवन परमात्मा के चरणों में समर्पित कर सके, तो वह मनुष्य नियम से एक दिन परमात्मा बन जायेगा। गाय और भैंस आदि को देखा होगा वह कभी अपने दूध को पीते नहीं, वृक्ष कभी अपने फल नहीं खाते, नदी कभी जल को पीती नहीं, ये तो दूसरों के लिये त्याग देते हैं। यदि नहीं त्यागें तो उनका जीवन मुश्किल हो जाये। जो वृक्ष यदि फलों को नहीं त्यागे तो वह वृक्ष सूख जायेगा, मर जायेगा। जो नदी अपने पानी को नहीं त्यागे तो वह नदी भी सड़ जायेगी, मर जायेगी। इसी प्रकार यदि वे पशु भी अपना दूध नहीं त्यागें तो वे अस्वस्थ हो जायेंगे, मृत्यु को प्राप्त हो

जायेंगे। उस गाय ने अपना फल, 'दूध', वह धर्मात्माओं के लिये समर्पित कर दिया। जब कोई उस गाय के दूध को पीकर हिंसा करता है, कत्ल करता है, चोरी करता है, झूठ बोलता है तो गाय भी रोती है। हाय! मेरे दूध का दुरुपयोग हो गया, मेरा दूध सार्थक हो जाता, मेरे दूध को पीकर यदि कोई मुनिराज अपनी साधना करते और अपने कर्मों का क्षय करके मोक्ष को प्राप्त कर लेते तो मेरा दूध धन्य हो जाता, मेरा जीवन भी धन्य हो जाता।

महानुभाव!

पशु भी त्यागशील होते हैं, यदि त्याग न करें तो जीवित न रह पायें और आप लोग भी त्याग करते हो। जिस त्याग के बिना तुम जी नहीं सकते वो त्याग करते हो। वह त्याग करना जितना तुम्हारे लिये अनिवार्य है उतना ही त्याग करना अनिवार्य धन का भी है, अभक्ष्य पदार्थों का त्याग करना भी तुम्हारे लिये अनिवार्य है, बुराईयों का त्याग करना भी तुम्हारे लिये अनिवार्य है। महानुभाव! **त्याग चेतन का एक धर्म है, त्याग गुण है, त्याग स्वाभाव है, त्याग तत्त्व है, त्याग संयम है, त्याग निर्जरा है, त्याग पुण्य रूप है, त्याग परम्परा से ही नहीं साक्षात् मोक्ष का कारण भी है।** जिस प्राणी के धर्म में त्याग धर्म है, ऐसा प्राणी त्याग धर्म के माध्यम से मोक्ष मार्ग में गति कर लेता है। कितना त्याग तुम्हारे जीवन में आया? कितना तुम त्याग को समझ पाये हो? ये आपको समझना है कि त्याग हम कितना कर रहे हैं? त्याग के बारे में आचार्यों ने बहुत कहा है। यदि श्रावक चार प्रकार का त्याग नहीं करता, चार प्रकार के दान नहीं देता, तो वह श्रावक, श्रावक नहीं कहलाता है। आचार्य कुन्द-कुन्द स्वामी के शब्दों में-

दाणं पूया मुक्खं सावयधम्मो ण

सर्वोदयी चिन्तन

दान देने से धनार्जित कृत पापों का नाश होता है किन्तु त्याग करने से पाप एवं पाप के सभी कारणों से बचा जा सकता है।

सावया तेण विणा। (र.सा.)

दान पहले कहा, पूजा बाद में कहा। दान करना श्रावक का अनिवार्य कर्तव्य है। जो श्रावक दान से रहित है, वह श्रावक, श्रावक ही नहीं है।

सर्वोदयी चिन्तन

त्याग करने वाला सदैव उच्चता को प्राप्त करता है, ग्रहण करने वाला निम्नता को, फिर भले ही वह त्यागी ही क्यों न हो, ग्रहण करते समय वह लघु एवं देने वाला उच्च होता है।

महानुभाव!

पढ़ने में आया, जो लोग मंदिर के द्रव्य का सेवन करते हैं, पूजन के द्रव्य का सेवन करते हैं, प्रतिष्ठा के द्रव्य का सेवन करते हैं, वे निर्माल्य सेवन पाप के भागीदार होते हैं। किंतु ये भी पढ़ने में आया है जो अपनी न्यायोपार्जित आय का 1/4 हिस्सा या 1/6 हिस्सा या 1/8 हिस्सा या कम से कम 1/10 हिस्सा दान नहीं करते हैं, वे भी निर्माल्य सेवन के समान पाप के भागीदार होते हैं। इसलिये अपनी आय का 1/10 हिस्सा तो धर्म के लिये निकालना ही चाहिये।। वैसे तो 1/4 कहा है, यदि 1/4 नहीं कर पाये तो 1/6, इतना भी नहीं कर सकता तो 1/8 और इतना भी नहीं कर पाये तो 1/10, इससे कम करता है तो वह निर्मालय सेवन के पास का भागीदार होता है।

महानुभाव! दान के सम्बन्ध में, त्याग के सम्बन्ध में आचार्यों ने बड़ी-बड़ी व्याख्याएँ दीं, बहुत उपदेश दिया, बहुत संकेत दिये क्योंकि ये दान ही तो एक धर्म है, जो श्रावक को संसार से तार सकता है, जो श्रावक को श्रावक के पापों से मुक्त करता है। आचार्य भगवन् समंतभद्र स्वामी जी कहते हैं-

''गृह कर्मणापि निचितं कर्म विमार्ष्टि खलु गृह विमुक्तानाम्।
अतिथीनां प्रतिपूजा रुधिर मलं धावते वारि॥114॥ (र.सा.)

''गृहस्थ अवस्था में संचय किये हुये जो पाप हैं, उनके नष्ट करने का यदि कोई उपाय है तो वह है, जिन्होंने गृह आदि समस्त

सर्वोदयी चिन्तन
दान एवं त्याग में यही अंतर है कि दान देते समय दाता भक्ति भावन से सहित हो स्व व परोपकार की अपेक्षा रखते हुए वस्तु को देता है किन्तु त्याग करते समय कोई अपेक्षा नहीं होती, मात्र स्वयं उसके बंधन से मुक्त हो उसे छोड़ देता है।

परिग्रहों का त्याग कर दिया, ऐसे अतिथियों की पूजा करना, उपासना करना, चार प्रकार का दान देकर के वैय्यावृत्ति करना।'' ये संचित पाप कर्मों को धोने का उपाय है, इन्हीं के माध्यम से संचित पाप कर्मों को धोया जा सकता है। दान ही तो तुम्हारे पास है और पूजा भी करोगे तो बिना दान के तो करोगे नहीं, पूजा के लिये भी सामग्री चाहिये। पूजा कभी भी करें, पूजा सदैव अपने ही द्रव्य से करनी चाहिये, कभी भी दूसरों के द्रव्य से पूजा नहीं करनी चाहिये। यदि दूसरे के द्रव्य से पूजा की जाती है तो पुनः उसकी द्रव्य उसे दे देना चाहिये। यदि दूसरे के द्रव्य से पूजा की जाती है तो आपको केवल उसकी मजदूरी मिलती है, शारीरिक श्रम का (पूजा का फल) फल नहीं मिल पाता। इसलिये दान के सम्बन्ध में कहा है-

''ध्यानेन शोभते योगी संयमेन तपो धनः।
सत्येन वचसा राजा गृही दानेन शोभते॥''

योगी की शोभा ध्यान से है, तपोधन की शोभा संयम की साधना से है, राजा की शोभा सत्य वचनों का पालन करने से है, उसी प्रकार श्रावक की शोभा दान देने से है। जो दान देता है, वह शोभा को प्राप्त होता है, कीर्ति को प्राप्त होता है, पूज्यता को प्राप्त होता है, इसलिये आचार्यों ने दान को धर्म कहा है। कोई कहे-दान पुद्‌गल की क्रिया है, जड़ की क्रिया है। आपको कोई चीज दान दे दी तो क्या धर्म हो गया? धर्म तो चेतना का स्वभाव होता है। तुमने आहार दिया, औषध दान दिया, तो क्या धर्म हो गया? हाँ! धर्म हो गया, ये भी चेतना का स्वभाव है। ग्रहण करना चेतना का स्वभाव नहीं है, त्याग करना

चेतना का स्वभाव है। तुम दान दे रहे हो, उस वस्तु के प्रति तुम्हारा ममत्व भाव कम हो गया, अंतरंग में आनंद आया, यही तो धर्म है। इसलिये जितने भी आचार्यों ने धर्म की बात कही, वहाँ दान को धर्म कहा है। दान भी निश्चय धर्म है, व्यवहार धर्म नहीं है। दान व्यवहार धर्म के होने से बाहर की वस्तु के साथ-साथ जब अंतरंग के परिणामों का त्याग किया जाता है, नवधा भक्ति से दान दिया जाता है तो उन कुभावों का त्याग करना ही तो निश्चय धर्म कहलाता है। निज स्वभाव की प्राप्ति कर लेना ही तो निश्चय धर्म है। इसलिये दान करना चाहिये, त्याग करना चाहिये। लेकिन त्याग करके पीछे मुड़कर नहीं देखना चाहिये। जिस वस्तु का त्याग किया है, उसे पुनः मुड़कर नहीं देखना है, जो छोड़ दिया सो छोड़ दिया। यदि उस त्याग को तुम मुड़कर देखते हो तो वह त्याग सातिचार त्याग कहलायेगा, अतिचार सहित है। त्याग के बाद तो कोई अपेक्षा नहीं होनी चाहिये।

त्याग तथा दान में थोड़ा अंतर है। त्याग किसी भी वस्तु का कहीं भी, किसी के द्वारा, कैसे भी किया जा सकता है। किंतु दान के लिये अपेक्षा है। आपको कोई भी वस्तु छोड़ना है, छोड़ दिया, पड़ी है पड़ी रहने दो, कोई मतलब नहीं, कोई विकल्प नहीं ये त्याग कहलाया और दान देना तो उत्तम पात्र को देना है। कुपात्र को नहीं देना है। दान उसी को देना जहाँ उसका सदुपयोग हो, यदि दुरुपयोग होता है, तो वह दान सार्थक नहीं होता। दान देने में स्व-पर का उपकार होता है। त्याग करने में केवल आत्मा का उपकार होता है इसीलिये दान देने वाले व्यक्ति दान देने के उपरांत यह भी ध्यान रखें कि मेरे द्वारा देय द्रव्य का सदुपयोग हो रहा है कि नहीं हो रहा है और जिस वस्तु की आवश्यकता हो उसमें दान देना चाहिये। यदि भूखे व्यक्तियों में चार रोटी दे दीं, रूखी, कच्ची, जली, टेढ़ी-मेढ़ी रोटी, दस व्यक्तियों ने आधा-आधा ग्रास बाँट के खा ली और वही चार रोटी उनके लिये आपने दी, जो छप्पन प्रकार के व्यंजन खाकर डकार लेते जा रहे हैं, वे रोटियों को देखेंगे भी नहीं, ठोकर मारते हुये

चले जायेंगें। भोजन की कीमत व्यक्ति कभी नहीं चुका सकता, पानी की कीमत व्यक्ति कभी नहीं चुकाता। भोजन की कीमत भूख से बढ़ती है, जितनी तेज भूख होती है, उतनी अधिक कीमत भोजन की बढ़ जाती है, जितनी अधिक प्यास होती है, उतनी ही कीमत पानी की बढ़ जाती है।

महानुभाव!

कहने का आशय यह है कि भोजन पानी की कीमत भूख-प्यास से होती है। जो दान की कीमत है वो एक रुपया भी हो सकती है, एक रुपये की कीमत दस रुपये भी हो सकती है, एक रुपये की कीमत हजार रुपये भी हो सकती है, लाख रुपये भी हो सकती है, दस पैसे भी हो सकती है, एक पैसा भी हो सकती है तथा मिट्‌टी के बराबर भी हो सकती है। दस हजार की गड्‌डी यदि आपने ऐसे काम में लगा दी जिसके माध्यम से आप युगों-युगों तक पुण्य का आस्रव करते रहें तो उनकी कीमत असंख्यात रुपये हो गई। यदि उन्हीं दस हजार रुपये में आपने आग लगा दी तो उन रुपयों कि कीमत मिट्‌टी के बराबर हो गई।

सर्वोदयी चिन्तन

प्राणीमात्र का स्वभाव त्याग है, त्याग ही अंतिम नियति है, बिना त्याग के आज तक किसी ने अपना स्वभाव प्राप्त नहीं किया।

महानुभाव!

दान का फल अब भी मिलता है। तत्काल भी मिलता है, दान का फल कालान्तर में भी मिलता है। कहने का आशय है, जैसा दिया जाता है, वैसा ही प्राप्त हो जाता है। लोग कहते हैं-

पानी बाढ़े नाव में, घर में बाढ़े दाम।
दोनों हाथ उलीचिये, यही सयानो काम।।
या धन की गति तीन हैं, दान, भोग अरु नाश।

दान भोग यदि ना दिया, निश्चय होय विनाश॥

लक्ष्मी के सुत चार हैं, धर्म, अग्नि, नृप, चोर।
जहाँ जेठे की कदर नहीं, तीनों लेत बटोर॥

धन दौलत का रुखड़ा, दो फल का दातार।
दान दिये तो शिव मिले, संचय नरक के द्वारा।

धन-दौलत के वृक्ष पर दो प्रकार के फल लगते हैं, एक मीठे फल एक कड़वे फल। यदि उन फलों का संचय कर लिया जाता है, तो उन फलों के माध्यम से नरक की प्राप्ति होती है।

''बहुआरम्भपरिग्रहत्वम् नारकस्यायुषः'' (त.सू. 15/6)

और यदि उनका त्याग कर दिया जाता है तो परम्परा से (धर्म) चक्रवर्ती की तरह मोक्ष की प्राप्ति भी हो जाती है। धन के बारे में कहा- आपके तन, मन, जीवन, चेतना को भी पावन करने में धन कारण होता है। आचार्य कुन्दकुन्द स्वामी जी के शब्दों में धन को सात स्थानों पर व्यय करना चाहिये-

सर्वोदयी चिन्तन

क्या तुम इस रहस्य को नहीं जानते हो कि मेघ ऊपर, समुद्र नीचे होता है एवं आहार दान लेने वाले के हाथ नीचे व देने वाले के ऊपर होते हैं, भले ही आहर लेने वाले तीर्थंकर ही क्यों न हों, देने वाली भले ही एक अबला नारी चंदना ही क्यों न हो।

''जिनबिम्बम् जिनागारम्, जिनयात्रा, महोत्सवम्।
जिनतीर्थम्, जिनागमम्, जिनायतनानि सप्तधा॥''

ये सात क्षेत्र हैं। इन सात क्षेत्रों में श्रावकों को अपने धन का व्यय करना चाहिये। जिनेन्द्र भगवान् के बिम्ब का यदि निर्माण हो रहा हो, कोई मूर्ति बन रही है, तो एक पैसा भी मूर्ति में देने से तुम धन्य हो जाओगे, यदि जिनेन्द्र भगवान् के मंदिर का निर्माण हो रहा हो तो दो पैसा भी दे देने से आप पुण्य की प्राप्ति कर सकते हो। यदि कभी

जिन यात्रा का अवसर आता, किसी साधु संघ की यात्रा हो रही है, या कोई और भी यात्रा करने वाला संघ आ रहा है, उसमें आपका सहयोग हो रहा है तो वह तीर्थ वन्दना से धन भी पुण्य का आस्रव करायेगा, उसका 1/6 हिस्सा अथवा उससे कम-ज्यादा भी, आपको प्राप्त होगा। आगे कहा कि जो तीर्थ प्राचीन है, उनकी करुण पुकार सुनने वाले बहुत कम हो गये, लोग अपने कानों में हथेली रखकर बैठे हैं। तीर्थों की क्या दुर्दशा हो रही है और तुम्हारे पैसे का दुरुपयोग हो रहा है। **यदि सभी जैन समाज यह नियम ले लें कि चातुर्मास आदि में जो रंगीन पत्रिकायें छपवा दी जाती हैं, यदि पत्रिका न छपवा कर, पैसों को इकट्ठा कर लिया जाये तो एक साल में कम से कम चार-चार तीर्थों का जीर्णोद्धार किया जा सकता है।** इस चातुर्मास की यह बात दुर्ग (छत्तीसगढ़) तक पहुँच गई। उनके पास रयणसार की पुस्तकें पहुँची, उनके दो पत्र प्राप्त हुये। लिखा है- ''इस समाज के लिये धन्य हो'' उन्होंने कहा है- 'प्रत्येक वर्ष पत्रिका के माध्यम से करोड़ों रुपया खर्च हो जाता है। यदि ऐसे ही पैसे का दुरुपयोग होता रहा तो उसकी कोई सार्थकता नहीं हो पायेगी''। आगे कहा- ''जिनागम''-यदि पैसों का खर्च करना है, छपाना ही है, जिससे श्रावक का नाम आ जाये तो जिनवाणी का प्रचार-प्रसार करो, जिसके माध्यम से ''एक पंथ और दो काज''होंगे। जिनवाणी का प्रचार-प्रसार, सम्यक्ज्ञानियों की वृद्धि, सम्यग्ज्ञान के लिए प्रेरणा, ज्ञानावरणी कर्म का क्षयोपशम, तुम्हारा नाम, तुम्हारा मान-सम्मान और अपनी जैन संस्कृति को स्थाई रूप देना है, मौन रूप से जैन संस्कृति को कहना, लिपिबद्ध करके जिनवाणी को छपवाना। आज भी यदि सौ वर्ष प्राचीन पुस्तक हाथ में आती है, तो देखकर गद्गद् हो

सर्वोदयी चिन्तन

त्यागी के चरण सान्निध्य में रहकर भी यदि आपके मन में त्याग का परिणाम नहीं आये तो आप उसी व्यक्ति के समान मूर्ख हैं जो ग्राहक बन दुकान पर आया, दिन भर बैठ रहा, पुन: खाली हाथ चला गया।

जाते हैं, किस पुण्यात्मा ने इस शास्त्र को छपवाया होगा। धन्य है वह पुण्यात्मा जीव जिसने जिनागम की प्रभावना की, जिनागम का प्रचार-प्रसार किया। यह जैन संस्कृति को स्थाई रूप देने का ही एक कार्य है। इस कार्य में भी व्यक्तियों को अपना धन व्यय करना चाहिये, यह समीचीन व्यय कहलाता है।

'जिनायतनानि'– जिन जिनेन्द्र भगवान के सम्बन्ध में कोई भी आयतन हो, कोई भी कार्य हो, चाहे आप मंदिर के लिये घंटा दे रहें हैं, ध्वजा लगा रहे हैं, भामण्डल लगा रहे हैं, चँवर रख रहे हैं, छत्र टांग रहे हैं इत्यादि बहुत सारी आवश्यकता हो सकती हैं, जितने भी धन से सम्बन्धित कार्य हैं, उनमें भी आप व्यय करते हैं, तो वह भी सार्थक हो जाता है किंतु उसमें भी एक कार्य और है। आचार्य कुन्दकुन्द स्वामी के साथ-साथ अन्य अनेक आचार्यों ने भी कहा है कि **नवीन निर्माण कराने की अपेक्षा से, पुरातन मंदिरों के जीर्णोद्धार करने में, किन्हीं आचार्यों के शब्दों में चौगुना पुण्य मिलता है, किन्ही आचार्यों के शब्दों में शतगुना पुण्य मिलता है।** यदि एक हजार नये मंदिर बनवाये हैं, एक पुराने मंदिर का जीर्णोद्धार करा दिया है, तो वह एक जीर्णोद्धार एक हजार नये मंदिरों के निर्माण से श्रेयस्कर हो सकता है, श्रेष्ठ है। महानुभाव! इसका कारण ये है, पुरातन संस्कृति की रक्षा की है। यदि नई हजारों संस्कृतियाँ खड़ी कर दी जायें तो उनसे प्राचीन संस्कृति पैदा नहीं हो सकती। सौ पुत्रों को पैदा करके भी कोई एक पिता को जीवित नहीं कर सकता। प्राचीन तीर्थक्षेत्र हमारे पिता के तुल्य हैं, पूर्वजों के तुल्य हैं, जो हमारे पास हैं, उन्हें बेमौत की मौत नहीं मारें।

महानुभाव!

इस दान के अलावा आचार्यों ने चार प्रकार का दान और कहा है-

"उत्तम त्याग कहो जग सारा,
औषध, शास्त्र, अभय, आहारा।"
"दान चार परकार, चार संघ को दीजिये
धन बिजली उनहार, नरभव लाहो लीजिये॥"

चार प्रकार के दान होते हैं– औषध दान, अभय दान, शास्त्र दान और आहार दान। चार प्रकार के जो संघ होते हैं, ऋषि, मुनि, यति, अनगार अथवा मुनि–आर्यिका, श्रावक–श्राविका उस चार प्रकार के संघ को आहार दान देना चाहिये। जिसके माध्यम से वे साधना कर सकें। औषध दान, यदि वे निरोग होंगे तो साधना कर सकेंगे। इसके उपरांत वसतिका दान, वे कहाँ रहेंगे? अर्थात् अभयदान। इसके उपरांत शास्त्र दान। अगर सब कुछ है, ज्ञान के उपकरण नहीं है तो ज्ञान कैसे प्राप्त होगा? इसलिये शास्त्र दान देना चाहिये।

महानुभाव!

जो विवेकी श्रावक चारों प्रकार के दान देता है, वह अपने साथ धन ले जाता है और यदि नहीं देता तो वह नहीं ले जा पाता है।

" जो दे गये, सो ले गये। जो धर गये, सो मर गये"

जो दे जाते हैं, वे ले जाते हैं, जो घर जाते हैं वो सदैव के लिये मर जाते हैं। मुनि महाराज को दान देने वाला या तो स्वर्ग जाता है या फिर भोगभूमि जाता है। क्यों? क्योंकि उसने आहार दान दिया है। उस आहार दान के फल से उत्तम भोग भूमि की प्राप्ति होगी। वे उत्तम भोग कहाँ प्राप्त होंगे? स्वर्गों में? यदि सम्यग्दृष्टि है तो स्वर्ग जायेगा, उत्तम भोगों को प्राप्त करेगा। यदि उसने पहले मिथ्यात्व की दशा में मनुष्यादि आयु का बंध कर लिया तो वह पहले भोग भूमि जायेगा, वहाँ भी दस प्रकार के कल्पवृक्षों के माध्यम से भोग भोगेगा। दूसरी बात ये भी है, आपने जिन मुनि महाराज को आहार दिया, जहाँ मुनि महाराज पहुँचे, वहीं तुम आहार देने के लिये पहुँच

जाओगे। मानों मुनि महाराज इन्द्र बन गये तो तुम उनके सामंत देव बन जाओगे। माना मुनि महाराज तीर्थंकर बन गये तो तुम परम्परा से उनके गणधर बन जाओगे। जैसा कि भगवान आदिनाथ का जीव, जिसने पहले आहार दान दिया,

सर्वोदयी चिन्तन
त्याग करने वाला आदमी दम्भी नहीं सहज होना चाहिए क्योंकि त्याग करके आपने किसी पर अहसान नहीं अपितु स्वकल्याण व निज स्वभाव को प्राप्त करने का कदम बढ़ाया है।

पुन: मुनि अवस्था में आहार लिया। तो आहार दान देने वाला वह राजा श्रेयांस का जीव उनके साथ क्या मोक्ष नहीं गया? क्या उसका कल्याण नहीं हुआ? होता है, नियम से होता है। कहने का आशय है तुमने जिसको दिया है, ''कैसे दिया है?'' विद्वेष भाव से दिया या राग भाव से दिया। राग से दिया, परमभक्ति से दिया, तो जिसके प्रति दिया तो तुम भी वहीं पहुँचोगे। यदि मुनि महाराज आठवें स्वर्ग में पहुँचे तो उन्हें भक्तिपूर्वक दान देने वाला, तीव्र राग से दान देने वाला, वह भी आठवें स्वर्ग ही पहुँचेगा और यदि आपने उस धन को जहाँ खर्च किया है, आप जिसके प्रति आसक्त हैं, वहीं पहुँच जाओगे। आपने कभी देखा होगा या सुना होगा, व्यक्ति कभी-कभी सर्प बन जाता है और मरकर वे कहाँ गये? अरे! वे तो सर्प हो गये, अब कहाँ दिखाई देते हैं? सपने में दिखाई देते हैं, अपने धन की रक्षा कर रहे हैं, कुण्डली बनाकर अपने धन के ऊपर बैठे हैं। वे पहले व्यक्ति अपने धन को जमीन में गाढ़ देता था, तो सर्प बन जाता था लेकिन अब व्यक्ति अपने धन बैंक में भर देता है, अब वह सर्प नहीं बलेगा, चील बनेगा, जो बैंक के चक्कर काटेगा। इसलिए यदि किसी के पास धन हो तो बैंक में डालकर नहीं जाए, यदि हो तो उसको दे जायें, लड़कों को बाँट जायें या किसी को दे जायें जिससे तुम्हारी आसक्ति उसके प्रति कम हो जाये, मूर्छा भाव नहीं रहे। एक बात और देखने या सुनने में आती है।

किसी ने कहा–सूअर कभी- कभी जब गलियों में घूमते हैं तो वह सूअर अपने मुँह से जमीन खोदते रहते हैं। किसी ने पूछा–"वे अपने मुँह से जमीन क्यों खोदते रहते हैं?" तो बताने वाले ने बताया कि ये पूर्व भव में बहुत बड़े सेठ थे, अपने धन को जमीन में गाढ़ के मर गये, अब सूअर बन गये तो उसे खोद रहे हैं। अब इसमें कहाँ तक सत्य है कहाँ तक असत्य है यह तो नहीं कह सकते? किन्तु तथ्य एक बहुत बड़ा है। यदि कोई व्यक्ति अपने धन को गाढ़कर मर जायेगा, यदि उसने अपना धन मायाचारी से इकट्ठा किया होगा तो सेठ वह सुअर भी बन सकता है, यह कोई बड़ी बात नहीं है।

सर्वोदयी चिन्तन

त्याग का महत्त्व त्यागी ही समझ सकता है, रागी नहीं। जिसने कभी मिश्री नहीं खाई तो वह उसका स्वाद क्या जाने?

एक सेठ जब स्वर्ग में पहुँच गया था तो स्वर्ग में लेने के लिए देव आये, हजार प्रकार के बाजे बज रहे हैं और बड़े धूमधाम के साथ सेठ को ले जाया गया, पहुँच गये। उसके तुरन्त बाद ही एक महात्मा जी पहुँचते हैं तो गेट बंद। महात्मा जी ने दो चार दस्तक लगाई तो गेट खुला। अच्छा आप आ गये, चलो आ जाओ। महात्मा जी अंदर स्वर्ग में पहुँचे, सभा में पहुँचे। वहाँ पर पूछा गया कि आप ये बताइये, मेरे साथ इतना बड़ा अन्याय क्यों किया गया है? स्वर्ग में जो भी आता है, सम्मान के साथ बुलाया जाता है। एक सेठ की आत्मा आई उसे लेने के लिए देव समूह गया, साढ़े छप्पन करोड़ प्रकार के बाजे बजाये गये और मेरे लिए एक बाजा भी नहीं, ये तो बहुत बड़ा अन्याय हुआ। मैं भी इसी स्वर्ग में आया हूँ, मैं भी उससे बड़ा देव बना हूँ, मेरे लिए क्यों नहीं स्वागत किया गया? देवों ने कहा–"ये अन्याय नहीं, कुछ मजबूरी है?" क्या मजबूरी है? मजबूरी ये है कि तुम जैसे महात्मा तो स्वर्गों में रोज आते हैं, हजारों आते हैं, अब किन-किन की अगवानी करें? ये सेठिया लोग तो वर्षों

में एकाध आते हैं, अधिकांश तो नरक में जाते हैं। मुश्किल से एकाध तो आते हैं, जो आसक्ति भाव कम कर लें, जो अपने पाप की कमाई को छोड़कर चले आयें, ऐसे तो बहुत मुश्किल से आते हैं, इसलिए उनका बड़ी धूम-धाम से स्वागत करते हैं।

महानुभाव!

कहने का आशय यह है कि दान सद्गति का कारण है। आपने सुना होगा–

''भावना भव नाशनी, भावना भव वर्धनी''

लेकिन ये कब?

''दानं दुर्गति नाशाय, शीलं सद्गति कारणं।
तपः कर्मविनाशायः, भावना भव नाशनी॥''

दुर्गति का नाश दान के माध्यम से होता है, शील के माध्यम से सद्गति की प्राप्ति होती है, तप के माध्यम से कर्म का नाश होता है, तब भावना भव नाशनी बनती है। यदि ऐसा कार्य नहीं किया तो केवल भावना भाने से काम नहीं चलता है।

महानुभाव!

दान देते समय कभी यह नहीं सोचना चाहिए कि बाद में दे देंगे क्योंकि व्यक्ति को इच्छानुसार धन कभी प्राप्त नहीं हो पाता। जब जितना है उतने में ही अपना धर्म कार्य कर लेना चाहिए। भविष्य अंधकारमय होता है। एक कथानक पढ़ने में आता है।

सर्वोदयी चिन्तन

यदि तुम निज स्वभाव में जीओ, तब तो तुम्हें त्याग करने की कोई आवश्यकता नहीं, यदि स्वभाव में स्थिर नहीं रह सकते तो परभावों का त्याग करो, जिससे स्वभाव को पा सको।

दो महिलायें थीं। एक का नाम था गंगा, एक का नाम था यमुना। दोनों एक ही नगर में रहती थीं। गंगा का बहुत बड़ा भवन था। यमुना एक टूटी झोंपड़ी में रहती थी। यमुना बाहर से गरीब दिखाई दे रही थी किन्तु अंतरंग से बहुत सम्पन्न थी। गंगा बाहर से बहुत धनाढ्य दिखाई दे रही थी, किन्तु अंतरंग से बहुत गरीब थी। एक भिक्षुक याचना के लिए नगर में जाता हैं सभी नगर के लोगों से वह याचना करता है और कहता है-"मैं एक साधक हूँ, मैं क्षुधा से बहुत पीड़ित हूँ, मेरी क्षुधा को दूर करने के लिए भोजन मिल जाए और सर्दी दूर करने के लिए वस्त्र मिल जायें।" सभी के द्वार-द्वार जाता है किन्तु किसी व्यक्ति ने उसे कुछ नहीं दिया। जब वह गंगा के द्वार पर पहुँचा और आवाज लगाता है, गंगा अपने ए.सी. में विश्राम कर रही थी, समस्त सुख-सुविधायें उसके लिए हैं। नीचे से आवाज आयी। वह जाकर देखती है। पहले तो मन में आया उसे भगा दे, बाद में मन में आया, चलो दे दें। नीचे उतर कर जाती है जो चार सूखी रोटियाँ रखी थीं (गाय के लिए उसे डाल नहीं पाई) एक आध कपड़ा फटा हुआ पड़ा था, उसने दे दिया और तीन दिन की बासी रोटी दे दी। महात्मा जी लेकर चले जाते हैं। पुनः यमुना के घर पहुँचते हैं। उससे भी कहते हैं कि मुझे कुछ पहनने के लिए मिल जाए तो अति उत्तम हो। यमुना कहती है-मैंने तो सुबह भोजन कर लिया है तुम तीन दिन से भूखे हो। उसके पास चार रोटियाँ रखी थीं मोटी-मोटी नमक की रोटी रखीं थी, सब्जी आदि कुछ नहीं थी। उसके पास दो चिथड़े थे, उसने एक चिथड़ा उसे दे दिया और चार रोटियाँ दे दीं। वह महात्मा जो एक महात्मा के रूप में देवदूत था, चला जाता है। कुछ देर के बाद घनघोर बादल छा जाते हैं, बहुत तेज वर्षा होती है, नगर में पानी भर गया, बाढ़ की स्थिति बन गई, मकान बहने लगे, लोग अपने घरों को खाली करके बाहर निकलने लगे, जब लोग बाहर निकले तो वह महात्मा दिखाई देते हैं। एक टापू के ऊपर महात्मा की झोंपड़ी बनी है, बहुत बड़ा, लम्बा आसन दिखाई

दे रहा है, वहाँ पानी की बूँद भी नहीं है। सभी लोग वहाँ पहुँच गये, भूखे थे। सभी लोगों ने कहा–महाराज–'आपका आसन तो बहुत अच्छा है। हमारे प्राण तो बच गये किन्तु जोरों से भूख लगी है, यदि तुम्हारे पास कुछ है तो दे दो। सभी लोगों से महात्मा जी ने कहा–''भैया मेरे पास कुछ नहीं है, आश्रम खाली पड़ा हुआ है। यदि आप स्वयं कुछ बना सको तो देख लो तुम्हें मिल जाये। किन्तु किसी को कुछ नहीं मिला। गंगा और यमुना भी माँगने के लिए पहुँची। उसने गंगा के लिए वे ही उसकी चार रोटी जो कि तीन दिन की बासी थी दे दीं। गंगा ने जब ठंडी से बचने के लिए वस्त्र माँगा तो वह फटा हुआ टाट दे दिया। यमुना ने कहा तो यमुना को बिना कहे वह चार रोटियाँ दे दीं और जो उसका चिथड़ा था, वह उसे वापस कर दिया। पुनः गंगा पश्चाताप करती है। यमुना तो अपने आप में प्रसन्न होती है। धन्य है, मैंने जैसा दिया, वैसा ही मुझे मिल गया। गंगा कहती है, काश! मैं इस भिखारी को चाहती तो मेरे घर में जो पकवान बन रहे थे, मैं दे देती तो आज मुझे पकवान खाने के लिए मिलते। मेरे पास बहुत अच्छे-अच्छे कपड़े रखे थे, किन्तु वे सब पकवान नष्ट हो गये, कपड़े नष्ट हो गये, धन- दौलत नष्ट हो गई, मकान भी नष्ट हो गया। जो दिया था बस वही मिल पाया है, पश्चाताप करती है।

महानुभाव!

वहाँ पर तो जो देवदूत ने परीक्षा ली थी, उसने तो ज्यों का त्यों लौटा दिया किन्तु जैन दर्शन कहता है, ''यहाँ तो एक बीज के अनेक बीज हो जाते हैं।'' बरगद का एक बीज बो दिया तो उससे बहुत सारे बीज उत्पन्न हो जाते हैं, इसलिए देना अवश्य चाहिए लेकिन कुछ

सर्वोदयी चिन्तन

जिसने पर वस्तुओं का ग्रहण किया है उसके लिए ही त्याग धर्म का उपदेश दिया जाता है, जो स्वभाव में लीन है वह तो त्यागी है ही।

लोग ऐसे होते हैं, जो न लेते हैं, न देते हैं, केवल मन में मिसमिसाते रहते हैं। कोई दान दे तो भी अच्छा नहीं लगता, लेता है तो भी अच्छा नहीं लगता।

एक बार अकबर और बीरबल में बात हुई तो बीरबल ने अकबर से पूछा–''जहाँपनाह'' देखो कुदरत की कितनी बड़ी देन है। शरीर के सभी अंगोपांग में बाल दिये किन्तु हथेली में बाल नहीं दिये, पैर के तलवों में बाल नहीं दिये। अकबर ने कहा–इसमें कोई रहस्य होना चाहिए। यह प्रकृति का नियम नहीं है। अब रहस्य सभी से पूछा तो सभा के लोग शांत रह गये, उस रहस्य को नहीं बता सके। पुन: पूछा कि इसका रहस्य कया है? बीरबल ने कहा–महाराज आपकी हथेली में बाल न होने का रहस्य ये है कि आप जैसा दाता कोई नहीं है, आप बहुत दान देते हो, आप पैरों से तीर्थों की वन्दना करते हो तो चलते-चलते पैरों के तलवे घिस गए और दान देते-देते हथेली के बाल घिस गए। बीरबल ये तुम्हारी प्रशंसा की बात है। यह बात स्वीकार की जा सकती है किन्तु मेरे बाल तो ऐसे घिस गए, तेरी हथेली में बाल क्यों नहीं हैं? जहाँपनाह, मैं तो आपका कृपापात्र हूँ। आपने मुझे इतना दिया, इतना दिया है कि लेते-लेते मेरे बाल घिस गए। पुन: बादशाह कहते हैं–बीरबल यदि ऐसी ही बात है कि मेरी हथेली के बाल देते-देते और तेरे बाल लेते-लेते घिस गए हैं तो इतनी बड़ी सभा बैठी है, इनके बाल कैसे घिस गए? पुन: बीरबल कहते हैं, आपने मुझे दिया, मैंने लिया। ये अपने हाथ मलते रहे-मलते रहे, मलते-मलते इनके हथेली के बाल घिस गए। ये न तो ले पाये, न दे पाये।

कहने का आशय यह है कि ऐसे ही लोग होते हैं कि वह न तो ले पाते हैं, न दे पाते हैं। यदि लेना भी सीख जायें तो उसका जीवन सार्थक बन सकता है। यदि लेने की पात्रता नहीं है तो देना चाहिए या तो पूजा करो या पूज्य बनो, या तो आप दान दो या फिर दान लो,

या आप उपासना करो या स्वयं उपास्य बन जाओ। महानुभाव! यह एक बहुत बड़ा धर्म है। इसके माध्यम से (दान) जीवन को सफल करना है। क्योंकि अन्याय और अनीति का पैसा पास में नहीं रहता है।

सर्वोदयी चिन्तन
त्यागी ही व्रती, महाव्रती, उपशामक, क्षपक, सकल एवं निकल परमात्मा होता है, बिना त्याग के ही संसार में परिभ्रमण हो रहा है।

''रहे न कोड़ी पाप की, ज्यों आवे त्यों जाए।
लाखों को धन छोड़कर, मरे कफन न लहाय॥''

जीवन में व्यक्ति ऐसा भी होता है, खूब जोड़ा है, किन्तु वह देखते ही देखते नष्ट हो जाता है, करोड़ों, अरबों की सम्पत्ति भी नष्ट हो जाती है। इसीलिए यहाँ पर आचार्यों ने कहा–कि आपको यदि अपना जीवन सार्थक करना है तो देकर के सार्थक कर लो। चाहे तुमने कैसे भी धन कमाया है, क्योंकि–

''पो को धन, पो में गयो, तुम वेश्या हम भांड।''

तो यदि धन तुम्हारा दो नम्बर का आया है तो वह चला जायेगा, ठहर नहीं पायेगा। इसीलिए उसको निकाल दो। क्योंकि अन्याय के द्वारा अर्जित धन तुम्हारे मूल को भी ले जाता है। वह धन फलीभूत नहीं होता है।

''पानी का धन पानी में, नाक कटी बेईमानी में''

पानी का धन पानी में जाता है तो नाक व्यर्थ में कट जाती है। आपकी नाक न कट जाये उसके पहले उस धन को छोड़ दें तो बहुत अच्छा है। यह कहावत कैसे प्रारम्भ हुई–

एक ग्वालिन थी जो कि दूध बेचने जाती थी और तालाब में से पानी मिलाती थी और पानी मिलाकर दूध बेचती थी, बहुत सारा उसने पैसा कमा लिया। उसने उन पैसों से एक नथ (बाली) बनवायी और सोने की ऐसी बाली बनवायी जैसी किसी के पास नहीं

थी। उसने बाली खूब अच्छी-बड़ी सी बनवायी जिससे लोग उससे पूछें कि ये बाली कब बनवाई? कितने की बनवाई? कहाँ से बनवाई? कैसे आई? जब चार व्यक्ति प्रशंसा करेंगे तो आनंद भी आयेगा। तो खूब वजनदार बाली बनवाई। बाली को नाक में पहन ली, नाक में बड़ा छेद हो गया। बाली पहनकर वह रोज दूध बेचने जाती थी। वह दूध बेचने जाती थी तो उसे एक नदी पार करनी पड़ती थी। संयोग से एक बार वह दूध बेचकर लौट रही थी, नाव पर बैठी हुई थी। किनारे पर नाव जैसे ही आई, एक बंदर ने उसकी नाक पर झपट्टा मारा और बाली बंदर की अंगुली से टकराई और पानी में गिर गई और वह महिला अपनी नाक पकड़कर आती है, उसकी नाक कट जाती है।

लोगों ने पूछा क्या हो गया? बोली कुछ नहीं, मैंने यह धन पानी से कमाया था। इसी नदी का पानी मिला-मिलाकर मैंने दूध बेचा था, इसलिए पानी का धन, पानी में चला गया और मेरी नाक कट गयी। यह गंगामाई का प्रसाद था कि मैं दस किलो दूध लेकर आती थी और दूध दस किलो का पन्द्रह किलो हो जाता था।

महानुभाव!

यदि आपके पास जो कुछ सामर्थ्य हो, तन से, मन से, धन से, वचन से उसका सदुपयोग करने से ही चेतना का हित है, चेतना का कल्याण है। आप सभी लोग अपने कर्तव्य का पालन करें, इन्हीं सद्भावनाओं के साथ सभी लोगों के लिए मंगल आशीर्वाद।

अर्थ सहित कुछ छंद

त्याग एवं गुण:श्लाघ्य:, किमन्यै र्गुण शालिभि:।
त्यागात् जगति पूज्यन्ते, पशुपाषाणपादपा:॥1॥

अर्थ—अन्य गुणों की अपेक्षा त्याग गुण श्रेष्ठ है, त्याग के कारण ही पशु, पाषाण तथा वृक्ष आदि जगत् में पूजे जाते हैं।

त्यागो हि परमो धर्म, त्याग एव परं तप:।
त्यागाद्इह यशो लाभ:, परत्राभ्युदयो महान्॥2॥

अर्थ—त्याग ही परम धर्म है, त्याग ही परम तप है, त्याग से ही इस जगत् में यश का लाभ होता है और परलोक में महान् अभ्युदय की प्राप्ति होती है।

द्रव्यानुसारेण ददाति दानं, पात्रेषु शीलस्थित मानवेषु।
यो भावतो जैनमतानुरागी, सत्याग धर्मः कथितो जिनेन्द्रैः॥3॥

अर्थ—जो जैन मत का अनुरागी भावपूर्वक शील आदि में स्थित मनुष्यों को अपने द्रव्य के अनुसार दान देता है उसे जिनेन्द्र भगवान त्याग धर्म कहते हैं।

जो चयदि मिट्ठभोज्जं, उचयरणं रायदोससंजणकं।
दासदिममत्तहेदुं, चायगुणो सो हदे तस्सं॥4॥

अर्थ—जो मिष्ट भोजन और राग द्वेष को उत्पन्न करने वाले उपकरण को तथा ममत्व भाव के उत्पन्न होने में निमित्त वसतिका को छोड़ देता है, उसके त्यागधर्म होता है।

णिव्वेगतियं भावड़, मोहं चइऊण सव्वदव्वेसु।
जो तस्स हवे चागो, इदि भणिदं णिजवरिंदेहि॥5॥

अर्थ—जो समस्त द्रव्यों में मोह छोड़कर, संसार, शरीर और भोगों से विरक्त होता है उसके त्याग धर्म होता है ऐसा जिनेन्द्र भगवान ने कहा है।

कः पूरयति दुष्पूर-माशागर्त चिरादहो।
चित्रं यत्क्षणमात्रेण, त्यागेनैकेन् पूर्यते।।6।।

अर्थ–आशा रूपी गड्ढा चिरकाल में भी किसके द्वारा भरा जा सकता है? किन्तु आश्चर्य है कि त्याग के माध्यम से क्षण भर में पूर्ण हो जाता है।

दातृयाचकयो भेदिः कराभ्यामेव दर्शितः।
आर्थिनसतिष्ठतोऽधस्तात् स दातुपरिस्थितः।।7।।

अर्थ–दाता और याचक का भेद हाथों के माध्यम से दिखाया गया है, याचक का हाथ नीचे रहता है और दाता का हाथ ऊपर रहता है अर्थात् दाता बड़ा और याचक छोटा होता है।

धनानि जीवितं चेव, परार्थे प्राज्ञ मुत्सृजेत्।
सन्निमित्ते परं त्यागो विनाशे नियते सति।।8।।

अर्थ–बुद्धिमान् परोपकार के लिए धन और जीवन का त्याग करें। विनाश के निश्चित होने पर तथा समीचीन निमित्त के मिलने पर त्याग करना ही श्रेष्ठ है।

पात्रं दाता दानविधि र्देयं दान फलं तथा।
अधिकार भवन्येते, दाने पंच यथा क्रमम्।।9।।

अर्थ–पात्र, दाता, दान की विधि, देने योग्य वस्तु और दान का फल ये पाँच अधिकार क्रम से दान के विषय में जानना चाहिए।

साणुव्रताः शुद्धदशोऽकषायिणः।
स्वस्त्री प्रहष्टाः सदयाः शुभशयाः।
साधुप्रिया जैन जनोपकारिणः,
ते साधुभि र्मध्यमपात्रमीरितम्।।10।।

अर्थ–जो शुद्ध सम्यग्दृष्टि, अणुव्रती और कषाय रहित है, स्वस्त्री में संतुष्ट, शुभ परिणामी, साधु हैं प्रिय जिन्हें, ऐसे जैन मनुष्यों का उपकार करने वाले व्यक्ति साधुओं द्वारा श्रावक कहे गये हैं।

व्रतहीनान् सम्यग्दृष्टीन् जिनादि पंचपरमेष्ठिभक्ति-तत्परान्।

जिनशासन प्रभावकान् सधर्मिवत्सलान् जघ्न्यपात्रान् अवैहि॥11॥

अर्थ–व्रतरहित सम्यग्दृष्टि पंचपरमेष्ठी की भक्ति में तत्पर जिन शासन की प्रभावना करने वाले साधर्मियों में वात्सल्य करने वालों को जघन्य पात्र जानना चाहिए।

उत्कृष्ट पात्रमनगारमणुव्रताद्यं,
मध्यंव्रते नरहितं सुदृशं जघन्यं।
निर्दर्शनं व्रतनिकाययुतं कुपात्रं,
युग्मोज्झितं नरमपात्रमिदं तु विद्धि:॥12॥

अर्थ–उत्कृष्ट पात्र मुनि, मध्यम पात्र अणुव्रती श्रावक, जघन्यपात्र अविरत सम्यग्दृष्टि, कुपात्र सम्यग्दर्शन रहित व्रती तथा सम्यग्दर्शन और व्रत दोनों से रहित (इन्द्रिय विषय लोलुपी, स्वेच्छाचारी, कुमार्गगामी, कषाय बहुल) मनुष्य को अपात्र जानना चाहिए।

कुपात्रदानेन भवेद् दरिद्र:, दारिद्रदोषेण करोति पापं।
पापाधिकारी नरकं च गच्छेत्, पुनर्दरिद्र:पुनरेव पापी॥13॥

अर्थ–कुपात्र दान से दाता दरिद्र होता है, दरिद्रता के कारण पाप करता है, पापी नरक में जाता है, पुन: दरिद्र होता है फिर पाप करता है।

पंचसूनापार: पापं, गृहस्थ: संचिनोति यत्।
तदपि क्षालयत्येव, मुनिदान विधानत:॥14॥

अर्थ–पंच सूना में तत्पर गृहस्थ जिन पापों का संचय करता है, वे पाप मुनि दान की विधि से धुल जाते हैं।

शाठ्यं गर्वभवज्ञानं, पारिप्लवमसंयमं।
वाक्पारुष्यं विशेषेण, वर्जयेत् भोजनक्षणे॥15॥

अर्थ–शठता, अहंकार, अज्ञान, असंयम, कठोर वचन आहार दान के समय विशेष रूप से छोड़ देना चाहिए।

आनन्दाश्रूणि रोमाणि, बहुमानं प्रियं वच:।
पश्चात् दानानुमोदं च, दाने पंचैव भूशणम्॥16॥

अर्थ–आनन्द के आँसू, शरीर रोमांचित होना, बहुमान होना, प्रिय वचन बोलना और बाद में दान की अनुमोदना करना, ये पाँच दान के आभूषण हैं।

अनादरो विलम्ब च, विमुखं विप्रियं वचः।
पश्चातापोऽनुतापश्च, दाने पंचैव दूषणम्।।17।।

अर्थ–अनादरपूर्वक दान देना, देरी करना, विकृत मुख बनाना, कठोर वचन बोलना, दान देकर पश्चाताप करना और दुःखी होना, ये पाँच दान के दूषण हैं।

श्रद्धा भक्तिरलोभ्ज्ञात्वं, दश शक्तिः क्षमापराः।
विज्ञानं चेत्ति सप्तैते, गुणा दातु।।18।।

अर्थ–पात्र के प्रति श्रद्धा, भक्ति, उदारता, दया, शक्ति, क्षमा और विज्ञान, इस प्रकार ये सात गुण दाता के कहे गए हैं।

भोज्यं भोजनशक्तिश्च, रतिशक्तिवर्चरस्त्रियः।
विभवो दान शक्तिश्च, स्वयं धर्मकृतेः फलम्।।19।।

अर्थ–भोग्य सामग्री, भोजन, भोग भोगने की शक्ति, श्रेष्ठ स्त्रियाँ, वैभव दान देने की शक्ति इत्यादि सामग्री स्वयं धर्म करने के फलस्वरूप प्राप्त होती हैं।

रत्नत्रयोद्दयो भोक्तुर्दातुः पुण्योच्वयः फलं।
मुक्त्यन्त चित्राभ्युदय-प्रदत्वं तद्धिशिष्ठता।।20।।
आत्मनः श्रेयसेऽन्येषां, रत्नत्रय समृद्धये।
स्वपरानुहायेत्थं यत्, स्यात् तद्दानमिष्यते।।21।।

अर्थ–आहार लेने वाले साधु के रत्नत्रय की वृद्धि होती है और दाता के पुण्य की वृद्धि होती है तथा अनेक प्रकार के सांसारिक वैभव की प्राप्ति कर अंत में मुक्ति की प्राप्ति होती है। अतः जिससे स्व और पर का उपकार हो, उसे दान कहते हैं।

गौरवं प्राप्यते दानात्, न तु वित्तस्य संचयात्।
सिीति रुच्वैः पयोदानां, पयोधिनरामधः स्थितः।।22।।

अर्थ– दान देने से गौरव प्राप्त होता है किन्तु धन संचय करने से नहीं। जैसे मेघ पानी का दान करता है इसलिए ऊपर रहता है, समुद्र पानी ग्रहण करता है इसलिए नीचे रहता है।

यथाकालं यथादेशं, यथापात्रं यथोचितं।
दानेनेत्यं बुधाः शासनस्य प्रभावनाम्॥23॥

अर्थ– योग्य देश, काल और पात्र को देखकर दान देकर ज्ञानी जन जिन शासन की प्रभावना करें।

तस्यैव सफलं जन्म, तस्यैव सफला क्रिया।
सफलं गृहधान्यादि, येन दानं कृतं शुभम्॥24॥

अर्थ– उसी का जन्म सफल है, उसी की क्रिया सफल है, उसी के घर-धान्य आदि सफल हैं जिसने शुभ दान दिया है।

जिनबिम्बं जिनागारं, जिनयात्रा प्रतिष्ठितम्।
दानं पूजा च सिद्धातं-लेखनं क्षेत्र सप्तकम्॥25॥

अर्थ– जिन प्रतिमा, जिन मंदिर, जिन यात्रा, प्रतिष्ठा, चतुर्विध संघ को चार प्रकार का दान, पूजा, सिद्धांत के लेखन–इन सात क्षेत्रों में दान देना चाहिए।

दान का फल-दानियों की इस लोक में कीर्ति, प्रताप, भाग्यवृद्धि इत्यादि फल की प्राप्ति, परभव में भोगभूमि के भोगों को भोगकर स्वर्ग की प्राप्ति होती है। किन्तु जो सम्यग्दृष्टि सत्पात्र को दाना देता है, वह सोलहवें स्वर्ग की लक्ष्मी को प्राप्त कर तीर्थंकर-चक्रवर्ती के वचनातीत सुखों को प्राप्त होता है। सम्यग्दर्शन से रहित होने पर भी जो एक बार भी सत्पात्र को दान देता है, वह दान के प्रभाव से भोगभूमि के सुखों को प्राप्त कर स्वर्ग जाता है। इसलिए सद्गृहस्थ को हमेशा शक्ति के अनुसार दान देना चाहिए। उत्कृष्ट पात्र-दान से उत्कृष्ट भोगभूमि, मध्यम पात्र दान से मध्यम भोगभूमि और जघन्य पात्र-दान से जघन्य भोगभूमि प्राप्त होती है। सुपात्र में लगाया गया धन परलोक में अनन्त गुना फलता है। कुपात्र दान से कुभोग भूमि

एवं अपात्र दान से दुर्गति की प्राप्ति होती है।

प्रतिगृहोच्च संस्थानं, पादक्षालनमर्चनं।
प्रणाम योगशुद्धिस्तु, चैषणाशुद्धिरेवहि॥26॥

अर्थ—1. पड़गाहन, 2. उच्चस्थान, 3. पाद प्रक्षालन, 4. पूजा, 5. नमस्कार, 6. मनशुद्धि, 7. वचनशुद्धि, 8. कायशुद्धि, 9. आहारशुद्धि से नवधा भक्ति मानी गई हैं।

याचितं शतगुणं पुण्यं, लक्ष्य पुण्यमयाचितं।
गुप्तकं कोटि पुण्याय, सेवादान च निष्फलम्॥27॥

अर्थ—याचना करने पर देने से सौ गुना पुण्य होता है। बिना माँगे देने पर लाख गुना पुण्य होता है। गुप्त दान देने से करोड़ गुना पुण्य होता है। किन्तु सेवा के बदले में देना निष्फल है।

मादुपिदुपुत्तमित्तं, कलणधण धण्णवत्थुवाहण विहवं।
संसारसारसोक्खं, सव्वं जाणउ सुपत्तदाण फलं॥28॥

अर्थ—माता, पिता, पुत्र, मित्र, स्त्री, धन, धान्य, वस्तुएँ, वाहन, वैभव एवं समस्त संसार के श्रेष्ठ सुपात्र दान के फल जानना चाहिए।

उत्तम पत्त विसेसे, उत्तम भत्तीए उत्तमं दाणं।
एसदिणे वि य दिण्णं, दइंसुहं उत्तमं देदि॥29॥

अर्थ—उत्तम पात्र विशेष को उत्तम भक्ति से एक बार भी दिया गया दान इन्द्र आदि के उत्तम सुख को देता है।

आर्येभ्यः आर्यिकाभ्यश्च, वस्त्र दानेन धीधनाः।
अरजोम्बर धार्यस्ति, शुक्लध्यानी भवान्तरे॥30॥

अर्थ—आर्यिका, ऐलक, छुल्लक, ब्रह्मचारी, ब्रह्मचारिणी को वस्त्र दान करने से बुद्धिमान् दाता भवान्तर में धवल वस्त्र का धारी तथा क्रमशः शुक्लध्यानी होता है।

दानात् कमण्डलोः पात्रे, निर्मलाङ्गशुचिव्रतः।
मयूरवर्हदानेन, सुपुत्रश्चिर जीवितः॥31॥

अर्थ–पात्र के लिए कमण्डलु दान देने से दाता निर्मल शरीर का धारक पवित्र व्रती होता है तथा मयूर पिच्छिका दान करने से दाता दीर्घायु, सुपुत्रवान् होता है।

सोरुप्यमभयादाहु, राहाराद् भोगवान् भवेत्।
आरोग्यमौषधाज्ज्ञेयं-श्रुतात् स्याद्दुतकेवली॥32॥

अर्थ–अभयदान से निर्भयता, आहारदान से भोगों की प्राप्ति, औषधि दान से निरोगता की प्राप्ति और ज्ञान दान से केवल ज्ञान की प्राप्ति होती है।

कायस्थित्यथमाहारः, कायो ज्ञानार्थमिष्यते।
ज्ञानकर्मविनाशय, तन्नाशे परमं पदम्॥33॥

अर्थ–साधु शरीर की स्थिति के लिए आहर लेते हैं, शरीर स्वस्थ रहने पर ज्ञान की प्राप्ति होती है। ज्ञान से कर्मों का नाश होता है और कर्मों का नाश होने पर मोक्ष सुख की प्राप्ति होती है।

शमस्तपो दया धर्मः, संयमो नियमो यमः।
सर्वे तेन वितीर्यन्ते, येनाहारः प्रदीयते॥34॥

अर्थ–जिसने आहार दान दिया है, उसने समता, तप, दया, धर्म, संयम, नियम, यम सब कुछ दिया है क्योंकि आहार के बिना इन सबका पालन नहीं हो सकता है।

लिखित्वा लेखयित्वा वा, साधुभ्यो दीयते श्रुतं।
व्याख्यायतेऽथवा स्वेन, शास्त्रदानं तदुच्यते॥35॥

अर्थ–जो भव्य आत्मा (जीव) शास्त्र लिखकर अथवा लिखवाकर साधुओं को देता है या शास्त्र की स्वयं व्याख्या करता है, वह शास्त्र दान कहलाता है।

शास्त्रदान फलेनात्मा, कलासु सकलास्वपि।
परिज्ञातां भवेत् पश्चात्, केवलज्ञान भाजनम्॥36॥

अर्थ–ज्ञान दान के फल से आत्मा को समस्त कलाओं का ज्ञान होता है और अन्त में केवलज्ञान को प्राप्त होता है।

उत्तम त्याग धर्म के सम्बन्ध में कतिपय कथानक

1. **आहार दान में प्रसिद्ध राजा श्रीषेण–** मलय देश के राजा श्रीषेण ने अनन्त गति व अरिंजय नामक चारण ऋद्धिधारी मुनिराज को आहार दिया जिसके प्रभाव से राजा श्रीषेण ने बारहवें भव में शांति नाथ तीर्थंकर होकर मोक्ष को प्राप्त किया। बारह भवों तक संसार के दिव्य भोगों को भोगा। महान् पदों को प्राप्त कर अंत में सिद्ध पद पाया। **(शांतिनाथ पुराण से)**

2. **राजा वज्रजंघ–** जम्बूद्वीप सम्बन्धी पूर्व विदेह क्षेत्रस्थ पुष्कलावती देश के उत्पल खेटनगर का राजा वज्रजंघ अपने ही युगल पुत्र मुनिराज श्री सागर सेन व दमवर मुनिराजों को आहार दान देने से भरत क्षेत्र में वर्तमान काल सम्बन्धी चौबीसी में प्रथम तीर्थंकर हुए तथा अनुमोदन करने वाले जीव (मंत्री, पुरोहित, सेठ, सेनापति, सिंह, शूकर, बन्दर, नेवला) भी ऋषभदेव के साथ ही भरतादि चक्रवर्ती, कामदेव आदि होकर मोक्ष पधारे। **(आदिनाथ पुराण से)**

3. **श्री रामचन्द्र जी व सीता–** अयोध्या नगरी के राजा दशरथ की चार रानियाँ थीं– अपराजिता (कौशल्या) सुमित्रा, सुप्रभा एवं कैकयी। इनके क्रमशः राम, लक्ष्मण, शत्रुघ्न व भरत पुत्र हुए। कैकयी ने दशरथ से भरत को राज गद्दी रूप वरदान माँगा। दशरथ जी ने उक्त वरदान देकर वचन पूरा किया। तब पिता की आज्ञा से राम, लक्ष्मण, सीता वन के लिए चले गये। वहाँ वन में राम व सीता ने गुप्ति व सुगुप्ति नामक युगल

चारण ऋद्धिधारी मुनिराज को आहार दिया जिसके प्रभाव से श्रीराम जी तो मुनि दीक्षा लेकर गहन तप कर मोक्ष पधारे। सीता जी पृथ्वीमति आर्यिका से दीक्षा लेकर सोलहवें स्वर्ग में प्रतीन्द्र हुईं। आहारदान की महिमा अचिन्त्य है। **(विस्तार से जानने के इच्छुक महानुभाव श्री पद्मपुराण जी का स्वाध्याय करें।)**

4. **सेठ सुकेतु**– पुष्कलावती देश में पुण्डरीकिणी नाम की नगरी में राजा वसुपाल हुए, उन्हीं के राज्य में सुकेतु नाम का वैश्य हुआ। व्यवसाय हेतु द्वीपान्तर जाते समय मार्ग में पड़ाव डाल कर शुद्ध भोजन बनाया तथा गुण सागर नामक मुनिराज को आहार दिया, जिससे उसने पंचाश्चर्य प्राप्त किये। बाद में मुनि दीक्षा लेकर मोक्ष को प्राप्त किया। **(पुण्यास्त्रव कथा कोश से)**

5. **आरम्भक द्विजः**– जम्बूद्वीप भरत क्षेत्र के पद्मपुर नगर में शंख दारुण ब्राह्मण रहता था। उसके आरम्भक नामक पुत्र था। जैनों की संगति से जैन साधुओं की चर्या को जानकर उसने किन्हीं मुनिराज को भक्तिपूर्वक आहार दान दिया। जिसके फल से भोगभूमि, स्वर्ग व मनुष्य गति के उत्तम सुखों को भोगकर सगर नामक चक्रवर्ती राजा हुआ, दिगम्बर मुनि दीक्षा लेकर कठिनतम तपस्या कर मुक्ति को प्राप्त हुए। **(विस्तार से पढ़ने के इच्छुक महानुभाव, पद्मपुराण का स्वाध्याय करें)**

6. **राजा धरण**– चन्द्रपुर के राजा चन्द्र व धारिणी के एक धरण नाम का पुत्र था, उसने दाता के सप्त गुणों से युक्त हो किन्हीं दिगम्बर मुनिराज को आहार दिया। जिसके फल से वह राजा धरण दशरथ हुआ। जो कि जिन दीक्षा ले तपश्चरण कर स्वर्ग

को प्राप्त हुआ, आगे नियम से मोक्ष जायेंगे। **(विस्तार से जानने के इच्छुक महानुभाव, पद्मपुराण आदि रामचन्द्र के जीवन चरित्र विषयक ग्रंथों का स्वाध्याय करें)**

7. **वसुदेव एवं सुदेव**–शाल्मली पुर के ब्राह्मण रामदेव के वसुदेव एवं सुदेव नाम धारक दो पुत्र हुए। किसी दिन दिगम्बर मुनिराज को भक्तिपूर्वक आहार दान देने के प्रभाव से भोग भूमि गए, वहाँ से स्वर्ग से, वहाँ से प्रीतिंकर व हितंकर हुए, पुनः दीक्षा लेकर दुर्द्धर तप कर अंतिम ग्रैवेयक में अहमिन्द्र हुए। वहाँ से च्युत होकर, श्री रामचन्द्र जी व सीता के अनंग लवण व मदनांकुश नाम के पुत्र हुए। मुनि दीक्षा ले उत्तम साधना के बल से कर्म क्षय करके मोक्ष पधारे। **(इस कथा को विस्तार से जानने हेतु पद्म पुराण का स्वाध्याय करें।)**

8. **इन्धक व पल्लव**–जम्बूद्वीप सम्बन्धी भरत क्षेत्रस्थ कुंथस्थल नामक नगर में दो भद्र परिणामी इन्धक व पल्लव नामक ब्राह्मण थे। उन्होंने एक दिन किन्हीं दिगम्बर मुनिराज को आहार दिया, जिसके प्रभाव से उन्होंने मध्यम भोगभूमि को पुनः स्वर्ग को प्राप्त किया। वहाँ से सुग्रीव के भाई नल व नील हुए। दीक्षा लेकर दुर्द्धर तप किया तथा सकल कर्मों को क्षय कर माँगीतुंगी से निर्वाण पद को प्राप्त किया। **(विस्तार से जानने के इच्छुक पद्मपुराण जी का स्वाध्याय करें)**

9. **अकृत पुण्य**–मगध देश के अंतर्गत भोगवती नाम की नगरी में कामवृष्टि नाम का एक जमींदार था। उसकी पत्नी का नाम मृष्टदाना एवं पुत्र का नाम अकृत पुण्य था। पूर्व पापोदय से सम्पत्ति नष्ट हो गयी, इष्टजनों का वियोग हो गया। बलभद्र के यहाँ नौकरी की। एक दिन मृष्टदाना ने मासोपवासी सुव्रत

नामक मुनिराज को आहार दिया। जिसकी अकृत-पुण्य ने अनुमोदना की। मुनिराज अक्षीण महानस ऋद्धि के धारक थे, अत: उस दिन रसोई (खीर) अक्षीण हो गई। उस आहार दान की अनुमोदना से अकृत-पुण्य धन्य कुमार हुआ। आगे मनुष्य बनकर मुनि दीक्षा ले साधना के द्वारा समस्त कर्मों को नष्ट कर मोक्ष प्राप्त करेगा। **(विस्तार से धन्य कुमार चरित्र से जानें)**

10. **भामण्डल**–सीता का भाई भामण्डल था। उसने कदम्बक, अशोक व तिलक नामक मुनिराजों को चातुर्मास में आहार दिया। जिसके फल से भोगभूमि गया, वहाँ से स्वर्ग जायेगा। पुन: मनुष्य भव धारण कर मुनि दीक्षा लेकर संयम साधना कर मोक्ष प्राप्त करेगा। **(विस्तार से पद्‌मपुराण शास्त्र का स्वाध्याय कर जानें)**

11. **अग्निला ब्राह्मणी**–सौराष्ट्र देश के गिरि नगर के सोमशर्मा ब्राह्मण की पत्नी अग्निला ने वरदत्त मुनिराज को आहार दान देने वे बाईसवें तीर्थंकर भगवान् नेमिनाथ की यक्षिणी का पद प्राप्त किया। वह अग्निला ब्राह्मणी अम्बिका देवी से मनुष्य बन मोक्ष प्राप्त करेगी। **(विस्तार से जानने के इच्छुक पुण्यास्त्रव कथा कोश का स्वाध्याय करें।)**

12. **नाग श्री**–जनपद नामक देश के कावेरी पत्तन नगर में एक नाग श्री नामक ब्राह्मण पुत्री थी। जो कि मंदिर में झाड़ू लगाती थी। एकदिन मुनिदत्त नामक मुनिराज वहाँ आकर ध्यान में लीन हो गये। नाग श्री ने उनसे जाने को कहा, वे ध्यान में संलग्न रहे तब नाग श्री ने कूड़ा-कचरा का ढेर बनाकर उन्हें ढाक दिया। बाद में राजा के आने पर अपनी निंदा की, मुनिराज की उत्तम औषधि आदि के द्वारा सेवा वैयावृत्ति की,

जिसके प्रभाव से नाग श्री वृषभसेना हुई। जिसके स्नान के जल से ही रोग ठीक हो जाते थे। मुनिराज को कूड़ा में ढाँकने से वृषभसेना लोक निंदा को भी प्राप्त हुई। **(विस्तार से रत्नकण्ड श्रावकाचार से जानें)**

13. **गोविन्द ग्वाला**—कुरूमणि ग्राम में गोविन्द नामक ग्वाले ने वृक्ष की कोटर में रखे हुए शास्त्र की भक्ति की तथा उस शास्त्र को पद्मनंदि मुनिराज भेंट किया जिससे वह श्रुत पारगामी कौण्डेश नामक महापुरुष हुआ।

14. **अभय दान में प्रसिद्ध सूकर (देविल कुम्हार)**—मालव देश के घट ग्राम में देवि कुमहार व धम्मिल नाई ने एक धर्मशाला बनवायी। देविल ने वहाँ मुनिराज को ठहराया, धम्मिल किसी मिथ्यादृष्टि परिव्राजक को ले आया। जिन्होंने मुनिराज को बाहर निकाल दिया। देविल व धम्मिल आपस में लड़कर मरे। देविल मरकर सूकर हुआ, धम्मिल शेर। एक दिन सूकर की गुफा में समाधि गुप्त व त्रिगुप्त मुनिराज ध्यानस्थ थे तभी शेर उन्हें भक्षण करने आया। तब सूकर ने मुनिराज की रक्षा की। शेर-शूकर आपस में लड़कर मृत्यु को प्राप्त कर क्रमशः नरक व स्वर्ग को प्राप्त हुए।

15. **दान व त्याग में प्रसिद्ध अन्य भी पुरुष**—इसके अतिरिक्त दान में राजा विक्रमादित्य, राजा भोज, राजा श्रेयांस, चन्दनबाला, कर्ण, विनय श्री, नन्दादेवी, यक्षिल पुत्री इत्यादि अनेक महानुभाव प्रसिद्ध हुए। अनेक जीव अनुमोदना करने मात्र से कल्याण को प्राप्त हुए। जैन शास्त्रों में दान के सम्बन्ध में सहस्त्रों कथानक विद्यमान हैं। प्रथमानुयोग सम्बन्धी आगम ग्रंथों का स्वाध्याय कर जानें। 'दान के अचिन्त्य प्रभाव' भी प्रवचनकार की कृति पठनीय व माननीय है।

16. **शक्तिसेन**–पुष्कलावती देशस्थ शोभा नगर के राजा प्रजापाल व रानी श्री देवी का सेवक शक्ति सेन था। एक दिन धन्नगा नाम की अटवी में शक्ति सेन ने अमित गति नामक जंघाचारण ऋद्धि धारी मुनिराज को आहार दिया जिसके प्रभाव से शक्ति सेन, पुण्डरीकिणी पुरी में कुबेर मित्र व धनवती के कुबेर कांत नाम का पुत्र हुआ। राज्य वैभव को चिरकाल भोग जिनदीक्षा ले समस्त कर्मों को नष्ट कर मोक्ष को प्राप्त किया। **(पुण्यास्त्रव कथा कोश नामक ग्रंथ से विस्तार से जानें।)**

अमृत दोहावली

पानी बाड़े नाव में, घर में बाढ़े दाम।
दोनों हाथ उलीचिए, यही सयानो काम।।1।।

बिन मांगे दे दूध बराबर, मांगे दे सो पानी।
वह देना है खून बराबर, जामें खींचा तानी।।2।।

चोरी करे निहाई की, सूई का देते दान।
ऊपर चढ़कर देखते, कितनी दूर विमान।।3।।

कोई मरकर देता है, कोई देकर मरता है।
जरा से फर्क के बनते, है ज्ञानी और अज्ञानी।।4।।

अगर धन की रक्षा है मंजूर, तो धनवालों बनो दानी।
कुएँ से गर नहिं निकाला, तो सड़ जायेगा पानी।।5।।

मर जाऊँ माँगू नहिं, अपने तन के काज।
पर स्वास्थ कारणे, मोहे न आवे लाज।।6।।

त्याग तरण-तारण सही, भव सागर में नाव।
त्याग बने नहिं देव पै, मनुज लहो यह दाव।।7।।

उत्तम त्याग करै जो कोई, भोग-भूमि-सुर-शिवसुख होई।
चार प्रकार के दान जो देय, वह नरभव को लाहो लेय।।8।।

जिसे न भाता अन्य का, पर को देना दान।
माँगेगी उस नीच की, अन्न-वस्त्र सन्तान।।9।।

एक अतिथि को पूज, जो कर पर की बाट।
बनता वह सुर वर्ग का, सुप्रिय अतिथि सम्राट।।10।।

जो करता है बाँटकर, भोजन का उपभोग।
कभी न व्यापै भूख का, उसे भयंकर रोग।।11।।

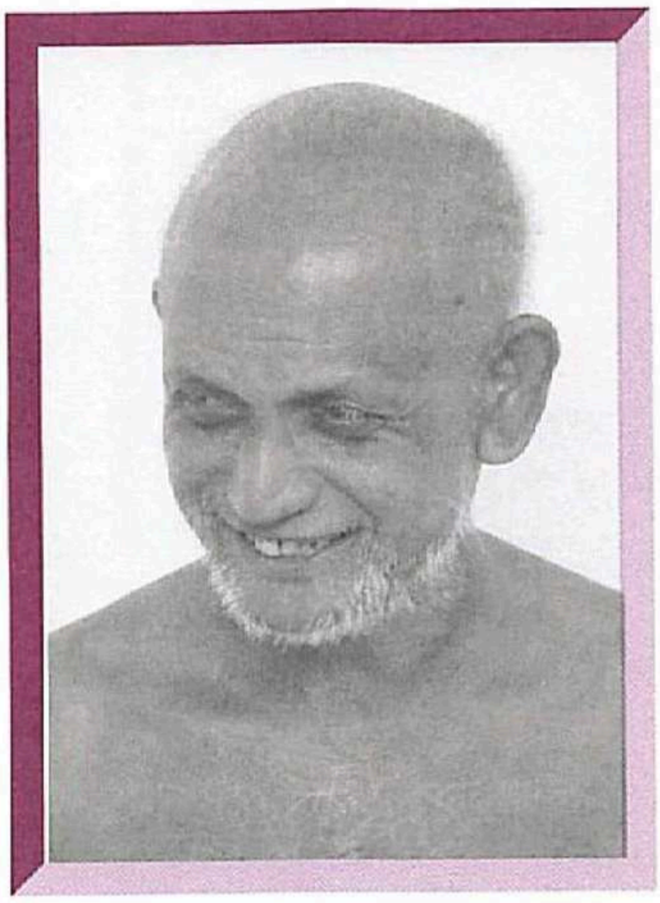

उत्तम आकिंचन

अप्पभावं विणा खलु,
ण कोवि अप्पस्स विज्जदे लोए।
संजुत्तोऽकिंचणेण,
णिग्गंथा सव्वदा पुज्जा।।

दशामृत
अहसास अंतस का

परिग्रह चिंता दुःख ही मानो

महानुभाव! धर्मस्नेही बंधुओं,

आज पूर्यषण पर्व का नौंवा दिन है। पर्यूषण पर्व आपकी सुसुप्त चेतना के लिए, अज्ञान से आबद्ध अंधकारमय जिंदगी में ज्ञानरूपी प्रकाशमयी किरण देने के लिए, आपको मोक्ष का मार्ग दिखाने के लिए, एवं अपने लक्ष्य को प्राप्त करने के कारण भूत सोपान के रूप में आये और अब अंत को प्राप्त हो रहे हैं। पर्यूषण पर्व में आपने अपने लिए क्या किया? हो सकता है अभी भी पर्यूषण पर्व में आपने जो कुछ किया है, दूसरों के लिए किया हो। भले ही गृह और परिवार के लिए न हो, भले ही वह कुटुम्बीजनों के लिए न हो, नाते-रिश्तेदारों के लिए न हो, किन्तु फिर भी पर के लिए किया हो ऐसा भी हो सकता है। 'यह शरीर भी पर है।' यदि शरीर के लिए भी धर्म साधना की है तो भी वह पर है, वह सार्थक नहीं है या तुच्छ पुण्य की प्राप्ति के लिए, एक वस्तु की प्राप्ति के लिए, क्षणभर की ख्याति, पूजा-लाभ के लिए यदि आपने साधना की है, तो वह साधना समीचीन नहीं है। ऐसी साधना होनी चाहिए, जिस साधना को और जिस साधना के फल को

सर्वोदयी चिन्तन

किंचित भी पर पदार्थ को स्वीकार नहीं करना ही आकिंचन है और अकिंचनता के भावों से युक्त धर्म ही आकिंचन धर्म है, जिसकी प्राप्ति दिगम्बर श्रमणों को ही सम्भव है।

सर्वोदयी चिन्तन
जिन्होंने आकिंचन भाव की उत्कृष्टता को पा लिया है वे आकिंचन धर्मी हैं, वे उत्तम महात्मा ही विश्व वंदनीय इस वसुंधरा के जीवंत देवता हैं।

ुम व्यर्थ नहीं कर सको, जिसे कोई छीन नहीं सके, वह साधना ी कार्यकारी हो सकती है। जिस ाधना को तुम अपने द्वारा किसी ा कह सकते हो तो यह बाह्य साधना है, अशुभ से छूटने के लिए यह कारण भूत होती है, यह भी एक कारण, साध्य नहीं है। यह अंदर की यात्रा के लिए मार्ग बनता है, एक हेतु बन जाता है। ऐसी कोई साधना होनी चाहिए, जिस साधना को आप शब्दों में व्यक्त नहीं कर सकें। साधना की, आत्मा का चिन्तवन किया कह नहीं सकते। अशुभ से बचने के लिए शुभ में प्रवृत्ति की, बहुत आनंद आया, कैसा आनंद आया? कह नहीं सकते। उस आनन्द को आप दिखा नहीं सकते, उस भक्ति में तुमने मन को लीन कर दिया था, ध्यान में तीनों योगों को एक कर दिया था, इतनी एकाग्रता बनाकर तुमने की थी, इसे तुम व्यक्त नहीं कर सके, यह कहलाती है अंतरंग साधना। मेरी आत्मा सम्पूर्ण कर्मों से रहित है। मेरी आत्मा शरीर से रहित है, कषाय से भी रहित है, नौ कर्म, भाव कर्म, द्रव्य कर्म, इनके बांधने की शक्ति से भी रहित है।

महानुभाव!

किन्तु उस स्वभाव को हम देख नहीं पाते, जान नहीं पाते, पहचान नहीं पाते, इसलिए पर पदार्थों में, परद्रव्यों में आसक्त हो जाते हैं, और जब कर्म का बंध हो जाता है, उस समय अहसास हो जाता है अरे! हमने ऐसा कर्मबांध लिया था, ये कार्य कर लिया था, 'हमें ऐसा कार्य नहीं करना चाहिए था।' यह बात तब याद आती है, जब समय निकल जाता है। आचार्यों ने जहाँ बारह भावनाओं का वर्णन किया, वहाँ अन्यत्व भावना भी कही। अन्यत्व भावना का अर्थ है 'मेरी चेतना के अलावा समस्त पर-पदार्थ मुझसे पृथक हैं, केवल

मेरी चेतना ही मेरी है, मेरी थी और मेरी ही रहेगी।' चेतना के अलावा तुम्हारे पास कोई भी ऐसी चीज नहीं है, जो अनादिकाल से तुम्हारे पास हो। यदि वह है, तो है चेतना। अनंतकाल पूर्व भी वह तुम्हारे पास थी, आज भी तुम्हारे पास है, अनंतकाल के बाद भी तुम्हारे पास रहेगी, उसके असंख्यात प्रदेश तुम्हारे साथ रहेंगे। वह ज्यों की त्यों तुम्हारे पास है। किसी पाप कर्म को तुमने बाँधा था और फल देकर के नष्ट हो गया, कोई भी कर्म शाश्वत् नहीं रहते हैं, धूप और छाया की तरह आते हैं और चले जाते हैं। मौसम की तरह बदलते रहते हैं, कोई भी मौसम स्थाई नहीं रहता। न तो पाप का फल स्थाई रहता है, न पुण्य का फल स्थायी रहता है।

'सुख सदा रहता नहीं, पर दुक्ख का भी अंत है।
यह सोचकर दिल अपने में, विचलित न होता संत है॥'

वह संत सोचता है चाहे कोई भी अनुकूलता हो, किसी भी प्रकार का सुख हो वह सुख हमेशा नहीं रहता है। कैसे भी आपने पुण्य कार्य किये हों, वे पुण्य कार्य अपना फल देकर चले जायेंगे। जैसे वृक्ष के ऊपर लगे हुए पत्ते अवसर आने पर स्वत: झड़ जाते हैं, पुष्प व फल स्वत: झड़ जाते हैं, वैसे ही चेतना रूपी वृक्ष पर लगे हुए पत्ते, पुष्प फलरूप कर्म वे अपना फल देकर के स्वत: झड़ जाते हैं। कोई पत्ता तुम्हें अच्छा लगता है और कोई पत्ता सड़ा हुआ लगता है, कोई फूल अच्छा लगता है तो कोई बुरा लगता है। कहीं उसके फूल सुगन्धी से युक्त होते हैं जो अपनी सुगन्धी के माध्यम से सम्पूर्ण वातावरण को सुगन्धी से ओत-प्रोत कर देते हैं, तो कभी उस फूल पर काँटे लगते हैं जो कि तुम्हें बहुत कष्ट देते हैं।

महानुभाव!

उस अन्यत्व भावना का बार-बार चिन्तवन करना है। अन्यत्व भावना तक वही पहुँच सकता है, जिसने पूर्व की चार भावनाओं को और देख लिया है। पहली भावना देखी होगी। वह है 'अनित्य

भावना।'

'न नित्यः इति अनित्यः।'

'संसार में जो भी आँखों से दिखाई दे रहा है, वह पदार्थ शाश्वत नहीं है।' वह क्षणध्वंसी है, नष्ट हो जाने वाला है। जो द्रव्य है, वे सदैव शाश्वत रहते हैं किन्तु उनकी पर्यायें क्षणभंगुर होती हैं। तुम्हारे पास क्या कोई ऐसी चीज है, जो कभी नष्ट न हो। जीवन में क्या तुमने ऐसी कोई कमायी की है, जो कभी नष्ट नहीं हो? जिसे कोई छीन नहीं सके। नहीं है, तो मुझे लगता है,पूरा जीवन व्यर्थ है। तुमने जो कुछ भी कमाया, कोई दो तमाचे गाल में लगायेगा और तुम्हारे धन को छीन लेगा। तुम्हारे पास कुछ ऐसा है। यदि ऐसा नहीं है, तो तुम्हारा जीवन क्या है? महाराज जी! हमारे पास बहुत सम्पत्ति है, बहुत मकान हैं, कई फैक्ट्री हैं, कई गोदाम हैं, किराये पर भी चल रहे हैं, बैंक के लिए भी दे दिया है, उसका किराया भी आता है, और क्या चाहिए? उसे कोई छीन सकता है, कैसे छीनेगा, मकान को उठाकर ले जायेगा क्या? मकान तो उठाकर नहीं ले जायेगा किन्तु तुमको तो उठाकर ले जायेगा। तुम्हें दूसरी गति में ले जाकर रख देगा तो तुम्हारे मकान, दुकान, खेत सब यहीं रखा रह जायेगा। उसके स्वामी तुम नहीं रहोगे। तुम्हारा जो आज नाम है, वही नहीं रहेगा, दूसरा हो जायेगा और तुम्हारे मरते ही या जीते जी तुम्हारी सम्पत्ति को तुम्हारे पुत्र अथवा तुम्हारे नाते-रिश्तेदार जिनका मौका लग जाए ऐसे अड़ोसी-पड़ोसी अथवा तुम्हारे शत्रु छीन लेंगे, अपने नाम सम्पत्ति कर लेंगे। फिर वह वस्तु तुम्हारी नहीं रहेगी। तुमने कितने पाप मकान बनाने में किये थे, कितने जीवों की हिंसा की, किन्तु मकान जैसे बनकर के तैयार हुआ, तब तक तुम रवाना हो गये।

सर्वोदयी चिन्तन

पर वस्तु को अपना मान लेना बहुत बड़ा भ्रम है, क्योंकि पर वस्तु न तो मेरी कभी थी, न है और न कभी हो सकेगी।

दृष्टांत – कोई व्यक्ति ट्रेन से यात्रा कर रहा था, ट्रेन स्टेशन पर रुकी, उसने स्टेशन पर रुककर ईंट और लकड़ी के माध्यम से एक मकान बनाया, धूप लग रही थी, लेकिन मकान बना रहा है, बनाते-बनाते थक जाता है, चकनाचूर हो जाता है, भूखा-प्यासा लगा रहता है, किसी से कोई वस्तु छीनकर लाता है। चोरी से लाता है, उसने मकान बनाया और सोचा इसमें चैन की नींद सोऊँगा। गाड़ी सीटी दे देती है और उसे दौड़कर गाड़ी में बैठना पड़ता है। मकान ज्यों का त्यों छूट जाता है। मुझे लगता है, ऐसा न जाने कितने लोगों के साथ होता है, देखा जाए तो संसार के लोगों के साथ ऐसा ही होता है।

दृष्टांत–माना कई विद्यार्थी पिकनिक मनाने के लिए किसी स्थान पर जाते हैं, वहाँ उनके अध्यापक ने कह दिया आप इस बगीचे में घूम सकते हो, नदी में तैर सकते हो, और यहाँ खेलने के बाद हम सब लौटकर जायेंगे, चाहो तो परमात्मा की वन्दना कर सकते हो, यहाँ परमात्मा का मंदिर भी है। कुछ चमकते हुए पत्थर दिखाई दे रहे हैं, सभी विद्यार्थी वहाँ पहुँचे। कोई तो वहाँ सो रहा है, कोई परमात्मा से मिलने पर्वत पर चढ़ रहा है, कोई धूप में खेल रहा है, कोई मिट्टी के घरोंदे बना रहा है, कोई नदी किनारे चमकते पत्थरों को इकट्ठा कर रहा है, कोई नदी में जाकर पानी के बबूलों को देख रहा है, कोई नहा रहा है, कोई अपना भोजन कर रहा है और कोई न पानी पी रहा है न भोजन कर रहा है, बेचारा दौड़ धूप में लगा है और देखते-देखते समय पूरा हो जाता है। विसिल बजा दी जाती है, सब इकट्ठे होकर के अपनी बस के पास आने लगते हैं। कुछ रोते हुए आ रहे हैं, कुछ हँसते हुए आ रहे हैं, कुछ उदास मन से आ रहे हैं, कुछ विरक्त मन से आ रहे हैं, कुछ मध्यस्थ होकर आ रहे हैं, कुछ डकार लेते हुए आ रहे हैं, कुछ सूखा सा मुँह लेकर आ रहे हैं, कुछ भूखे चले आ रहे हैं, कुछ प्यासे आ रहे हैं, कोई

पसीना पोंछते हुए आ रहे हैं, कोई आँखों को मलते हुए आ रहे हैं और जैसे ही सीटी बजी सभी दौड़कर बस के पास आ गये, सबको बस में बैठाया गया। सभी से पूछा गया, तुम उदास क्यों हो? गुरु जी मेरा मकान वहाँ रह गया मैं कम से धूप में बैठकर उसे बना रहा था, देखो कितना पसीना आ रहा है, मैंने भोजन भी नहीं किया, पानी भी नहीं पिया, छाया में भी नहीं बैठा, मैं परमात्मा के दर्शन करने भी नहीं गया, मेरा मकान छूट गया। दूसरे से पूछा–'तुम क्यों रोते हो?' गुरुजी आपने मेरे वह खिलोने फिकवा दिये, आपने कहा इसको छोड़ दो तभी बस में बैठ सकोगे तो मेरे जो खिलौने थे, अच्छे-अच्छे पत्थर दिखाई दे रहे थे। उनको आपने तुड़वा दिया इसलिए मैं रो रहा हूँ। तीसरे से पूछा, 'तुम्हें क्या हुआ,' तुम क्यों खेद-खिन्न हो रहे हो? गुरुजी मैंने चिकने-चिकने पत्ते इकट्ठे किये थे, वह मेरे पैसे थे। हम उससे व्यापार कर रहे थे, खेल रहे थे, वह पत्ते मेरे छूट गये। किसी और से पूछा–'तुम क्यों हँस रहे हो, गुरुजी मैंने यहाँ का बहुत आनंद लिया, नदी के किनारे घूमा, परमात्मा के दर्शन करने गया और बगीचों में घूमता रहा, पुष्पों की सुगन्धि ली और आनंद के साथ बैठा हुआ था, सोच रहा था, कब गाड़ी चले। मैंने भोजन भी कर लिया, पानी भी पी लिया और चर्चायें भी कर लीं इसीलिए मैं प्रसन्न हूँ। तुम मध्यस्थ क्यों हो? गुरुजी वह व्यक्ति मेरे बाजू में मकान बना रहा था, मैं भी बना रहा था, उसने मेरी दीवार तोड़कर मेरी जमीन दबा ली थी, इसलिए मैं इससे मध्यस्थ हूँ। सभी से अलग-अलग पूछते हैं, सभी के अलग-अलग उत्तर होते हैं। इन बालकों की घटना देखकर के गुरुजी मुस्कुराने लगे। देखा तो इतने नादान हैं, ये नहीं जानते यहाँ पिकनिक मनाने के लिए आये हैं, कुछ क्षणों के लिए आये हैं, लौटकर के जाना है। क्या बस में ये कंकड़ पत्थर भर के ले जायेंगे? कुछ साथ में नहीं जायेगा। सभी अध्यापक लोग बच्चों की करतूतों पर हँस रहे थे किन्तु उन अध्यापकों की करतूतों को देखकर एक संत भी मुस्कुरा देता है। उन बच्चों के घरोंदे तो

छोटे-छोटे हैं, घरोंदे तो तुम्हारे भी हैं, तुम भी तो घरोंदे बना रहे हो। बच्चे तो पिकनिक मनाने तीन घंटे के लिए आये हैं, तुम माना कि नब्बे साल के लिए आये हो, सौ साल के लिए आये हो, औसत आयु पचास-पचपन साल मानी जाती है। इतने वर्ष के लिए तुम भी तो आये हो, तुमने भी तो ऐसे ही निकाल दिया, चमकते हुए पत्थरों को इकट्ठे करते हुए, घरोंदे बनाते हुए अथवा वह पत्तों के समान कागजी नोट इकट्ठे करने में अपना बहुमूल्य समय व्यर्थ गँवा दिया। न तो परमात्मा से मिलने में समय व्यतीत किया न तुमने अपने पास विद्यमान पुण्यरूपी भोजन का सही उपभोग किया, न तुमने कभी ज्ञान चारित्र रूप अमृत का पान किया और ऐसे ही समय व्यतीत कर दिया। ऐसे लोग बड़े ही विरले होते हैं, जो परमात्मा से संपर्क साध लें, जो अपने पुण्य का सही उपभोग, सही सद्‌भोग कर लें, जो सही ज्ञान रूपी अमृत का पान करके अपनी सुसुप्त चेतना को संतुष्ट कर लें, ऐसे बहुत कम होते हैं, अन्यथा अधिकांश प्राणी तो ऐसे हैं, जो लड़ते है, चंद क्षणों की जिंदगी में बैर मान-कषाय से भरे रहते हैं, कहीं मायाचारी करते हैं, तो कहीं लोभ लगा रहता है, इन्द्रिय के विषयों में आसक्त हो जाते हैं।

महानुभाव!

कितने मूर्ख हैं वे लोग जो दूसरों को देखकर हँस लेते हैं किन्तु कभी अपने आप को नहीं देख पाते। दूसरों की गलतियों पर हँस लेना बहुत सरल है, सहज है, अपनी गलती पर हँसना बहुत कठिन है। जो अपनी गलतियों पर हँस लेता है, तो अपनी निंदा स्वयं करता है, जिसे स्वयं अपने काँटे दिखायी देते हैं कि मेरे पैर में काँटा लगा है, ऐसे व्यक्ति को संकेत नहीं देना पड़ता, जिन्हें अपने काँटे का अहसास हो जाता है, वह स्वयं अपना काँटा निकालकर फेंक देते हैं। जो दूसरों के कहे जाने पर भी काँटे का अहसास नहीं करता, न काँटे को निकालता है, और काँटे को फूल मानकर चुभाता चला जा रहा

है, उस मार्ग में बार-बार चलता है। आचार्य भगवन् कहते हैं ऐसे व्यक्तियों को क्या समझायें? क्योंकि वे तो अपने आप को समझदार कहने लगे हैं, कभी चर्चा भी करते हैं तो वे कहते हैं महाराज जी! हमने जबसे होश संभाला है, बोध सीखा है, हमें जानकारी हुई है। अब वे अपने आपको नासमझ नहीं कहते। वे कहते हैं, अबोध तो बालक होता है, हम थोड़े ही ना समझ हैं। मुझे लगता है अबोध बालक तो अपने आप को अबोध कह देता है, इसलिए बोध को प्राप्त कर लेता है। तुम लोग अबोधता को स्वीकार नहीं करते हो इसलिए बोध को प्राप्त नहीं कर पाते हो।

महानुभाव!

आप लोग भी अपनी अबोधता का ख्याल करें क्योंकि नीतिकारों ने कहा है **'अज्ञानता का भान हो जाना ही ज्ञान के क्षेत्र में उठाया गया पहला कदम है।'** जिसे अपनी अज्ञानता का ज्ञान हो जायेगा कि मैं अज्ञानी हूँ, समझ लो उसने ज्ञान प्राप्त करने का पहला कदम उठा लिया। जब तक अज्ञानता का बोध नहीं होता है, तब तक कोई भी प्राणी ज्ञानी नहीं बन सकता। परम ज्ञान, परम विवेक, परम होश, परम बुद्धि को प्राप्त नहीं कर सकता। आप अपने आपको अबोध मान कर चलें। वे छोटे बालक उन मकानों से, घरोंदों से प्रेम करते हैं, रोते हैं। मैं बड़े-बड़े घरोंदे से प्रेम करता हूँ। उसके घरोंदों की ऊँचाई माना 6 इंच होगी, मेरे घरों की ऊँचाई 16 फीट होगी, ईंट-पत्थर का बना है, उसके वह टुकड़े नदी में पड़े हुए पत्थर चमक रहे हैं, मेरे भी टुकड़े हैं, जो किसी खान में से निकलते हैं, चाहे हीरे हों, चाहे मोती हों, चाहे मूँगा हो, चाहे पन्ना हो, या सोना-चाँदी

> **सर्वोदयी चिन्तन**
>
> जो 'कुछ' को पाकर 'सब कुछ' पाने की आशा ही छोड़ बैठे हैं, कदम कदम चलकर मार्ग में ही बैठ गये हैं और उसी को मंजिल मान लिया है, उन्हें मंजिल तक पहुँचाना अत्यन्त कठिन है।

हो यह भी पुद्‌गल के टुकड़े हैं। वे उन कागज के टुकड़ों के लिए रोते हैं, तो वे उन कागजों के लिए रोते हैं। बात तो एक ही है। कहीं कोई अंतर नहीं है। वे तीन घंटे में भोजन नहीं कर पाये, पानी नहीं पी पाये, ठंडी हवा और वहाँ के उपवन का आनन्द नहीं ले पाये, तुम भी तो यहाँ का आनन्द नहीं ले पाते हो। दिन रात तुम्हारे दु:ख में ही चले जाते हैं, अशांति में ही चले जाते हैं, चिंताओं में ही जाते हैं, बड़ी मुश्किल से चौबीस घंटे में यदि कभी दस मिनट के लिए, पन्द्रह मिनट के लिए, आधे घंटे के लिए, एक घण्टे के लिए शांति मिल जाती हो तो बहुत बड़ी बात है। वैसे मैं ऐसा मानता हूँ जिसे चौबीस घंटे में, एक घंटे के लिए भी शांति मिल जाती है, ऐसा पुरुष भी बहुत पुण्यात्मा है अन्यथा शांति मिल कहाँ पाती है। चौबीस घंटे मन अशांत रहता है, रात में व्यापार के ही स्वप्न आते हैं, लड़ाई के स्वप्न आते हैं। कभी ये स्वप्न नहीं आया कि मैं दिगम्बर अवस्था को अंगीकार करके कर्मों का क्षय कर रहा हूँ, मुझे केवलज्ञान प्राप्त हो गया है, देवों का समूह मेरी पूजा करने के लिए आया है, मुझे मोक्ष की प्राप्ति हो रही है, मेरा निर्वाण कल्याणक मनाया जा रहा है। ऐसे स्वप्न क्या कभी आपको आये, सुख-शांति के मार्ग के सपने भी आपको नहीं आ रहे हैं, स्वप्न में भी दिखाई नहीं दे रहे हैं, कैसे हैं आप? सुखी हैं, शांत हैं।

सर्वोदयी चिन्तन

आपके पास जो कुछ है वह तुम्हारा नहीं है, अत: उसे छोड़ दो, क्योंकि 'कुछ' को छोड़े बिना 'सब कुछ' की प्राप्ति करना असम्भव है।

महानुभाव!

किन्तु फिर भी आप जानते हुए भी कि ये दु:ख का कारण है, मोह दु:ख का कारण है, परवस्तु दु:ख का कारण है, आसक्ति दुख का कारण है। यह सब जानते हुए भी करते हैं और मौका आ जाए

तो बिना पूछे लोगों को उपदेश दे देते हैं किन्तु अपनी आत्मा को नहीं दे पाते हैं। आश्चर्य की बात तो ये है कि सब जानते हुए भी यह धोखे का घर है, फिर भी आँखों में पट्टी बाँधकर वहीं दौड़ते रहते हैं, दौड़ेंगे वहीं किसी की बात नहीं मानते हैं।

'जानबूझ कर अंध बने हैं,
आँखिन बांधी पाटी, जिया जग धोखे की परपाटी'

यदि तुम बचपन में सचेत नहीं हुए, कोई बात नहीं, अभी और मौके हैं, क्योंकि बचपन बहुत जल्दी निकल जाता है, मालूम नहीं चलता कि बचपन कब निकल गया। वह घड़ी में सेकेण्ड के काँटे की तरह बहुत जल्दी दौड़ जाता है। पकड़ने का यदि प्रयास करें तो पकड़ में नहीं आता है, पुनः बाद में प्रयास न कर सके बचपन में सोचते हैं, पचपन में देख लेंगे। भले ही पचपन का विश्वास न हो, पच्चीस में ही चले जायें।

कहने का आशय यह है कि व्यक्ति जब संसार की अनित्यता को देखता है, कि यह संसार अनित्य है, क्षणभंगुर है, तेरा जीवन भी क्षणभंगुर है। जब देखता है, जानता है तब पुनः सोचता है कि मैं कहाँ जाकर छिप जाऊँ? जहाँ मृत्यु आज तक नहीं आई, वह एक स्थान 'सिद्धत्व' है। वहाँ कभी मृत्यु नहीं होती है। महानुभाव! तो उसकी ही शरण में जाना है और संसार में कोई शरण नहीं है। वहाँ पहुँचने का मार्ग है, रत्नत्रय। रत्नत्रय की प्राप्ति स्थान है, 'पंचपरमेष्ठी' और निश्चय रत्नत्रय हमारे लिए शरण है, और हमारी आत्मा को इनकी शरण में जाना है, माता-पिता की शरण में नहीं जाना है और वृद्ध माता-पिता को भी अपने पुत्रों की शरण नहीं लेना है। उनकी शरण लेने से तुम्हारा कल्याण नहीं होगा अपितु रात दिन आर्त-रौद्र परिणाम

सर्वोदयी चिन्तन

मेरी आत्मा के अलावा मेरा कुछ नहीं है, इस बात को कहना जितना आसान है, जीवन में धारण कर पाना उतना ही कठिन है।

बने रहेंगे अब तो गृह त्याग करके किसी दिगम्बर संत की शरण में आ जाना चाहिए और समाधि का अभ्यास करें, सल्लेखना का अभ्यास करें। क्योंकि बचपन तो निकल गया, वहाँ नहीं कर पाया तो पुनः आयी किशोर अवस्था, उसमें भी नहीं कर पाता है, अब सोचता है, कहाँ जाऊँ? कौन सा रास्ता चुनूँ? कभी वहाँ से चुम्बक खींचती है, कभी वहाँ चुम्बक खींचती है, कभी सोचता है शादी करूँ, कभी सोचता है कि कोई व्यापार करूँ, कभी सोचता है 'नहीं' मुझे वैरागी बन जाना चाहिए। अनेक प्रकार के विचार आते हैं।

सर्वोदयी चिन्तन

जब तेरे पास किंचित् भी तेरा नहीं है तो तू क्यों कहता है? यह भी मेरा है, वह भी मेरा है।

'जीवन के चौराहे पर, मैं सोच रहा कब से
जाऊँ तो किधर जाऊँ, यह पूछ रहा मन से।'

तुमसे पूछ रहा हूँ, हे भगवान! मैं कहाँ जाऊँ? क्योंकि मैं नहीं जानता। जीवन के चौराहे पर खड़ा हूँ। आप बहुत ऊँचे हैं, मेरे सभी रास्तों को देख रहे हैं, मुझे बता दो कि कौन सा रास्ता मेरे लिए अच्छा रहेगा। किन्तु ये दुनिया वाले नहीं बताते। ये तो मुझे काँटों के रास्ते में ले जाते हैं, कहते हैं कि ये आनन्द का रास्ता है। वे संसार में फँस गये, मुझे भी संसार में फँसाना चाहते हैं, मेरे हाथ पैरों में भी बेड़ियाँ-हथकड़ियाँ डालना चाहते हैं, वे मुझे बाँधना चाहते हैं, जाओ तुम भी दुखों को भोगो, जैसे हम दुखों को भोग रहे हैं। बड़ी मुश्किल से किसी भव में पुण्य का संचय किया होगा। उस पुण्य के उदय से सच्चे देव, सच्चे शास्त्र, सच्चे गुरु का सान्निध्य मिल गया, जिन दर्शन का सान्निध्य प्राप्त हो जाए तो हो सकता है कि कोई महापुरुष ऐसा निकल आये कि किशोरावास्था में 'जब जिंदगी युवावस्था में कदम रख रह है, तो चेतना वैराग्य में कदम रख रही है, यह विपरीत अवस्था है।' युवावस्था में राग और वासनाओं की अधिकता रहती

है। युवावस्था चाहती है, 'विषय वासनाओं का आनंद, किन्तु चेतना वैराग्य में इतनी रंग जाती है कि इन दुखों के जंजाल में, मैं नहीं फसूँगा, वह अपना मार्ग चयन कर लेती है।' बचपन में निकलना तो बहुत आसान था, अभी तो उसने कुछ देखा ही नहीं, क्या होते हैं विषय भोग? क्या होता है संसार? संसार में क्या होता है? कुछ नहीं जाना तो निकलना बड़ा सहज होता है। किन्तु किशोरावस्था में निकलना थोड़ा कठिन होता है क्योंकि यहाँ वह समझने लगा है, जानने लगा है, युवावस्था को प्राप्त हो जाए तो पुनः उसके हृदय में वैराग्य का कमल खिल जाए तो समझ लेना बहुत बड़ा आश्चर्य हो गया। युवावस्था में यौवन भोगों के लिए आकर्षित करता है, खींच रहा है किन्तु जिसके अंदर शक्ति अधिक हो, उस गुरुत्वाकर्षण शक्ति को भी नष्ट कर सके और अपना रास्ता दूसरा चल सके। सीना तान के उस तूफान में चलना युवावस्था में संयम का पालन करने के बराबर है। किन्तु उसकी रफ्तार सैकेण्ड के काँटे की अपेक्षा बहुत धीमी होती है वह भी चलता हुआ दिखाई देता है, और देखते-देखते वह युवावस्था भी निकल जाती है। उस समय एक भूत सवार होता है, या तो विषयों को भोगने का, या धन कमाने का, या नाम कमाने का, या यश फैलाने का, उस समय वह नींद में सो जाता है, और पुनः खो जाता है वह भोगों में। जब उसकी नींद खुलती है, तो पुनः नींद टूटते ही वह देखता है कि वह तो प्रौढ़ हो गया, अब वह क्या करे? अब तो बाल बच्चों की जिम्मेदारी भी सिर पर आई, अब किसे सौंपकर जाये, यदि जाता भी है, जो जीवन साथी कहता है-'जब निकलना ही था तो सात फेरे डालकर क्यों ले आये? अब कहते हो वैराग्य-वैराग्य। जब वैराग्य ही था, दीक्षा ही लेनी थी, तो

सर्वोदयी चिन्तन

जिसने अपनी आत्मा को नहीं जाना, नहीं पहचाना, नहीं पाया उसके लिए अन्य सब पर वस्तुओं की प्राप्ति उसी प्रकार है, जैसे चौकीदार के द्वारा खजाने की चौकीदारी करना।

पहले दीक्षा क्यों नहीं ले ली, अब मैं किनके भरोसे रहूँगी।' वह कहता है कि बात तो सही है किन्तु उस समय वैराग्य थोड़े ही देर के लिए आता है, उछलता है, ये शब्द सुनते ही वैराग्य ठंडा पड़ जाता है।

सर्वोदयी चिन्तन
पर पदार्थों के संयोग से जो अपने अहंकार को पुष्ट कर रहे हैं, वे आकिंचन धर्म से अभी बहुत दूर खड़े हैं।

पुनः उसके उपरांत वह सोचता है कि ठीक है, और आगे चलें। बचपन से पचपन में पहुँच गए। पचपन आ गया, पचपन के बाद वृद्धावस्था आ गई, इन्द्रियाँ शिथिल हो गईं, उनके द्वारा कार्य करना बंद हो गया। जब शरीर में जोश था, उस समय होश नहीं था आज होश जाग गया है, तो शरीर में जोश जाग्रत नहीं हुआ, मुर्दा जैसा हो गया। उस समय तो बिना रुके हुए 12 किमी की यात्रा कर लेता, दौड़ लेता, कहीं बीच में रुकता नहीं था। उस समय शक्ति थी, उस समय मेरे पास क्षयोपशम था, किन्तु इन समीचीन बातों को जानने के लिए, ग्रंथों के अंदर विद्यमान रहस्यों को जानने के लिए अपने आत्म को पवित्र बनाने के लिए शक्ति थी, बाद में देख रहे हैं कि हम कहाँ स्नान करें, जब नदी बह रही थी, उसमें पानी खूब आ रहा था, उस समय तो नदी के किनारे बैठकर शरारत कर रहे थे, अपना समय बर्बाद कर रहे थे, अब नदी बह गई, सूख गई, कंकड़-पत्थर हैं, तो उनमें पानी खोज रहे हैं।

महानुभाव!

उस कीचड़ को अब नहीं खोदना है, अब क्या है? बह गई पुनः इंतजार करो, हे प्रभो! पुनः कभी मनुष्य अवस्था प्राप्त हो तो मैं अपना कल्याण कर सकूँ। वह प्राप्त हो पाए या न हो पाए, तुम्हारी करतूत न जाने कैसी करतूत। जब प्रौढ़ अवस्था आ गई, वह

धीरे-धीरे खिसकती है, क्योंकि गाड़ी पंचर हो जाती है, गाड़ी पर वजन ज्यादा हो जाता है, तो गाड़ी को धीरे-धीरे खचेड़ा जाता है, जब गाड़ी बिल्कुल खराब हो जाती है, कहीं रास्ते में गाड़ी अपने गिट्टी वाली सड़क पर चलाई तो वह टूट-फूट गई, कहीं पंचर, ब्रेक, सब खराब हो गए तो उस समय गाड़ी को खचोड़ते हैं, खींच-खींचकर ले जाते हैं। ऐसे ही वृद्धावस्था होती है, वह जो नहीं जाती, खचोड़ी जाती है। महानुभाव! यह बात ठीक है कि मैं अनित्य हूँ, यह सब पदार्थ नष्ट हो जायेंगे, मुझे मारने वाला काल आ रहा है, मेरे शरीर को छीन लेगा, मेरे प्राणों को छीन लेगा इसलिए तुम शरण चाहते हो। लेकिन शरण कहाँ चाहते हो?' क्या संसार में ही रहना चाहते हो? अरे! ये संसार तो दु:खों ही दु:खों से भरा है। जहाँ भी निगाह डालकर देखते हैं मुझे प्राय:कर प्रत्येक प्राणी दु:खी दिखाई देता है, ऐसा दिखना कठिन है, जिसकी कोई समस्या न हो। कोई कहता है, 'महाराज जी!' वैसे सब ठीक है, क्या बतायें पूर्व भव में कैसा पाप किया है? कभी-कभी बड़ा दुख होता है, किन्हीं सुन्दर व्यक्तियों को देखकर अपने आपको देखते हैं तो ऐसा लगता है भगवान ने हमें 'काले काय बनाय दयो'। जब गोरे व्यक्ति दिखाई देते हैं तो अपने काले पन का अहसास होता है, दु:ख होता है।' दूसरा कहता है 'भैया काले और गोरे तो शरीर के अंग हैं, भगवान भले हमें काला बना देता कम से कम खाने के लिए अन्न पानी तो मिलता। जो व्यक्ति गोरा है, खाने के लिए सब कुछ है, सम्पत्ति दी, इतना सुंदर रूप दिया, किन्तु हम तो ठस बुद्धि हैं, कुछ याद भी नहीं होता है।' अगला व्यक्ति कहता है, बुद्धि तो हमारे पास बहुत है, अच्छा क्षयोपशम है, सब कुछ है, किन्तु जब संगीतकार को देखते हैं इसका गला कितना अच्छा है तो हमें अपने गले को देखकर बड़ा खेद होता है। प्राय:कर के जितने भी संसारी व्यक्ति हैं सभी दुखी रहते हैं, चाहे उनकी शादी हो गई हो या न हुई हो। 'संसार रूपी

सागर में दु:ख ही दु:ख है, यदि संसार में रहेगा तो दु:खों से अछूता नहीं रह सकता, जब दु:खों से भीगा रहेगा, संसार रूपी अग्नि के कुंड में कूद जायेगा तो बिना जले वह नहीं रह पायेगा, संसार रूपी काजल की कोठरी में प्रवेश कर जायेगा तो उसे दु:खों का दाग लगे बिना नहीं रह पायेगा। इसलिए संसार का त्याग करना है और संसार से विरक्ति तब होगी जब से अहसास हो जायेगा कि मेरी करतूत का फल मुझे स्वयं मिलेगा।' यदि यह बात आपकी समझ में आ जायेगी तो एकत्व भावना को प्राप्त करके पुनः अन्यत्व भावना को प्राप्त कर सकते हैं।

सर्वोदयी चिन्तन

जो आत्म स्वभाव में संतुष्ट हैं, आत्मा में ही रमण कर रहे हैं, उन्होंने ही पर पदार्थों को छोड़कर आत्मा की शुद्धता को पाया है।

अन्यत्व भावना का अर्थ होता है, 'ये सब अन्य हैं', मैं मकान नहीं हूँ, मैं धन-सम्पत्ति नहीं हूँ, मैं वस्त्र रूप नहीं हूँ, मैं शरीर रूप नहीं हूँ मैं गोरा नहीं हूँ, मैं विद्वान नहीं हूँ, मैं मूर्ख नहीं हूँ, मैं छोटा नहीं हूँ, मैं बड़ा नहीं हूँ मैं, मैं हूँ, ये सब तो शरीर के धर्म हैं, मैं पुण्यात्मा भी नहीं हूँ क्योंकि पुण्य भी क्षणिक है, वह निकल जायेगा, मैं तो आत्मा हूँ, मैं धनवान भी नहीं हूँ, क्योंकि धन तो बाह्य परिग्रह है, मैं पापात्मा भी नहीं, मैं गुणस्थान से रहित, जीव स्थान से रहित, चौदह मार्गणाओं से रहित, कषायों से रहित, क्षयोपशमिक ज्ञान से रहित, अज्ञानता से रहित, कर्म, नौ कर्मों से रहित, द्रव्य और भाव की अवस्था से रहित, आस्रव से रहित, बंध से रहित, संवर से रहित, निर्जरा से रहित हूँ, मेरा स्वभाव तो जो है सो है, न मैं संसारी हूँ, न मैं मुक्त हूँ, जो हूँ सो हूँ।

महानुभाव!

यह उत्तम आकिंचन धर्म यही संकेत करता है।

उत्तम आकिंचन-न विद्यते किंचयति आकिंचन।।

जहाँ कुछ भी नहीं वह आकिंचन है। यह अवस्था जिसमें पाई जाती है वह आकिंचन स्वभावी आत्मा है।

यस्मिन् विद्यते सा आकिंचनः।

जिस पर कुछ भी नहीं है, किंचित् मात्र भी नहीं है, वह कहलाता है आकिंचन। वह धर्म कहलाता है, 'आकिंचन धर्म' और वह भी उत्तम आकिंचन धर्म, जहाँ कुछ भी पर नहीं रहा।

> **सर्वोदयी चिन्तन**
> जिन्होंने बाहर की समस्त वस्तुओं का त्याग कर दिया है वे ही निजी वैभव को प्राप्त कर सकते हैं, पर वस्तुओं में आसक्त जनों को निजी स्वाभाविक विभूति से साक्षात्कार असंभव ही है।

किन्तु आज व्यक्ति निज द्रव्य को तो ठीक है परद्रव्य को भी लूटने का प्रयास करता है, छीनने का प्रयास करता है। संसार में चार प्रकार के प्राणी देखने में मिलते हैं—पहले वे होते हैं—जिनका कहना है कि

'मेरा सो मेरा, तेरा सो तेरा'

जो कुछ मेरा है, सो मेरा है और जो कुछ तेरा है, सो सब तेरा है। मुझे तेरी वस्तु से कोई ताल्लुक नहीं, जो तुझे करना है सो तू कर, जो मुझे करना है वो मैं करूँ, मैं तेरी वस्तु का उपभोग, उपयोग नहीं करूँगा और तुझे मुझसे कुछ नहीं लेना है। इस प्रकार की धारणा वाले व्यक्ति होते हैं, जिन्हें संसार की दृष्टि में, लोक व्यवहार में, न्यायप्रिय, नैतिक नीति सम्पन्न कहा जाता है। ऐसे स्वभाव वाले व्यक्ति पाण्डव थे, उन्होंने कौरवों से कह दिया था कि यदि न्याय के अनुसार देते हो तो—

'दो न्याय अगर तो आधा दो, पर इसमें भी यदि बाधा हो
तो दे दो केवल पाँच ग्राम, रक्खो अपनी धरती तमाम।

हम वहीं खुशी से खायेंगे, पर जन पर असि न उठायेंगे।
दुर्योधन वह भी दे न सका, आशीष समाज का ले न सका।
उल्टे हरि को बांधने चला, जो था असाध्य साधने चला।
जब नाश मनुज पर छाता है, पहले विवेक मर जाता है।'

कहने का आशय कि जब पाण्डवों ने कौरवों से कहा कि तुम हमें न्यायपूर्वक आधा राज्य दे दो, यदि आधा राज्य देने में तुम्हें बाधा है, तो केवल पाँच ग्राम दे दो, हम केवल पाँच भाई हैं, एक-एक ग्राम के राजा बनकर चैन की जिंदगी व्यतीत करेंगे। लेकिन दुर्योधन कहता है 'नहीं' मेरा राज्य तो मेरा है, तेरा राज्य भी मेरा है। तो पाण्डव ऐसे पहले व्यक्ति थे जो कहते थे **'जो मेरा सो मेरा, तेरा सो तेरा'।** ऐसी धारणा वाले और भी व्यक्ति हो सकते हैं। बाहुबली, जिन्होंने भरत से कहा 'तेरा सो तेरा' तू चक्रवर्ती है, लेकिन मेरा जो पोदनपुर का राज्य है, वह मेरा है, उसमें तुम हस्तक्षेप नहीं कर सकते हो, **मेरा सो मेरा, तेरा सो तेरा।** मैं तेरे राज्य में नहीं जाऊँगा, तू मेरे राज्य में हस्तक्षेप नहीं करना। ऐसे पुरुष न्यायप्रिय, नैतिक कहलाते हैं।

जो दूसरे प्रकार के पुरुष होते हैं वे कहते हैं–

'मेरा सो मेरा, तेरा सो भी मेरा'

ऐसे पुरुष संसार में बहुत होते हैं। ऐसी धारणा वाले पुरुष थे 'कौरव'। ऐसी धारणा वाले पुरुष कौरव, कंस, रावण की श्रेणी में आते हैं। इन्होंने कहा 'मेरी मंदोदरी तो मेरी है ही, किन्तु तेरी सीता भी मेरी है। ऐसे लोगों की संसार में कमी नहीं है। प्राय:कर प्रत्येक काल में ऐसे लोग पाये जाते हैं।

तीसरे प्रकार के पुरुष होते हैं जिनकी संख्या बहुत कम है, इन्हें महापुरुष कहा जाता है, इन्हें मर्यादा पुरुषोत्तम कहा जाता है, जिन्हें धर्मात्मा पुरुष कहा जाता है। जो विश्व में सम्मान, आदर, प्रशंसा को प्राप्त होते हैं। इनकी धारणा होती है **'तेरा सो तेरा, मेरा सो भी**

तेरा'। कभी-कभी भाई-भाई में झगड़ा होता है, तो कह देते हैं 'भैया क्लेश मत कर। तुझे चाहिए, जो तेरा है, सो अपना ले ले, मेरा हिस्सा है, सो भी तू ले ले। मेरे भाग्य में होगा तो मुझे मेरे भाग्य से मिल जायेगा। मेरे पास दो हाथ हैं, दो पैर हैं, मैं परिश्रम करूँगा। मेरे भाग्य में यदि भूखा रहना लिखा होगा तो मैं भूखा रह जाऊँगा, किन्तु हस्तक्षेप नहीं करूँगा। तू मेरा हिस्सा लेकर भी संतुष्ट हो जाता है तो तू संतुष्ट हो जा। भगवान की कृपा से तू फलीभूत हो, मैं तो वैसे ही चैन से रहता हूँ।' ऐसी धारणा वाले मनुष्य संसार में बहुत कम होते हैं, होते अवश्य हैं।

ऐसी धारणा वाले 'राम' थे। राम के लिए जब राज्य दिया गया, तब उन्होंने राज्य को स्वीकार नहीं किया, पुन: भरत उन्हें मनाने के लिए आते हैं, कहते हैं 'भैया राज्य पर अधिकार तो तुम्हारा है। तुम बड़े हो, उत्तराधिकारी हो।' उन्होंने कहा-'भरत राज्य तुम्हारा है, तुम राजगद्दी पर बैठो।' नहीं भैया, राज्य तो तुम्हारा है। दोनों में झगड़ा हो गया। वह कहता है कि राज्य तेरा है, दूसरा कहता है कि नहीं राज्य तेरा है। जब अंत में कोई निराकरण नहीं होता है, तो राम को ही हार माननी पड़ती है, क्योंकि कभी-कभी जब सज्जन व्यक्ति से सज्जन का झगड़ा हो जाए तो जो अत्यन्त सज्जन हो तो सज्जन के झगड़े में सज्जन हार लेता है। वे कहते हैं राज्य मेरा है, फिर भी मैं अपने राज्य को तुम्हें देता हूँ।

'विभीषण' जिसने लंकेश से कह दिया कि अपनी लंका में रहो कोई बात नहीं, लंका का राज्य तुम्हारा है। जो तुम्हारा है, सो तुम्हारा है ही, किन्तु जो मेरा है, वह भी मैं तुम्हें छोड़कर जाता हूँ। किन्तु मैं तुम्हारे साथ नहीं रह सकता। असत्य का पक्ष नहीं ले सकता, मैं सत्य के पक्ष में जाऊँगा। तुम भले ही मेरा हिस्सा ले लो।

'बाहुबली'- जब भरत और बाहुबली में युद्ध हुआ, तो युद्ध में भी चक्र जब भरत ने छोड़ दिया, तीन बार युद्ध में हरा दिया, जीत

> **सर्वोदयी चिन्तन**
> संसार में न कुछ मेरा है, न कुछ तेरा है, यह दुनिया एक झमेला है, मोही इसमें फँस जाता है, निर्मोही छूट जाता है। ऐसे महात्मा ही विश्व कल्याण एवं अक्षय सुख शांति के प्रेरक हो सकते हैं।

गए, चक्र रत्न भी उनको प्राप्त हो गया, अब सही मायने में देखा जाए तो चक्रवर्ती बाहुबली कहलाये क्योंकि चक्र को जीत लिया, चक्र उनके अधीन है। तो चक्रवर्ती को हरा देने वाले बड़े चक्रवर्ती तो बाहुबली हो गये। भरत कहते हैं कि मुझे क्षमा करो और ये चक्ररत्न आप ही संभालो, आप ही चक्रवर्ती हो। बाहुबली कहते हैं–'नहीं' आप ही संभालो और वे दीक्षा के लिए चले जाते हैं। भरत कहते हैं– नहीं, आप राज्य में रहो, मेरे राज्य को भी ले लो। तुम्हारे मन में मेरे कारण क्षोभ हुआ, तुमने मेरे अंदर के नेत्रों को खोल दिया, भरत कहते हैं, मुझे क्षमा कर दो, राज्य को तुम संभालो, दुनिया मुझसे क्या कहेगी। आप राज्य लो। बाहुबली कहते हैं 'राज्य जो तुम्हारा है, सो तो तुम्हारा है ही, जो मेरा पोदनपुर का राज्य था, वह भी मैं तुम्हें सौंपता हूँ।

महानुभाव!

जब लंका को राम ने जीत लिया था, उस समय लंका राम की हो गई, किन्तु राम ने उसका शासन नहीं किया। विभीषण कहते हैं– प्रभो! लंका तो आपकी है, किन्तु राम कहते हैं–'लंका के राजा तुम हो, तुम रावण के भाई हो, तुम इस राज्य के योग्य हो, इसलिए इस राज्य के अधिकारी तुम हो।' 'नहीं आपने जीत लिया है, तो आपकी लंका कहलायी।' चलो मेरी भी कहलायी, फिर भी तुम्हारी है, सो तुम्हारी ही कहलायी, तो ऐसी धारणा वाले पुरुष कम होते हैं।

अब चौथे प्रकार के पुरुष भी होते हैं जो कहते हैं–

'न मेरा न तेरा, ये दुनिया एक झमेला'

इस दुनिया में न तो कुछ मेरा है, न कुछ तेरा है, एक झूठा

झमेला है। जब मैं नहीं था, तब भी यह पृथ्वी यहाँ थी, मैं आया तब भी पृथ्वी यहीं है, मैं चला जाऊँगा, तब भी पृथ्वी यहीं रहेगी। न तो ये धरती मेरी है, न तुम्हारी है, ये तो लोगों का भ्रम है।

दृष्टांत–एक बार एक व्यक्ति किसी मकान में अपने नाम का बोर्ड लगा रहा था, तो पृथ्वी हँसने लगी। हँसने की आवाज आती है तो व्यक्ति चारों तरफ देखता है कि हँसी की आवाज कहाँ से आ रही है? पुनः वह ठोकने में लगता है। पुनः हँसने की आवाज आती है, पुनः मुड़कर देखता है कि हँसने की आवाज कहाँ से आ रही है? कोई दिखाई नहीं दे रहा पुनः ठोकता है, तो पुनः उसे गुस्सा आता है, तो पृथ्वी कहती है–तुम्हारी नादानी को देखकर हँस रही हूँ। इस नेम-प्लेट को तुम लगा रहे हो, मैं देख चुकी कि यहाँ बीसों नेम प्लेट्स बदल चुकी हैं। जो आता है अपने नाम की नेम-प्लेट ठोक देता है और मर जाता है।

कहने का आशय यह है कि व्यक्ति यह जान नहीं पाता है कि संसार में न तो कुछ मेरा है, न कुछ तेरा है। यह संसार झूठा झमेला है। संसार में जितनी भी वस्तुएँ हैं, उन्हें प्राप्त करने के लिए प्रयत्नशील रहता है, किन्तु प्राप्त नहीं कर पाता, उसकी तृष्णा इतनी तीव्र होती है कि वह चाहते हुए भी प्राप्त नहीं कर पाता, छाया की तरह सम्पत्ति दौड़ती चली जाती है, पर वस्तुएँ आगे भागती जाती हैं, उन्हें पकड़ नहीं पाते।

महानुभाव!

आप यदि सही मायने में जानते हो तो मेरी आत्मा के अलावा कुछ मेरा नहीं है, तो अपनी प्रवृत्ति को बदल लेना क्योंकि जो जान जाता है।

'ज्ञान कला जिनके घट जागी, ते जग माँही सहज वैरागी
ज्ञानी मगन विषय सुख माहीं, यह विपरीत संभव है नाही'

जिनके अंदर में ज्ञान की कला जग जाती है, वह सहज ही संसार भोगों से विरक्त हो जाते हैं, और जो अपने आप को ज्ञानी कहें फिर भी विषय भोगों में लीन रहें, ऐसी विपरीत अवस्था हो नहीं सकती। सूर्य का उदय भी हो जाए और अंधकार भी बना रहे, ऐसा नहीं हो सकता।

महानुभाव!

इसलिए आचार्यों ने कहा है–

'एकोऽहं निर्ममो शुद्धो, ज्ञानी योगीन्द्र गोचरः।
बाह्याः संयोगजाभावाः, मत्तः सर्वेऽपि सर्वथा।'

मैं एक हूँ, समस्त पदार्थों से ममत्व रहित हूँ, शुद्ध हूँ, ज्ञानी हूँ, योगियों के द्वारा गम्य हूँ, सामान्य व्यक्तियों के द्वारा अगोचर हूँ, बाहर के जितनी भी संयोगी पदार्थ हैं, वे सभी मुझसे पृथक हैं, भिन्न हैं। इस प्रकार का विचार, इस प्रकार की भावना भाने वाला व्यक्ति किसी दिन उत्तम आकिंचन धर्म को भी प्राप्त कर सकता है।

इन्हीं सद्भावनाओं के साथ आप सभी लोगों को बहुत-बहुत आशीर्वाद कि आपकी भावनायें बने, कल्याण के मार्ग पर अग्रसर हों, सत्य से आपका साक्षात्कार हो, आप जीवन के सत्य को पहचानें, मानें, ग्रहण करें, गुनें और जो आपको उचित लगता है, जीवन के लिए कल्याणकारी लगता है, उसे चुनें।

सर्वोदयी चिन्तन

आकिंचन धर्म की प्राप्ति ग्रहण करके नहीं छोड़ने से ही होती है और तुम्हें अनादि काल से ग्रहण करने की ही लत है, ग्रहण करने से कैसे पाओगे? मुक्त आकाश का आनन्द बंधन बांधने से नहीं तोड़ने से नहीं तोड़ने से मिलेगा, केवल आत्मा का आनन्द पर द्रव्य जोड़ने से नहीं छोड़ने से मिलेगा।

अर्थ सहित कुछ छंद

शरीरादिकमात्मीय-मनपेदय प्रवर्तनं।
निर्ममत्वं मुनिः सम्य-गाकिंचन्यमुदाहतम्॥1॥

अर्थ—शरीर आदि पर पदार्थों को अपना नहीं मानना निर्ममत्व भाव से प्रवर्तन करने वाले मुनि के आकिंचन्य धर्म कहा गया है।

आकिंचनोऽहमित्यास्व, त्रैलोक्यादि पतिर्भवेः।
योगिगम्यं तवप्रोक्तं, रहस्यं परमात्मनः॥2॥

अर्थ—हे भव्य! आकिंचन हूँ कुछ भी मेरा नहीं है, ऐसी भावना करने से तू शीघ्र ही तीन लोक का स्वामी होगा। योगीश्वरों को गम्य परमात्मा बनने का रहस्य मैंने तुझको कहा है।

रागद्वषो प्रवृत्ति स्यान्, निवृत्तिस्तन्निषेधकम्।
तो च बाह्यार्थ सम्बद्धौ, तस्मात् तान् सुपरित्यजेत्॥3॥

अर्थ—राग, द्वेष को प्रवृत्ति कहते हैं और उनके अभाव को निवृत्ति कहते हैं तथा वे राग, द्वेष बाह्य पदार्थ से सम्बद्ध हैं इसलिए उनका अच्छी तरह त्याग करना चाहिए।

सर्वसंगविनिर्मुक्तः, संवृताक्षः स्थिराशयः।
धत्ते ध्याना धुरां धीरः, संयमी वीरवर्णिताम्॥4॥

अर्थ—समस्त परिग्रह से रहित जितेन्द्रिय निश्चय मन वाला धीर वीर संयमी ही भगवान् के द्वारा बताये हुए ध्यान की धुरा को धारण करता है।

विजने जन संकीर्णे, सुस्थिते दुःस्थितेऽपि वा।
सर्वत्राप्रतिबद्धः स्यात् संयमी संगवर्जितः॥5॥

अर्थ—एकान्त हो या जनसमूह, अच्छी तरह स्थित हो या न हो परिग्रह से रहित संयमी सर्वत्र स्वतंत्र होता है।

नाणबोऽपि गुणा लोके, दोषाः शैलेन्द्र सन्निभाः।

भवन्तत्र न संदेहः संगमासाद्य देहिनाम्॥6॥

अर्थ–लोक में प्राणियों के परिग्रह के कारण अणुमात्र भी गुण नहीं होते हैं और दोष सुमेरू पर्वत के बराबर होते हैं, इसमें संदेह नहीं है।

नृणां परं न दारिद्रयं, दानहीनं महद्धनं।
मोहशोकादि दीजं च, पापं दुर्गति कारणम्॥7॥

अर्थ–मनुष्यों की दरिद्रता ठीक है, किन्तु दान से हीन बहुत धन व्यर्थ है। क्योंकि धन, मोह, शोक आदि का बीज है एवं दुर्गति का कारण है।

योन मौखादि सम्बन्ध, द्वारेणऽविश्व मानसम्।
यथा परिग्रहश्चिद्वान्, नथ्नाति न तथेतरः॥8॥

अर्थ–जैसे स्पर्शन और रसना इन्द्रिय के माध्यम से मन को वश में न करने से चेतन परिग्रह दुःखी करता है, वैसे अचेतन परिग्रह दुःखी नहीं करता है।

अनित्येऽत्रैव संसारे, याचन्मात्रः परिग्रहः।
तावन्मात्रस्तसु सन्तापस्तस्मात् त्याज्यः परिग्रह॥9॥

अर्थ–इस अनित्य संसार में जितना परिग्रह है, उतना संताप है। अतः परिग्रह छोड़ने योग्य है।

अणुमात्रादपि ग्रन्थान्, मोहग्रन्थी दृढ़ी भवेत्।
विसर्पति तत्तस्तृष्णा, सस्यां विश्वं न शान्तये॥10॥

अर्थ–अणु मात्र भी परिग्रह से मोह रूपी गाँठ दृढ़ होती है, उससे तृष्णा बढ़ती है, जिस तृष्णा की शान्ति के लिए पूरा विश्व कभी समर्थ नहीं है।

यः संगपंकनिर्मग्नो, अपवर्गाय चेष्टते।
समूढ़ः पुष्पनाराचै, र्विभिन्धात् त्रिदशाचलम्॥11॥

अर्थ–जो परिग्रह रूपी कीचड़ में निमग्न होकर भी मोक्ष के

लिए चेष्टा करता है, वह मूर्ख पुष्पों के बाण से सुमेरू पर्वत को भेदना चाहता है, जो कि असम्भव है।

बाह्य संगस्ते पुंसि, कुतश्चित विशुद्धता।
सतुषे हि बहिर्धान्ये दुर्लभ्ज्ञाऽन्तर्विशुद्धता॥12॥

अर्थ–बाह्य परिग्रह में लीन पुरुष के मन की शुद्धि कैसे हो सकती है? जैसे बाह्य में धान्य का छिलका होने पर अंतरंग की लालिमा दूर कैसे हो सकती है? अर्थात् नहीं हो सकती है।

कदाचित्को बनाः, क्रोधादेकर्मणः सदा संगात्।
नातः क्वापिकदाचित्, परिग्रहवतां जायते सिद्धि॥13॥

अर्थ–क्रोध आदि विकारी भावों के कदाचित् बंध होता है किन्तु परिग्रह से निरन्तर बंध होता है इसलिए परिग्रही जीवों को कभी भी मोक्ष नहीं हो सकता है।

सर्वोदयी चिन्तन

उत्तम आकिंचन धर्म जो आत्मा की निजी स्वभाव है, वह बाहर कहीं मिल जाता तो उसे हम बाहर खोजकर प्राप्त कर लेते, किन्तु वह तो हमारी आत्मा में ही द्रव्यों के बीच में छुपा बैठा है, वह नीचे दब गया है, पर वस्तुयें ऊपर ढाँक कर बैठ गई हैं, वह बिना पर वस्तुओं के बाहर फेंके, कैसे मिल?

उत्तम आकिंचन्य धर्म के सम्बन्ध में कतिपय कथानक

1. **भरत जी**–अयोध्या के राजा दशरथ एवं कैकयी के पुत्र भरत जी थे। जब कैकयी ने राजा दशरथ से अपने पूर्व वरदान स्वरूप को राज गद्दी माँगी तब राम, लक्ष्मण और सीता सहित स्वयं ही वन को चले गये। राम जी ने सोचा कि यहाँ रहने से भरत जी राजगद्दी पर नहीं बैठेंगे। पुनश्च छोटे जब सिंहासनारूढ़ हों तब बड़ों को अपने स्वाभिमान की रक्षार्थ स्वयं ही वहाँ से चले जाना चाहिए। इसलिए भी राम वन को चले गये। किन्तु भरत जी को तो राज्य के प्रति कोई मोह नहीं था, वे अंतरंग से वैरागी थे, दीक्षा लेने को उत्सुक थे अत: उन्होंने माता-पिता व बड़े भाई की आज्ञा से राजगद्दी संभाली तो सही, किन्तु एक सेवक की तरह, उस राज्य को रामचन्द्र जी का राज्य मानकर। वे जानते थे यह बाह्य राज्य मेरा नहीं है, मेरा साम्राज्य तो मेरे अंदर है, जिसे मैं मोहनीयादि कर्मों के कारण प्राप्त नहीं कर सका। बाहर में किंचिद् भी पदार्थ मेरे नहीं हैं, न थे और न कभी हो सकेंगे।

2. **शुभचन्द्र एवं भर्तृहरि**–शुभचन्द्र व भर्तृहरि दोनों राजपुत्र थे, राज्य अवस्था से विरक्त हो, कल्याणार्थ सन्यास ग्रहण किया। शुभचन्द्र जी ने दिगम्बर मुनियों की संगति व सुसंस्कारों से सम्यग्ज्ञान अर्जित कर जिन दीक्षा ग्रहण कर ली और भर्तृहरि ने परिव्राजक मिथ्यादृष्टियों की संगति से कुतापस का वेष धारण किया और वहाँ रहकर स्वर्ण बनाने की विद्या सीखी। एक दिन भर्तृहरि को ज्ञात हुआ कि उसका भाई दिगम्बर अवस्था में रहता है, उसके पास न तो आश्रम है ओर न ही

वस्त्र व भोजन आदि। भर्तृहरि भ्रातृ व्यामोह से द्रवीभूत हो गये और अपने शिष्यों को रसायन देकर शुभचन्द्र जी के पास भेजा, शिष्यों ने उन्हें रसायन भेंट करते हुए निवेदन किया कि 'यह स्वर्ण बनाने के लिए रसायन आपके भाई ने भेजा है, आप स्वर्ण बनाकर अपनी गरीबी दूर कर लें।' किन्तु शुभचन्द्र जी अपने ध्यान में ही मग्न रहे, तब यह सोचकर कि शायद कम है इसलिए ये ग्रहण नहीं करते हैं। भर्तृहरि के सभी शिष्य वापिस आ गये, भर्तृहरि ने पुनः अपने शिष्यो को और अधिक देकर भेजा किन्तु परिणाम पूर्ववत् ही रहा, अंत में भतृहरि स्वयं शुभचन्द्र जी के पास बहुत सारा रसायन लेकर पहुँचे और रसायन का आग्रह किया, शुभचन्द्र जी ने उसे वहीं जमीन पर डाल देने को कहा। भैया, यदि तुम्हें धन ही चाहिए था तो राज्य पाट छोड़कर दीक्षा क्यों ली, और तुम्हें रसायन व्यर्थ होने का दुःख है तो लो ये स्वर्ण। यह कहते हुए पैर के तलवे की धूल उठाकर सामने के पर्वत पर डाली तो सारा पर्वत स्वर्णमय हो गया, जिसे देखकर भर्तृहरि भी महान आश्चर्य को प्राप्त हुए। शुभचन्द्र जी ने कहा बाह्य चमत्कार के लिए ये दीक्षा नहीं हैं यह दीक्षा तो आत्म कल्याण के उद्देश्य से ली जाती है। शुभचन्द्र जी के सम्बोधन का भर्तृहरि जी पर गहरा प्रभाव पड़ा और वे आत्म हितार्थ, सर्व परिग्रह का त्याग कर दिगम्बर मुनि हो गये, आत्म के अतिरिक्त किंचित् पदार्थ भी मेरा नहीं है, न था, न हो सकेगा।

3. **राजा भोज**–एक बार राजा भोज अपने महलों में सो रहे थे, किन्तु उन्हें नींद नहीं आ रही थी। अतः वे कवि हृदय होने से कविता बनाने में संलग्न हुए और वे वसंततिलका छंद में तीन पद बना चुके थे जिसमें उन्होंने अपने राज्य वैभव का वर्णन किया। चतुर्थ पद बनाने में संलग्न थे किन्तु फिर भी बना नहीं

पा रहे थे। वे बार-बार तीन पद पढ़ते, उसी समय उनके पलंग के नीचे चोर भी छुपकर बैठा था, वह भी कवि था, उससे रहा नहीं गया, और चोरी करना भूलकर चतुर्थ पाद की पूर्ति हेतु बोल पड़ा, उसने सोचा सवेरा होने वाला है राज्य सैनिकों द्वारा पकड़ा जाऊँगा और सजा भी मिलेगी अतः जब राजा ने ये तीन पद बोले–

चेतोहराः युवतयः सुह्यदानुकूलाः,
सद्बान्धवाः प्रणयः गर्व गिरश्च भृत्याः।
गर्जन्ति दन्ति निबहास्तस्ला तुरंगा,

तब चोर ने चतुर्थ पद की पूर्ति इस प्रकार की–

सम्मीलितेन नयनो नहिं किंचदस्ति।।

अर्थात्–मेरे पास चित्त को हरण करने वाली स्त्रियाँ हैं, मनोनुकूल मित्र हैं, स्नेह से युक्त बन्धु बांधव हैं, गर्व से रहित सेवक समूह हैं, गर्जना करने वाले हाथी हैं तथा वायु के समान वेग शाली चंचल घोड़े हैं, (चतुर्थ पद का अर्थ) किन्तु जब तक नयन खुले हैं तभी तक ये सब कुछ हैं, नेत्र बंद होते ही (मृत्य होते ही) तेरा ये सब छूट जायेगा। राजा ने चोर को अंतरंग के नेत्रों को उद्घाटित करने वाला गुरु माना और उन दोनों ने जिन दीक्षा ग्रहण कर ली।

4. **राम कृष्ण परम हंस**–एक बार रामकृष्ण परमहंस विदेश यात्रा हेतु गए, वहाँ उन्होंने देखा, किसी मकान में आग लगी हुई है, सभी लोग आग बुझाने व सामान को बचाने में संलग्न हैं, बाद में जब देखा कि सामान तो बहुत कुछ बचा चुके हैं, किन्तु भोक्ता (पुत्र) उन आग की लपटों में स्वाहा हो गया है, तभी उन्होंने अपनी डायरी में नोट किया कि संसार के अधिकांश महानुभाव सामान की सुरक्षा करते हैं, अपने आत्मा

(भोक्ता) या मालिक की नहीं। आकिंचन धर्म को प्राप्त व्यक्ति आत्मा की सुरक्षा करता है, सामान की नहीं।

5. **सम्राट सिकन्दर और कल्याण मुनि**–यूनान का सम्राट सिकन्दर विश्व विजय करने हेतु निकला, भारत को जीतने के लिए भी आया। उसने पूछा यहाँ ऐसा कौन है, जो मुझे नमस्कार नहीं करता? लोगों ने बताया–दिगम्बर मुनि! ये कहाँ रहते हैं? जंगलों में, उन्हें बुलाने के लिए अपने सैनिक भेजे, किन्तु वे दिगम्बर मुनि नहीं आये, भेंट लेकर के पुनः सैनिकों को भेजा, तब भी नहीं आये, अन्ततः सम्राट सिकन्दर स्वयं वहाँ गया और उनको तलवार के बल से झुकाना चाहा। दिगम्बर संत बड़े निर्भीक, स्वावलम्बी साधु होते हैं, उन्होंने कहा जिसे तुम तलवार से मारोगे वह तो अनादि से मृत है, जो आत्मा है उसे तुम मार नहीं सकते, तलवार काट नहीं सकती। जरा, उधर खड़ा हो जा, सामने से जो धूप आ रही है उसे आने दे, जिस धूप को तू दे नहीं सकता, उसे छीनने का तेरा क्या अधिकार है? सिकन्दर उन दिगम्बर साधुओं के उपदेश से बहुत प्रभावित हुआ और आचार्य दौलामस के संघस्थ साधु कल्याण मुनि को विदेश ले जाने लगा। मार्ग में साधु ने कहा कि तेरी मृत्यु समीप है, तू भगवान् को याद कर। तूने विश्व विजय करने का सपना संजोया, साकार करने का प्रयास भी किया, किन्तु तू इस विजय से प्राप्त सम्पत्ति को अपने साथ नहीं ले जा सकता। तब सिकन्दर ने कहा कि मृत्यु के बाद मेरे दोनों हाथ अर्थी से बाहर निकाल देना। जिससे दुनिया जान सके कि सिकन्दर यहाँ से कुछ नहीं ले गया, सब यहीं छोड़ गया। कोई यहाँ से अपने साथ मौत के बाद कुछ भी परिग्रह/बाह्य धन नहीं ले जा सकता, मात्र पुण्य-पाप को ही ले जा सकता है। संसार में स्वात्म द्रव्य के अतिरिक्त मेरा कुछ

भी नहीं है, सिकन्दर सम्राट के एक पद्य आज तक भी जन सामान्य में प्रचलित है।

सिकन्दर चला जब दुनिया से, सभी हाली हवाली थे।
पड़ी थी पास में दौलत, मगर दो नो हाथ खाली थे।।

6. आकिंचन्य भाव व निस्पृहता को प्राप्त करने वाले सभी दिगम्बर भाव लिंगी श्रमण होते हैं, वे ही परमार्थ रूप सच्चे सुख के भोक्ता होते हैं। जो पर पदार्थ में आसक्त होते हैं, वे आकिंचन धर्म को प्राप्त नहीं कर सकते। यह धर्म भी उत्तम श्रमण के संभव है। उन श्रमणों में से सुप्रसिद्ध के नाम यहाँ बताते हैं–

मुनिराज बाहुबली, सनत्कुमार, भरतेश मुनिराज, बलराम मुनिराज, नागसेन, जम्बूस्वामी, सुदर्शन मुनिराज, गजकुमार, यशोधर, जिनसेन, सुकौशन, सुकुमाल, सकल भूषण, धर्माचार्य मुनिराज, श्रीधर केवली इत्यादि मुनिराजों का जीवन चरित्र विशेष पठनीय है।

अमृत दोहावली

उत्तमा स्वात्म चिंता स्यात्, देह चिंता च मध्यमा।
अधमा काम चिंता स्यात्, पर चिंताऽधमाधमा॥1॥

धरती पर सोता हूँ आसमान ओढ़ता हूँ।
देह की माटी से, अमृत निचोड़ता हूँ।
इसलिए वैभव से नहीं, विराग से नाता जोड़ता हूँ॥2॥

मैं हूँ कौन कहाँ से आया, किस दर पे है जाना।
इस दुनिया में क्या है मेरा, किसे साथ ले जाना॥3॥

क्या खोया क्या पाया अब तक, क्या है मुझको पाना।
कैसा है मम रूप सलोना, कब शिवपुर को जाना॥4॥

छाया माया एक सी, घटत बढ़त दिन रैन।
जो या की शरणा गहे, सो न पावे चैन॥5॥

सिकंदर जब चला चरती से सभी हाली हवाली थे।
पड़ी थी पास में माया मगर दोनों, हाथ खाली थे॥6॥

परिग्रह चौबीस भेद, त्याग करें मुनिराज जी।
तिसना भाव उछेद, घटती जान घटाइए॥7॥

तेरा तो तुझमें बसे, क्यों पर में माने चैन।
आँख हिये की खोल ले, सुन सद्गुरु के बैन॥8॥

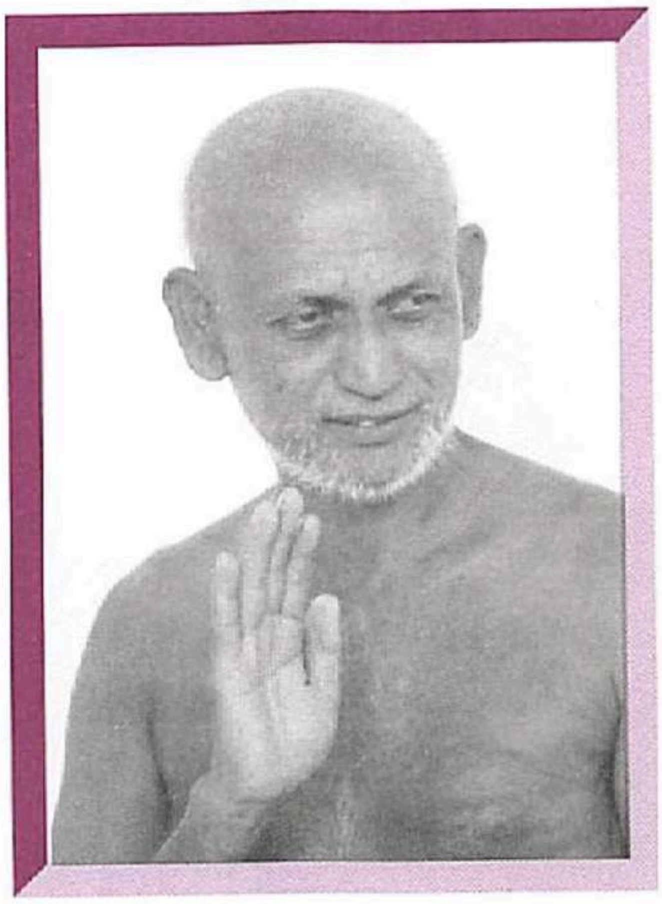

उत्तम ब्रह्मचर्य

बंभं तिलोयपुज्जं,
दियंबरा धारंति सुहचित्तेण।
ते परमबंभयारी,
देवेहि पुज्जा णिग्गंथा।।

दशामृत
अहसास अंतस का

उत्तम ब्रह्मचर्य धर्म

महानुभाव!

आज उत्तम ब्रह्मचर्य धर्म का दिवस है। 'ब्रह्मचर्य' उसके साथ उपसर्ग भी लगाया जाता 'उत्तम' और ब्रह्मचर्य के पीछे लगा है 'धर्म'। ये तीनों शब्द ही ब्रह्मचर्य की श्रेष्ठता को सिद्ध कर रहे हैं। ब्रह्मचर्य धर्म को, धर्म के दस लक्षण में अंतिम लक्षण के रूप में स्वीकार किया है। यह चरम साध्य लक्षण है। उत्तम ब्रह्मचर्य की प्राप्ति प्रारम्भिक भूमिका में नहीं हो सकती। यह जीव अनादि काल से संसार में परिभ्रमण कर रहा है, अनादि काल से इन्द्रियों के द्वारा भोग और उपभोग करने में संलग्न है। ऐसा कोई समय उसके जीवन में नहीं आया, जब यह जीव ब्रह्म स्वरूपी आत्मा में लीन हो जाता और उस चर्या का पालन करता। शायद ऐसा समय उस जीव के जीवन में कभी नहीं आया, यदि ऐसा समय आ जाता तो यह जीव भव भ्रमण नहीं करता। 'ब्रह्मचर्य व्रत धर्म का प्रारम्भिक द्वार है' और 'ब्रह्मचर्य व्रत ही धर्म की पूर्णता का आखिरी द्वार है।' यह मोक्ष महल में प्रवेश करने का अंतिम द्वार है, अंतिम सीढ़ी है। ब्रह्मचर्य के माध्यम से मोक्ष मार्ग प्रारम्भ होता है और ब्रह्मचर्य के माध्यम

सर्वोदयी चिन्तन

ब्रह्म स्वरूप आत्मा में आचरण करना ही ब्रह्मचर्य है। वह ब्रह्मचर्य व्रत सभी व्रतों में श्रेष्ठ है और आत्मा का शुद्ध स्वभाव है।

सर्वोदयी चिन्तन

धर्म की प्राप्ति अधर्म के त्याग से ही होती है, जो ब्रह्मचर्य रूपी धर्म को पाना चाहते हैं, उन्हें अब्रह्म रूपी अधर्म को नष्ट करना होगा क्योंकि शत्रु को नष्ट किये बिना निश्चिंतता की प्राप्ति असंभव है।

से ही मोक्ष मार्ग का अंत होता है। प्राय:कर जितने भी आपको मोक्षमार्गी मिलेंगे, धर्मात्मा मिलेंगे, साधर्मी बंधु मिलेंगे, यदि जो अपना कल्याण करना चाहते हैं तो सबसे पहले उन्हें वैराग्य होता है, विरक्ति होती है। विरक्ति किससे होती है? संसार, शरीर और भोगों से। संसार भी दु:खमय प्रतीत होता है, अब्रह्म का सेवन करते हुए शरीर भी रोगों का घर दिखाई देता है और शरीर की सेवा व्यक्ति अब्रह्म के सेवन के लिए करता है, भोग और उपभोग के लिए करता है। अन्यथा सोचता है, शरीर है, जैसा है, वैसा ठीक है, उसके प्रति भी राग छूट जाता है, जब व्यक्ति की प्रवृत्ति अंतरंग की ओर होने लगती है, वह अपनी ब्रह्म स्वरूप आत्मा में चर्या करने लगता है, तो पुन: व्यक्ति बाहर की क्रियाओं से विमुक्त हो जाता है, उन्मुख हो जाता है। उस शरीर के प्रति राग नहीं रहता है, वह शरीर के संस्कार भी नहीं करता, वह सोचता है ''इस शरीर के माध्यम से मुझे धर्म साधना करनी है, इस शरीर के माध्यम से मुझे आत्मकल्याण करना है'', और सबसे पहले यदि वह नियम लेता है तो वह ब्रह्मचर्य व्रत का नियम लेता है कि मैं जीवन में अधिक से अधिक समय ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करूँगा। वह जानता है कि एक बार के अब्रह्म सेवन में 9 लाख अथवा किन्हीं आचार्यों की अपेक्षा 9 करोड़ संज्ञी पंचेन्द्रिय मनुष्य जाति के जीवों का घात हो जाता है। इतना पाप और किसी क्रिया में नहीं होता है जितना बड़ा पाप अब्रह्म के सेवन में होता है। इसलिये जो भी व्यक्ति संसार से विरक्त होते हैं, मोक्षमार्ग में चलने के लिए तैयार होते हैं, सबसे पहले वे ब्रह्मचर्य व्रत को अंगीकार करते हैं, अब्रह्म से विरक्त हो जाते हैं। अपनी शक्ति के अनुसार

महीने में एक दिन का ब्रह्मचर्य व्रत, दो दिन का, तीन दिन का, चार दिन का, पांच दिन का, एक सप्ताह का, पन्द्रह दिन का, बीस दिन, पच्चीस दिन और पुनः क्रम से साधना करता हुआ वह तीस दिन का भी नियम ले लेता है।

सर्वोदयी चिन्तन
अब्रह्म का सेवन सदैव नहीं किया जा सकता क्योंकि वह विभाव है, विभाव सुख का नहीं दुःखों का ही जनक होता है। विश्राम विभाव में नहीं स्वभाव में ही संभव है।

महानुभाव!

क्रम-क्रम से अपनी साधना को बढ़ाता है। यद्यपि आचार्यों ने कहा **'अब्रह्म का सेवन नहीं करना चाहिये, अब्रह्म पाप है, अब्रह्म में ही सभी पाप आ जाते हैं।'** इसलिये उसका सेवन नहीं करना चाहिये। किसी श्रावक ने पूछा यदि कोई व्यक्ति ब्रह्मचर्य व्रत पालन करने में असमर्थ है, अपनी इन्द्रियों पर नियंत्रण नहीं कर पा रहा है, विषय वासना को नहीं जीत पा रहा हैं, तो क्या करना चाहिये? उसके लिए आचार्य महोदय संकेत देते हैं यदि ऐसी बात है तो अपनी स्वकीय स्त्री के साथ जीवन में एक बार विषयों का सेवन करना और ज्यादा नहीं करना। पुनः कहा 'प्रभो! हम तो बहुत निकृष्ट हैं, पापात्मा हैं, दुष्ट हैं, जानते हुए भी मन उसमें लीन हो जाता है, जीवन में एक बार अब्रह्म का सेवन करने से संतुष्टि नहीं हो तो? आचार्य कहते हैं 'संतुष्टि अब्रह्म के सेवन से होती ही नहीं है एक बार से भी संतुष्टि नहीं होगी तो हजार बार से भी संतुष्टि नहीं होगी। प्रभो! यदि, एक बार से मन संतुष्ट नहीं हुआ, विषय वासनायें ज्यों की त्यों रहती हैं, तो कुछ कन्सेशन चाहिए। कहा- वर्ष में एक बार अपनी स्वकीय परिणीता जाति, कुल आदि से शुद्ध जो कि परम्परा के अनुसार परिणायी गयी है, जिसके साथ पाणिग्रहण संस्कार हुआ है, ऐसी स्वदारा के साथ वर्ष में एक बार ही विषयों का सेवन करना चाहिये। पुनः पूछा कि इससे भी काम नहीं चले

तो? बड़े खेद के साथ दुख को प्रकट करते हुए आचार्य महोदय ने कहा– आचार्य महोदय अब्रह्म की आज्ञा नहीं दे सकते। सुकरात ने कहा कि युवावस्था में विषयों का सेवन महीने में एक बार कर लेना। पुनः वह व्यक्ति बड़ा हो जाता है। हाथ जोड़कर खड़ा हो जाता है। यदि महीने में एक बार भी विषयों का सेवन करने से संतुष्टि नहीं तो फिर क्या करना चाहिये? सुकरात ने कहा कि अपने सिर से कफन बांध लेना चाहिए और जो मन में आये सो करना चाहिए। अब हम ज्यादा कुछ नहीं जानते। क्योंकि अब्रह्म के सेवन से शरीर की शक्ति क्षीण हो जाती है। जब वह शक्ति क्रमशः क्षीण होती जायेगी तो जिंदा पुरुष भी मुर्दा के समान हो जाता है, जिंदा पुरुष की भावना भी मरे हुए पुरुष के समान है, उसमें कोई जोश, कोई शक्ति, शरीर में कोई न कान्ति, लावण्य, सुंदरता अथवा धर्म के प्रति समर्पित भावनाओं का जन्म नहीं हो पायेगा, इसलिए अब्रह्म का सेवन तो करना ही नहीं चाहिए किन्तु विषय वासनाओं में इतना ग्रसित हो गया, वह शादी-विवाह की भी सोचता है, कैसे भी हो, शादी तो हो ही जाए। एक बार सुनने में आया-

दृष्टांत–एक व्यक्ति के चार विवाह हो गये परन्तु चारों पत्नियों का वियोग हो गया। एक व्यक्ति के बारे में पढ़ने में आया था कि वह व्यक्ति जिसने शायद 85 वर्ष की उम्र में चौथी शादी की है, उसका बड़ा बेटा 65 साल का होकर खत्म हो गया, उसके लगभग 36 लड़की और 116 नाती थे।

कहने का आशय यह है, फिर भी विषय वासनाओं को नहीं जीत पाया। नीतिकारों ने कहा 'धिक्कार है' उसके लिए। विषयों का सेवन चालीस के बाद भी तुम करते हो। बड़ी दयनीय बात है, शोचनीय स्थिति। नीतिकारों ने कहा है-

ब्याह की चाह उठे मन माहीं, तो पन्द्रह बीस पचीस लों कीजे।
तीस भये पैंतीस भये, चालीस पचास पे नाम न लीजै।।

काम की चाह उठे मन माहीं, तो ज्ञान सुधारस ध्यान से पीजे।
साठ वरष पे जी ललचावे, तो जूता उतार कपाल में दीजै।।

सर्वोदयी चिन्तन

काम वासना रूपी सुभट संसार के प्रायः सभी प्राणियों को अपने वश में कर लेता है किन्तु जो अपने ब्रह्म स्वरूपी आत्मा के दृढ़ दुर्ग में बैठे हैं, बाहर नहीं झाँकते, उनसे काम रूपी सुभट बड़ा भयभीत रहता है।

नीतिकार ने कहा इतनी तो छूट दी जा सकती है। पन्द्रह, बीस, पच्चीस, यहाँ तक तो शादी की गुंजाइश है, इसके आगे अधिक से अधिक सीमा बांधी तो चलो तीस तक मान लो और तीस से पैंतीस तक भोगों को भोग लो, पुनः निवृत हो जाओ, क्योंकि आज मनुष्य की औसत आयु साठ वर्ष है, तो साठ वर्ष में से पन्द्रह वर्ष यदि बाल अवस्था के लिए निकाल दिये और आपकी युवावस्था पन्द्रह से प्रारम्भ हो जाती है तो पन्द्रह से तीस तक, यदि प्रथम पन्द्रह से प्रारम्भ नहीं होती है, बीस से प्रारम्भ होती है तो बीस से पैंतीस तक, यदि पच्चीस से प्रारम्भ होती है तो पच्चीस से चालीस तक, यदि तीस से प्रारम्भ होती है तो भी तीस से चालीस तक क्योंकि अंतिम हिस्से में कभी भी भूल कर अब्रह्म का सेवन नहीं करना चाहिये। यदि कोई कन्या रजोधर्म से पूर्व अब्रह्म का सेवन करती है या कोई पुरुष जो अपनी आयु से चौथाई समय शेष रहने पर अब्रह्म का सेवन करता है, तो ऐसे दोनों मनुष्य दुर्गति के पात्र होते हैं। इसलिए ध्यान रखें, आचार्य परमेष्ठियों की भी आज्ञा है क्योंकि आयु का बंध दो तिहाई हिस्सा निकल जाने पर होता है। यदि चौथे हिस्से में भी अपने कल्याण की भावना नहीं भाओगे, अपने कल्याण का उपाय नहीं सोचोगे तो कल्याण कब कर पाओगे?

महानुभाव!

किन्तु आज आश्चर्य होता है कि लोग जानते भी हैं, जीवन में

सर्वोदयी चिन्तन
ब्रह्मचर्य आत्मा का भोजन है और अब्रह्म है आत्मीय शक्ति को क्षीण करना एवं इन्द्रिय व शरीर का दुरुपयोग करना, ऊर्जा शक्ति को अधोगामी बनाना है।

कम से कम सौ बार भोगों को भोग होगा, दो सौ बार भोगा होगा, भोगने के उपरांत भी वह पचास-साठ वर्ष के हो गये। फिर भी कभी मौका आ जाए उनसे संकेत किया जाए 'भैया' अब तो तुम ब्रह्मचर्य व्रत को अंगीकार कर लो, तो कहते हैं, 'महाराज जी!' थोड़ा सोचकर बतायेंगे। ब्याज की पूंजी खा रहे हो, तुम्हारी आयु पूरी साठ साल की हो गई इसके ऊपर भी जो रहे हो, फिर भी कह रहे हो कि सोचकर बतायेंगे। यदि तुम्हारी मृत्य हो जाती तो अभी इस ब्याज की पूंजी में भी ब्रह्मचर्य व्रत का पालन नहीं कर पाये तो कब करोगे?

महानुभाव!

किन्हीं-किन्हीं व्यक्तियों को एक बार भोगों का सेवन करने के उपरांत ऐसी विरक्ति हो जाती है कि पुन: भोगों की ओर देखना नहीं चाहते। आचार्यों ने शास्त्रों में कहा है **'शमशान में मुर्दा जलाने के उपरांत, शास्त्र सभा में स्वाध्याय सुनते समय और अब्रह्म का सेवन करने के तुरंत बाद जो परिणाम विरक्ति के होते हैं, यदि वैसे परिणाम शाश्वत हो जाएँ तो जीव का कल्याण हो जाए।'** अब्रह्म का सेवन करने के बाद वह तीव्र विरक्ति ऐसी होती है कि एक दूसरे का मुख देखना भी नहीं चाहते। कहने का आशय यह है कि यदि उस समय आपको यह अहसास हो जाए कि अब्रह्म का सेवन करना कोई अच्छी बात नहीं है, अब्रह्म का सेवना करना नरक का द्वार, दुखों का घर है तो वह सब जानने के उपरांत भी व्यक्ति की वासना साठ साल बाद तक बनी रहे, बड़ी आश्चर्य की बात है। बाल काले से सफेद हो गये, कानों ने सुनना बंद कर दिया,

आँखों की निगाह कम हो गई, शरीर में खड़े होने की शक्ति नहीं है, फिर भी वासना ज्यों की त्यों तरुणाई पर विद्यमान रहती है। ऐसे व्यक्ति उम्र से वृद्ध होने पर भी शरीर से या वासनाओं के माध्यम से तो युवा ही कहलाते हैं।

महानुभाव!

दृष्टांत—एक वृद्ध पुरुष और महिला के बारे में सुनने में आया, किन्हीं मुनिराज ने उन्हें संकेत किया। अब तो तुम लोग वृद्धावस्था को प्राप्त हो गये हो, तुम्हारा शरीर भी काम नहीं करता, इन्द्रियाँ भी शिथिल हो गई हैं, अब तो आप को ब्रह्मचर्य व्रत को अंगीकार करके अपना कल्याण करना चाहिए। ठीक है महाराज जी, हम कल बतायेंगे। दूसरे दिन दोनों आये, पुरुष ने महाराज के सामने राख चढ़ाई, महिला ने महाराज जी के सामने धान के छिलके चढ़ाए और चढ़ाकर के नमोस्तु किया। महाराज जी ने पुनः टोक दिया, 'भैया' तुम कह रहे थे, कल बतायेंगे, अब तो कल आ गया, क्या विचार है तुम्हारा? बोले—महाराज जी! तुम अब भी नहीं समझ पाये। बोले—क्या समझना? बताया—महाराज जी! जब तक इस शरीर की राख नहीं हो जायेगी तब तक मैं ब्रह्मचर्य व्रत का पालन नहीं कर सकता। उस वृद्धा से पूछा—बोले महाराज! जब तक ये शरीर अनाज खाता है, तब तक मैं ब्रह्मचर्य का पालन करने में असमर्थ हूँ।

यह बात कहाँ तक सत्य है, ये तो नहीं कह सकते, किन्तु इतना अवश्य है कि वृद्ध पुरुषों में भी विषय वासनायें पायी जाती हैं। यदि 78 साल में भी विषय वासना है, तो यह बात मान सकते हैं, यह बात सत्य हो सकती है।

महानुभाव!

किन्तु इस जमीन पर ऐसे-ऐसे महापुरुष भी हो गये, जिनके बारे में क्या कहें? इतिहास साक्षी है और उनका नाम स्वर्ण अक्षरों में

अंकित करने के योग्य है। वह दृष्टांत याद आता है, विजय और विजया के सम्बन्ध में।

दृष्टांत–विजय और विजया शादी के पूर्व ही, धर्म संस्कारों से युक्त थे, और उन्होंने शिक्षा प्राप्त करते समय ही, विजय ने किन्हीं मुनि महाराज से नियम ले लिया था कि कृष्ण पक्ष में मैं ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करूँगा। महीने में दो पक्ष होते हैं–1. कृष्ण पक्ष, 2. शुक्ल पक्ष।

यदि शुक्ल पक्ष में अपनी इन्द्रियों को नहीं जीत पाया तो विषयों का सेवन करूँगा और पूरे कृष्ण पक्ष में ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करूँगा। उधर विजया ने किसी आर्यिका माता जी से शिक्षा प्राप्त की, धर्म के संस्कार प्राप्त किए और वहीं पर व्रत ले लिया। माता जी महीने में दो पक्ष होते हैं, एक पक्ष का मैं ब्रह्मचर्य व्रत लेती हूँ। कौन से पक्ष का लेती हो? माता जी मैं शुक्ल पक्ष में ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करूँगी। 'देखो, तुम्हारी परीक्षा भी होगी।' ऐसा माता जी ने कहा, तब विजया बोली–'माता जी मैं अपने व्रत में दृढ़ रहूँगी।' संयोग की बात कहिये कि विजय और विजया जो अलग-अलग नगर में रहते थे, एक दूसरे को जानते भी नहीं थे, दोनों की शादी हो गई। शादी होने के उपरांत जैसे ही संध्याकाल आया, शुक्ल पक्ष चल रहा था, शुक्ल पक्ष होने पर विजय, विजया के पास जाता है तो विजया कह देती है– 'प्राणनाथ' मुझे क्षमा करें। आज मैं आपकी आज्ञा मानने में असमर्थ हूँ। विजय ने पूछा क्यों? बात ये है कि मैंने शादी से पूर्व शुक्ल पक्ष में ब्रह्मचर्य व्रत रखने का नियम ले लिया, इसलिए कुछ दिन बाकी रह गये हैं, जैसे ही कृष्ण पक्ष आये तो पुनः हम दोनों भोगों का आनंद लेंगे। विजय लौट आता है, कृष्ण पक्ष प्रारंभ हुआ, विजय नहीं गया। विजया को मालूम चला। विजय कहते हैं कि कुछ दिन ही नहीं अब तो पूरा जीवन ही ऐसे निकालना पड़ेगा। 'क्यों'? क्योंकि तुमने शुक्ल पक्ष का नियम ले लिया है और मैंने कृष्ण पक्ष का। शुक्ल पक्ष में तेरा ब्रह्मचर्य व्रत है और कृष्ण पक्ष में मेरा ब्रह्मचर्य व्रत है, इसलिए

जीवनभर के लिए हमारा ब्रह्मचर्य व्रत हो गया। विजया ने कहा 'प्राणनाथ! मेरी त्रुटि क्षम्य हो, जो अपराध मुझसे अज्ञानता में हो गया, व्रत मैंने ले लिया है, मैं तो जीवनभर ब्रह्मचर्य व्रत का पालन कर लूँगी पर आप पुरुष हैं, पुरुष को एक से अधिक शादी करने का भी अधिकार होता है, अत: आप दूसरी शादी कर लें। मैं आपको देखकर ही संतुष्ट हो जाऊँगी, आपके प्रति मेरे परिणाम कभी भी नहीं बिगड़ेंगे। विजय ने कहा यह बात अवश्य है, स्त्री त्याग की पराकाष्ठा को छू लेती है, ममता की पराकाष्ठा को भी छू लेती है, सहनशीलता की पराकाष्ठा उसमें है। वह व्रतों का पालन कर सकती है, तो क्या ये नर नारियों से कम हैं। तू ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करेगी तो मैं भी ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करूँगा, मेरा भी जीवन भर ब्रह्मचर्य व्रत है और विजया का जो ब्रह्मचर्य व्रत था, विजय का ब्रह्मचर्य व्रत भी शायद उससे कम नहीं था। यदि विजय चाहता तो दूसरी शादी भी कर सकता था, उसके व्रत में कोई दोष भी नहीं लगता, किन्तु उसने कहा कि नहीं मैं भी जीवनपर्यंत के लिए अब्रह्म का त्याग करता हूँ किन्तु यह बात जब पिता जी को और माता जी को पता चल जायेगी, उसी दिन हम दीक्षा ले लेंगे, दोनों ने मन में यह निर्णय कर लिया। कुछ दिन बीत गये, माता-पिता सोच रहे थे, शादी किये कई वर्ष हो गये, किसी नाती का मुख देखने के लिए नहीं मिला। किसी समय विमल वाहन मुनि का संघ आया। वहाँ पर शायद विमल नाम का सेठ वंदना करने के लिए गया। मुनिराज से निवेदन किया प्रभो! मुझे भी कल्याण का मार्ग दिखाइए, मैं भी अपना कल्याण कर सकूँ। मुनिराज ने कहा– 'बेटे', बिना जिन दीक्षा को अंगीकार किये इस आत्मा का कल्याण नहीं हो सकता, ये आत्मा मोक्ष अवस्था को, सिद्ध अवस्था को जिन दीक्षा लेने के उपरांत ही प्राप्त हो सकती है। 'प्रभो!' मेरी भावना है, मैं निजदीक्षा लेने के लिए तैयार हूँ किन्तु मेरे मन में एक भावना है, उस भावना को पूर्ण करना चाहता हूँ। मेरी भावना ये है कि मैं एक साथ चौरासी हजार या चौरासी लाख या चौरासी सौ इतने मुनियों का पड़गाहन करके सभी

के लिए आहार दूँ। किन्तु यह सब कैसे सम्भव हो सकेगा? मेरी भावना की पूर्ति कैसे हो सकेगी? ऐसा कोई और भी दूसरा कार्य है जिसके माध्यम से मेरी भावना पूर्ण हो जाए? महाराज जी ने कहा हाँ! एक उपाय और है। चौरासी मुनि तुम्हें एक साथ नहीं मिल पायेंगे। एक काम करो, वह यह है कि यदि तेरे यहाँ अखण्ड ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करने वाले कोई दम्पत्ति भोजन कर लें, तो तेरी भावना पूर्ण हो सकती है। ठीक है महाराज जी। इसका मालूम कैसे चलेगा? इसका मालूम करने के लिए सीधी सी बात है 'तुम्हारे नगर में विजय और विजया नाम के दम्पत्ति हैं, वह ब्रह्मचर्य व्रत का पालन कर रहे हैं'। अच्छा! वह सेठ जाते हैं, उन दोनों को निमंत्रण करते हैं। निमंत्रण करने के लिए गये, पिताजी को भी मालूम हुआ कि निमंत्रण आया है, अभी बात खुली नहीं, निमंत्रण में दोनों जाते हैं। वहाँ चन्द्रशाला में पहुँचकर भोजन किया। भोजन करने के उपरांत देखते हैं, कि जो चंदोवा वर्षों से बंधा हुआ काला पड़ गया था, उनके वहाँ पहुँचते ही भोजन करने के उपरांत वह बिल्कुल धवल हो जाता है। वह काला रंग कहाँ चला गया, न जाने कहाँ लुप्त हो गया। इस बात से सभी को ज्ञान हो गया, यह बात सिद्ध हो गई कि निःसंदेह विजय और विजया अखण्ड ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करने वाले हैं, इनके प्रभाव से यह काला चंदोवा भी सफेद हो गया है। ये बात उनके पिता के पास भी आई, उन्होंने पूछा तो पुनः विजय और विजया अपने माता-पिता के चरणों में नमस्कार करते हुए निवेदन करते हैं, 'प्रभो! अब हमें जिनदीक्षा लेने के लिए आज्ञा दें, हम अपना कल्याण करना चाहते हैं। हमारा यह नियम था जब तक ये बात गुप्त रहेगी तब तक माता-पिता की सेवा करेंगे और जिस दिन बात खुल जायेगी, उसी दिन जिनदीक्षा के लिए चले जायेंगे। पिता जी, आज अपना मोह छोड़िए और हमें दीक्षा के लिए आज्ञा दीजिए।' वे विजय और विजया जिनदीक्षा को अंगीकार करके आत्मकल्याण को प्राप्त करते हैं, स्वर्ग आदि अवस्था को प्राप्त करते हैं।

महानुभाव!

> **सर्वोदयी चिन्तन**
> ब्रह्मचर्य व्रत तीनों लोकों में पूज्य निधि है, इस व्रत को जो भी अंगीकार कर लेता है वह भी तीनों लोकों में पूज्य हो जाता है। पूज्यता को आत्मसात करना ही स्वयं पूज्य बनना है।

यह भारत देश ऐसे महापुरुषों का देश है, जहाँ अखण्ड व्रत का पालन करने वाले भीष्म पितामह, देशभूषण, कुलभूषण, वासुपूज्य, मल्लिनाथ, नेमिनाथ, पार्श्वनाथ, महावीर स्वामी जैसे महापुरुष हुए, जहाँ पर नीली, सीता, द्रौपदी जैसी सतियाँ हुईं। राजुल, चंदना, अंजना इत्यादि महासतियों ने किस प्रकार अपने शील की रक्षा की। ऐसे महापुरुषों का, ऐसी महासतियों का ये देश है, किन्तु आज इस देश की स्थिति को देखकर बड़ा दर्द होता है।

महानुभाव!

ब्रह्मचर्य अणुव्रत का पालन तो प्रत्येक श्रावक को करना ही चाहिए। प्रत्येक श्रावक का यह कर्तव्य है कि स्वदार संतोष व्रत का पालन करे, अपनी स्वकीय स्त्री में संतुष्ट रहे। आचार्यों ने कहा यदि तुमने ब्रह्मचर्य का नियम ले लिया है कि अपनी स्वकीय स्त्री के अलावा किसी भी अन्य स्त्री के साथ विषयों का सेवन नहीं करूँगा या स्त्री भी ऐसा नियम लेती है तो मुझे लगता है कि ये नियम उसे बहुत बड़े पाप से बचा सकता है। क्रमशः धीरे-धीरे वह नियम उसे वहाँ तक ले जाता है कि एक दिन वह उत्तम ब्रह्मचर्य व्रत को भी पालन कर सकता है क्योंकि नियम लेने के उपरांत परिणाम खराब भी होंगे तो कब तक होंगे, एक बार होंगे, दो बार होंगे, चार बार होंगे, धीमे-धीमे स्वतः अपने आप परिणाम बदल जायेंगे। इसलिए नियम एक सीमा कहलाती है, एक बाड़ होती है, जिस सुरक्षा बाड़ से आपकी सुरक्षा हो जाती है।

महानुभाव!

ऐसा नियम सभी के जीवन में होना चाहिए। लोग कहते हैं, मन

चला जाता है। तुलसीदास ने कहा–

'मन जाय तो जान दो, तू मत जाय शरीर।
उतरी रखी कमान तो, का करेगा तीर।।

यदि मन जा रहा है, तो पाप कर रहा है, शरीर जा रहा है तो अपराध हो गया। मन में यदि तुमने परिणाम खराब कर लिए तो तुम्हें कोई सजा नहीं देगा, यदि शरीर से तुमने कोई चेष्टा कर दी तो सजा मिले बिना नहीं रहेगी। इसलिए अपने परिवार की, घर की सुरक्षा अपने आप करना है। अपनी माँ, बहिन, बेटियों पर इतना नियंत्रण रखें कि आपकी आज्ञा के बिना यहाँ–वहाँ आना–जाना निषेध हो, कहीं भी जाएँ, आज्ञा लेकर जाएँ और आपको भी इतना ध्यान रखना चाहिए कि अपने घर में अपने मित्रों को प्रवेश न दें। यदि मित्र घर पर आते हैं तो उनका आतिथ्य, सम्मान आप स्वयं करें, अपनी बहिन को, अपनी श्रीमती को, अपनी बेटी को अकेले उनके सम्मान के लिए न भेजें।

महानुभाव!

यदि इन बातों का ध्यान रखेंगे तो आपका परिवार एक सुव्यस्थित परिवार कहलायेगा, धर्मसंस्कार से युक्त परिवार कहलायेगा। 'यदि आपने यह नियंत्रण कर लिया तो मुझे लगता है आपके घर में पुनः वही रामराज्य लौटकर आ सकता है, जो कभी चौथे काल में था।' और समय के साथ सचेत नहीं हुए तो पंचम काल में छटवाँ काल आपके घर में तो आ ही जायेगा। इसलिए लोगों ने कहा 'जिस घर में पुरुष की नहीं चलती है, महिला की आवाज गूँजती है, उस घर से शांति विदा ले लेती है, उस घर में सुख, चैन, आनंद, अमन नहीं रह पाता है। स्त्री जाति में जितनी लज्जा शर्म पाई जाती है, विश्व के किसी जीव में उतनी शर्म नहीं पाई जाती है, किन्तु आज वह शर्म कहाँ है, समझ में नहीं आ रहा है।

आचार्यों ने नरक के द्वार के सम्बन्ध में कथन किया है। परस्त्री के साथ या पर पुरुष के साथ गमन करना, विषय सेवन करना भी एक नरक का द्वार है।

सर्वोदयी चिन्तन
जो आत्म स्वभाव में संतुष्ट हैं, आत्मा में ही रमण कर रहे हैं, उन्होंने ही पर पदार्थों को छोड़कर आत्मा की शुद्धता को पाया है।

चत्वारि द्वार नरकाणि, प्रथमं रात्रि भोजनं।
परस्त्री गमनं चैव, संधानानंत कायकैः।।
(महाभारत)

अर्थात् नरक के चार द्वार हैं—पहला रात्रि भोजन, दूसरा परस्त्री गमन, तीसरा अचार का सेवन, चौथा जमीकंद का सेवन। ये चार द्वार नरक के महाभारत में कहे हैं। और शायद प्रद्युम्न चरित्र में कहा है निर्माल्य सेवन, परस्त्री गमन– ये दो नरक के द्वार हैं। वसुनंदी आचार्य देव ने सप्त व्यसनों को नरक का द्वार कहा है। अन्य-अन्य आचार्यों की अलग-अलग अपेक्षायें हैं।

कहने का आशय यह है कि यदि आपने अणुव्रत ब्रह्मचर्य का नियम स्वदार संतोष व्रत या स्व पतिव्रत ले लिया, तो ये आपने आगम की रक्षा के लिए, धर्म की रक्षा के लिए, जैन संस्कृति की रक्षा के लिए बहुत बड़ा त्याग किया, आपके त्याग को भावी पीढ़ी सराहेगी। जिस प्रकार भीष्म पितामह के त्याग को अथवा और भी जो बाल ब्रह्मचारी हुए उनके त्याग को आज के पुरुष सराहते हैं। उनकी पूजा करते हैं, अर्चना करते हैं, उसी प्रकार भावी पीढ़ी भी तुम्हारी सराहना करेगी, पूजा करेगी, सम्मान करेगी। ब्रह्मचर्य अणुव्रत के उपरांत ब्रह्मचर्य प्रतिमा आती है। इसके अंतर्गत अपनी स्वकीय स्त्री को भी बहिन के समान मानता है, उसकी भी त्याग कर देता है। इसके उपरांत ब्रह्मचर्य महाव्रत के अंतर्गत वह मन से, वचन से, काय से, कृत से, कारित से, अनुमोदना से अब्रह्म के सेवन का त्याग कर देता है। इसके उपरांत 'ब्रह्मचर्य धर्म' आता है, इन सभी के

उपरांत मुनिराज सर्वश्रेष्ठ ब्रह्मचर्य के धारी होते हैं। उस ब्रह्म रूपी आत्मा में चर्या करता है। यही इसका स्वभाव है और उसकी पूर्णता, शील के 18000 भेदों की पूर्णता चौदहवें गुणस्थान में होती है और पूर्णता होते ही वह जीव मुक्ति को प्राप्त कर लेता है।

महानुभाव!

आपने आज ब्रह्मचर्य का प्रारंभ किया और क्रमशः यह ब्रह्मचर्य व्रत शील के 18000 भेदों की पूर्णता तक वृद्धिगत होता रहे और आप भी एक दिन अयोग केवली बनकर शाश्वत सिद्ध अवस्था को प्राप्त करें, मोक्ष अवस्था को प्राप्त करें। इन्हीं शब्दों के साथ आप सभी लोगों के लिए बहुत-बहुत आशीर्वाद देता हुआ अपनी वाणी को विराम देता हूँ।

सर्वोदयी चिन्तन

ब्रह्मचर्य का अर्थ है अपनी ऊर्जा का ऊर्ध्वारोहण करना या आत्मा में लीन होना। जब ऊर्जा ऊर्ध्वगति की ओर जाती है, वीर्य की ऊर्ध्व गति होती है, तो चेतना की भी ऊर्ध्व गति होती है। आत्मा के ऊर्ध्व कक्ष में शक्ति का संचय, ऊर्जा का केन्द्रीयकरण ही मोक्ष का हेतु है जहाँ ऊर्ध्व लोक में आत्मा स्थिर हो जाती है।

अर्थ सहित कुछ काव्य

ब्रह्मसंचेतसां पादो, चक्रवर्त्यादयो नराः।
नमन्ति भक्ति भारेण, का कथाऽन्य नृपेषु च॥1॥

अर्थ–ब्रह्मचारियों के चरणों में चक्रवर्ती आदि भी भक्ति से नमस्कार करते हैं, तब अन्य राजाओं की क्या कथा।

इन्द्राद्याः हि सुराः सर्वे, शिरसा प्रणमन्ति भो।
भक्ति भारेण सन्नम्राः, पादौ ब्रह्मव्रतात्मनाम्॥2॥

अर्थ–हे भव्य! ब्रह्मचारियों के चरणों में इन्द्र आदि समस्त देव भी भक्ति से नम्रीभूत होकर शिर से प्रणाम करते हैं।

धीरे-वीरे दरे दक्षैः, ज्ञानिभिर्व्रत तत्परैः।
ब्रह्मचर्य व्रतं धर्तुं, शक्यते न च कातरै॥3॥

अर्थ–व्रतों में तत्पर धीर वीर समर्थ ज्ञानी मनुष्यों के द्वारा ही ब्रह्मचर्य व्रत धारण किया जा सकता है, कायरों द्वारा नहीं।

एकमेव व्रतं श्लाघ्यं, ब्रह्मचर्य जगत्त्रये।
यद् विशुद्धिं समापन्नाः, पूज्यन्ते पूजितैरपि॥4॥

अर्थ–एक ब्रह्मचर्य व्रत ही तीनों लोकों में प्रशंसनीय है, जो कि विशुद्धि को प्राप्त हुए पूज्य पुरुषों के द्वारा भी पूजा जाता है।

अंक स्थानं भवेच्छीलं, शून्य स्थानं व्रतादिकम्।
अंक स्थाने पुनर्नष्टे, सर्वशून्य व्रतादिकम्॥5॥

अर्थ–शील को अंक के स्थानापन्न माना गया है और व्रतादिक को शून्य के स्थानापन्न माना गया है। अतः शील के नष्ट हो जाने पर व्रतादिक निष्फल हो जाते हैं।

स्वपुत्री भगिनी मातृ समां पश्यति यः सदा।
त्यक्ता च मनसा रागं, ब्रह्मचारी भवेत् स ना॥6॥

अर्थ–जो मनुष्य मन से राग छोड़कर अपने से छोटी स्त्री को

पुत्रीवत्, अपने बराबर स्त्री को बहिन की तरह तथा अपने से बड़ी को माता की तरह देखता है, वह ब्रह्मचारी होता है।

दिनैकं ब्रह्मचर्यं यो विधत्तेऽभयदानतः।
नवलक्षजीवानां वै तस्य, पुण्यं न वेदम्यहम्।।7।।

अर्थ–जो एक दिन के लिए भी ब्रह्मचर्य व्रत की रक्षा करता है, वह नव लाख जीवों को अभयदान देता है। उसके पुण्य को हम नहीं जानते अर्थात् उसे अतिशय पुण्य का बन्ध होता है।

मलबीजं मल योनिं, गलन्मलं पूतिगन्धि बीभत्सं।
पश्यन्नंगमनंगाद् विरमति यो ब्रह्मचारी सः।।8।।

अर्थ–जो शरीर को रजो वीर्यरूप मल से उत्पन्न, मल को उत्पन्न करने वाला, मल को बहाने वाला, दुर्गन्धयुक्त और ग्लानियुक्त देखता हुआ काम सेवन से विरक्त होता है, वह ब्रह्मचारी कहलाता है।

दिवसेन बिना सूर्यो, यथा नैवोलभ्यते।
तथा सर्वव्रतं दक्षै ब्रह्मचर्यं बिना न च।।9।।

अर्थ–जैसे दिवस के बिना सूर्य उपलब्ध नहीं होता, उसी प्रकार निपुण मनुष्यों के ब्रह्मचर्य के बिना समस्त व्रत नहीं होते हैं।

यः करोति गुरुभाषितं मुदा, संश्रये वसति वृद्धसंकुले।
मुचिंत तरुणलोकसंगतिं, ब्रह्मचर्यममलं स रक्षति।।10।।

अर्थ–जो गुरु की आज्ञा का सहर्ष पालन करता है, वृद्धों के समूह में निवास करता है, जवानों की संगति छोड़ता है, वह निर्मल ब्रह्मचर्य की रक्षा करता है।

ब्रह्मचर्यमपि पालय सारं, धर्मसारगुणदं भवतारम्।
स्वर्गमुक्तिगृहप्रापणहेतुं, दुःखपरि सिन्धु विलंघनसेतुम्।।11।।

अर्थ–हे भव्य! धर्म का सार, गुणों को देने वाला, स्वर्ग मोक्ष रूपी घर को प्राप्त करने का हेतु, दुःख रूपी सागर को लांघने का सेतु स्वरूप सारभूत ब्रह्मचर्य का पालन करो।

सव्वेसिं इत्थीणं जो अहिलीसं ण कुव्वदे णाणी।
मण वयण काएण य, बंभवई सोहवे सदओ॥12॥

अर्थ–जो दयालु ज्ञानी, मन, वचन, काय से समस्त स्त्रियों की अभिलाषा नहीं करता है, वह ब्रह्मचर्य व्रत का धारी होता है।

अनेकानि सहस्त्राणि, कुमारा ब्रह्मचारिणः।
दिवंगनाः हि राजेन्द्रः! अकृत्वा कुल सन्ततिं॥13॥

अर्थ–हे राजन्! सन्तान को उत्पन्न न करके हजारों बाल ब्रह्मचारी स्वर्ग गए हैं।

त्रियोगाः करणं त्रेधा, चतुःसंज्ञाऽक्ष पंच वै।
दश पृथ्व्यादिकायाश्च, धर्माः क्षमादयो दशः॥14॥
अन्योऽन्यं गुणिता एव, योगाद्याः श्रुतकोविदैः।
अष्टादश सहस्त्राणि, शीलानि स्युर्महात्मनाम्॥15॥

अर्थ–तीन योग, तीन करण, चार संज्ञा, पाँच इन्द्रियाँ–पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, वनस्पति के बादर, सूक्ष्म की अपेक्षा 10 भेद, उत्तम क्षमादि 10 धर्म, इन सबका गुणा करने पर ज्ञानियों ने, महात्माओं के शील के 18000 भेद कहे हैं।

$3 \times 3 = 9 \times 4 = 36 \times 5 = 180 \times 10 = 1800 \times 10 = 18000$

शीलेन प्राप्यते सौख्यं, शीलेन विमलं यशः।
शीलेन लभ्यते मोक्षः तस्माच्छीलं वरं व्रतं॥16॥
शीलेन शोभना नार्यः शीलेन सुगुणाः सदा।
शीलेन सम्पदः सर्वाः शीलतो नापरं शुभम्॥17॥

अर्थ–शील से सुख प्राप्त होता है, शील से निर्मल यश प्राप्त होता है, शील से मोक्ष प्राप्त होता है इसलिए शीलव्रत श्रेष्ठ है।

शील से स्त्रियाँ सुशोभित होती हैं, शील से सुगुणों की प्राप्ति होती है, शील से समस्त सम्पत्तियाँ प्राप्त होती हैं, अतः शील से श्रेष्ठ व्रत दूसरा नहीं है।

शीलाभरणयुक्तांश्च, त्रिजगधीः स्वयं मुदा।
व्रणोत्येय जिनश्रीश्च, मुक्तिरालोकते मुहुः।।18।।

अर्थ–शील रूपी आभूषण से युक्त पुरुष को जिनेन्द्र भगवान की लक्ष्मी सहित तीनों लोकों की लक्ष्मी आकर स्वयं वर लेती है तथा मुक्ति लक्ष्मी बार-बार अवलोकन करती है।

प्रकम्पन्ते सुरेशानां, शीलेनात्रसनाति भोः।
किंङ्करा इव सेवन्ते, पादान् शील जुषां सुराः।।19।।

अर्थ–हे भव्य! शील के प्रभाव से स्वर्गों में इन्द्र के आसन कम्पायमान हो जाते हैं एवं देवता आकर नौकरों की तरह शीलवानों के चरणों की सेवा करते हैं।

जीवितव्यं दिनैकं च, वरं शीलवतां भुवि।
निःशीलानां वृथा नूनं, पूर्वकोटिशतप्रभम्।।20।।

अर्थ–पृथ्वी पर शीलवानों का एक दिन भी जीना अच्छा है किन्तु शील रहित मनुष्यों का करोड़ों वर्ष जीना भी व्यर्थ है।

शील प्रधानं कुल प्रधानं, कुलेन किं शीलविवर्जितिना।
वहवो नरा नीचकुलेषु जाताः, स्वर्ग गता शीलगुपेत्य धीराः।।21।।

अर्थ–ब्रह्मचर्य प्रधान है, कुल प्रधान नहीं है। ब्रह्मचर्य रहित कुल से क्या प्रयोजन है, नीच कुल में भी उत्पन्न बहुत से धीर पुरुष शील को धारण करके स्वर्ग को प्राप्त हुए हैं।

धनहीनोऽपि शीलादयः, पूज्यः सव्रत्र विष्टये।
शीलहीनो धनाद्योऽपि, न पूज्यः स्वजनेष्वपि।।22।।

अर्थ–शील से युक्त पुरुष धनरहित होने पर भी तीनों लोकों में पूजा जाता है किन्तु शील रहित मनुष्य धनवान होने पर भी अपने बन्धुओं से भी सम्मान को प्राप्त नहीं होता है।

जो परिहरेदि संगं, महिलाणं णेव पस्सदे रुवं।
कामकहादिणिरीहो णवविहं वंभं हवे तस्स।।23।।

अर्थ–जो स्त्रियों की संगति का परिहार करता है, उनका रूप

आदि नहीं देखता तथा काम कथा आदि से विरक्त रहता है उसके नव प्रकार का ब्रह्मचर्य व्रत होता है।

मेहुणसण्णारुढ़ो, मारई णवलक्खसुहुमजीवाई।
द्वयजिणवरेहिं भणियं, बहिरब्भंतरणिग्गंधरूपेहिं।।24।।

अर्थ–एक बार मैथुन करने वाला व्यक्ति नौ लाख सूक्ष्म लब्ध्यपर्याप्त पंचेन्द्रिय जीवों की हिंसा करता है, ऐसा बाह्य आभ्यन्तर परिग्रह रहित वीतराग जिनेन्द्र भगवान ने कहा है।

अभिवादनशीलस्य, नित्यं वृद्धोपसेविनः।
चत्वारि तस्य वर्धन्ते, आयुर्विद्यायशोबलम्।।25।।

अर्थ–अभिवादन करने वाले, शील का पालन करने वाले एवं हमेशा वृद्धों की सेवा करने वालों के आयु, विद्या, यश और बल इन चार की वृद्धि होती है।

तपः श्रुत, धृति, ध्यान, विवेक, यम संयमैः।
ये वृद्धास्तेऽत्र शस्यन्ते, न पुनः पलितांकुरैः।।26।।

अर्थ–यहाँ सफेद बालों वाले वृद्ध नहीं लेना, किन्तु जो तप, ज्ञान, धैर्य, ध्यान, विवेक, अनुभव, यम, संयम से ज्यादा हैं वो वृद्ध प्रशंसनीय तथा सेवा के योग्य हैं।

विद्या तपो धनं शौर्य, कुलीनत्वरोगिता।
राज्यं स्वर्गश्व मोक्षश्च, सर्व धर्मादवाप्यते।।27।।

अर्थ–विद्या, तप, धन, शूरवीरता, कुलीनता, निरोगता, राज्य स्वर्ग और मोक्ष सब कुछ धर्म से प्राप्त होता है। इसलिए धर्माचरण करना चाहिए।

सर्वोदयी चिन्तन

हे मीत! यदि तू उत्तम ब्रह्मचर्य व्रत का पालन कर रहा है तो तुझे अन्य व्रतों की क्या आवश्यकता है? और यदि तू ब्रह्मचर्य व्रत की साधना नहीं कर सका तब अन्य व्रतों से क्या?

अमृत दोहावली

घास फूल जे खात हैं तिन्हें सतावें काम।
षट् रस व्यंजन जे करें, तिनकी जानें राम॥1॥

नारी जने के भक्त जन, के दाता के शूर।
नहिं तो बांझ रहवो भलो, मत व्यथा गमावें नूर॥2॥

पर नारी पैनी छुरी, तीन ठोर से खाय।
धन छीने यौवन हरे, मरे नरक ले जाये॥3॥

पर नानी पैनी छूरी, मत लागो कोई अंग।
रावण के दश शीश गये, पर नारी के संग॥4॥

सदा सुहागन दो सखी, रोटी अर निज दार।
दाम चौगुने अरु दु:खद, पूड़ी और पर नार॥5॥

सर्वोदयी चिन्तन

ब्रह्म स्वरूपी आत्मा में रमण करने वाला योगी ही भगवान है, जो ब्रह्म स्वभाव से च्युत है, उन्हें अब क्या कहें?

सर्वोदयी चिन्तन

मोक्ष मार्ग के प्रारंभिक सोपान का नाम भी ब्रह्मचर्य है तथा अंतिम पड़ाव का नाम भी ब्रह्मचर्य है।

उत्तम ब्रह्मचर्य व्रत व शील धर्म के सम्बन्ध में आगमिक कथाएँ

1. **पाँच बाल ब्रह्मचारी तीर्थंकरों का जीवन चरित्र**–श्री वासुपूज्य भगवान्, श्री मल्लिनाथ भगवान्, श्री नेमिनाथ भगवान्, श्री पार्श्वनाथ भगवान् एवं श्री महावीर भगवान्, इनकी कथाएँ उत्तर पुराण, पद्म पुराण, हरिवंश पुराण, मल्लिनाथ पुराण, नेमिनाथ–पार्श्वनाथ–महावीर पुराण या चरित्र, इत्यादि ग्रंथों के माध्यम से सविस्तृत जानें।

2. सीता, राजुल, गुणमाला, विशल्या, अनंगसरा, रयण–मंजूषा, द्रौपदी ब्राह्मी–सुन्दरी, मनोवती, अनंतमती, नीली बाई, चन्दना, मनोरमा, अंजना, सुलोचना, सुर–सुन्दरी, मैनासुन्दरी, मदनलेखा, सुजानी, विजया इत्यादि महासतियों के जीवन चरित्र। इन महासतियों ने अनेक उपसर्गों का समता से सामना किया, अपने प्राणों की भी परवाह नहीं की। अपने सतीत्व धर्म व शील धर्म की रक्षा के लिए भौतिक सुखों को तिलांजलि दे दी। किन्तु अपने शील धर्म से च्युत नहीं हुईं। इनकी कथायें विस्तार से प्रथमानुयोग के शास्त्रों से जानना चाहिए। अथवा अपने गुरुजी से इनकी कथायें सुनना चाहिए।

3. **शील धर्म में प्रसिद्ध महापुरुष**–असिधारा व्रत का पालक विजय, विवाहित बाल ब्रह्मचारी जम्बू स्वामी, महापुरुष जय कुमार, नानोपसर्ग विजेता सेठ सुदर्शन, शील धुरंधर वरांग कुमार, दृढ़ स्वदार संतोष व्रती राम–लक्ष्मण, जयकुमार, पर स्त्रियों के लिए कामदेव श्री शैल, भीष्म पितामह इत्यादि

महापुरुषों की कथायें जिनागम में प्रसिद्ध हैं, वहाँ से जानकर ही व्याख्यान करें, अथवा अपने गुरुजी से विनयपूर्वक पूछकर जान लें।

4. **अब्रह्म/कुशील सेवन कुख्यात**– रावण, चारुदत्त, कोतवाल, धनश्री, कमठ, अंजन चोर, वइरसेन, इत्यादि पुरुष कुप्रसिद्ध हुए। पापों से भयभीत करने हेतु इनकी कथाएँ भी सुनाई जा सकती हैं।

5. **स्त्री चरित्र को देखकर विरक्त हुए पुरुष**– राजा भर्तृहरि-पिंगला रानी का चरित्र देखकर, रक्ता रानी, गोपवती, मंगी-वज्रमुष्टि, रत्नावली-नलकूबर, सकलभूषण-किरण मण्डला इत्यादि कथायें भी आगम से जानें।

6. **राख चढ़ाकर व धान के छिलके चढ़ाकर मुनि दर्शन करने वाले वृद्ध युगल**– जब तक शरीर की राख नहीं हो जायेगी, जब तक अनाज/धान खाती हूँ तब तक हम ब्रह्मचर्य नहीं ले सकते।

सर्वोदयी चिन्तन

मोक्ष मार्गी वही बनता है जो अब्रह्म (विषय-कषाय, संसार, शरीर व भोगों से विरक्त है) से विरक्त हो और धर्म ध्यान/आत्मा में आसक्त हो। (रत्नत्रय में आसक्त हो।)

ब्रह्मचर्य व्रत की साधना का प्रारम्भ सप्त व्यसन त्याग के प्रारम्भ से ही हो जाता है तथा पूर्णता अयोग केवली अवस्था में होती है।

:: नमनकर्ता ::

- श्री प्रमोद जी निकुंज जैन हरदेवपुरी, ज्योतिनगर
- श्री रविन्द्र जी, अमित जी, अंकित जी गर्ग मार्बल
- श्री अनिल जैन ऑडीटर
- श्री अरुण जी प्रतीक जैन निपुण जैन
- श्री रघुराज जी मनोज जैन
- श्री प्रमोद जी, राजीव जी अतुल जैन
- श्री नवीन जी प्रोफेसर
- श्री लोकेश जैन खेकड़ा
- श्री मनीष जैन दुर्गापुरी
- श्री सुनील जैन दुर्गापुरी
- श्री किशन जी नीरज जैन

आचार्य श्री वसुनन्दी जी मुनिराज

जन्म
03 अक्टूबर 1967
ग्राम विरौंधा, मनिया,
धौलपुर (राज.)

मुनि दीक्षा
11 अक्टूबर 1989
भिण्ड (म.प्र.)
नाम
मुनि निर्णय सागर

उपाध्याय पद
17 फरवरी 2002
विश्वास नगर, दिल्ली

एलाचार्य पद
01 अप्रैल 2009
ग्रीन पार्क, दिल्ली
नाम
एलाचार्य श्री वसुनन्दी जी मुनिराज

आचार्य पद
03 जनवरी 2015
कुन्दकुन्द भारती, दिल्ली

साहित्य श्रृंखला
लगभग 250

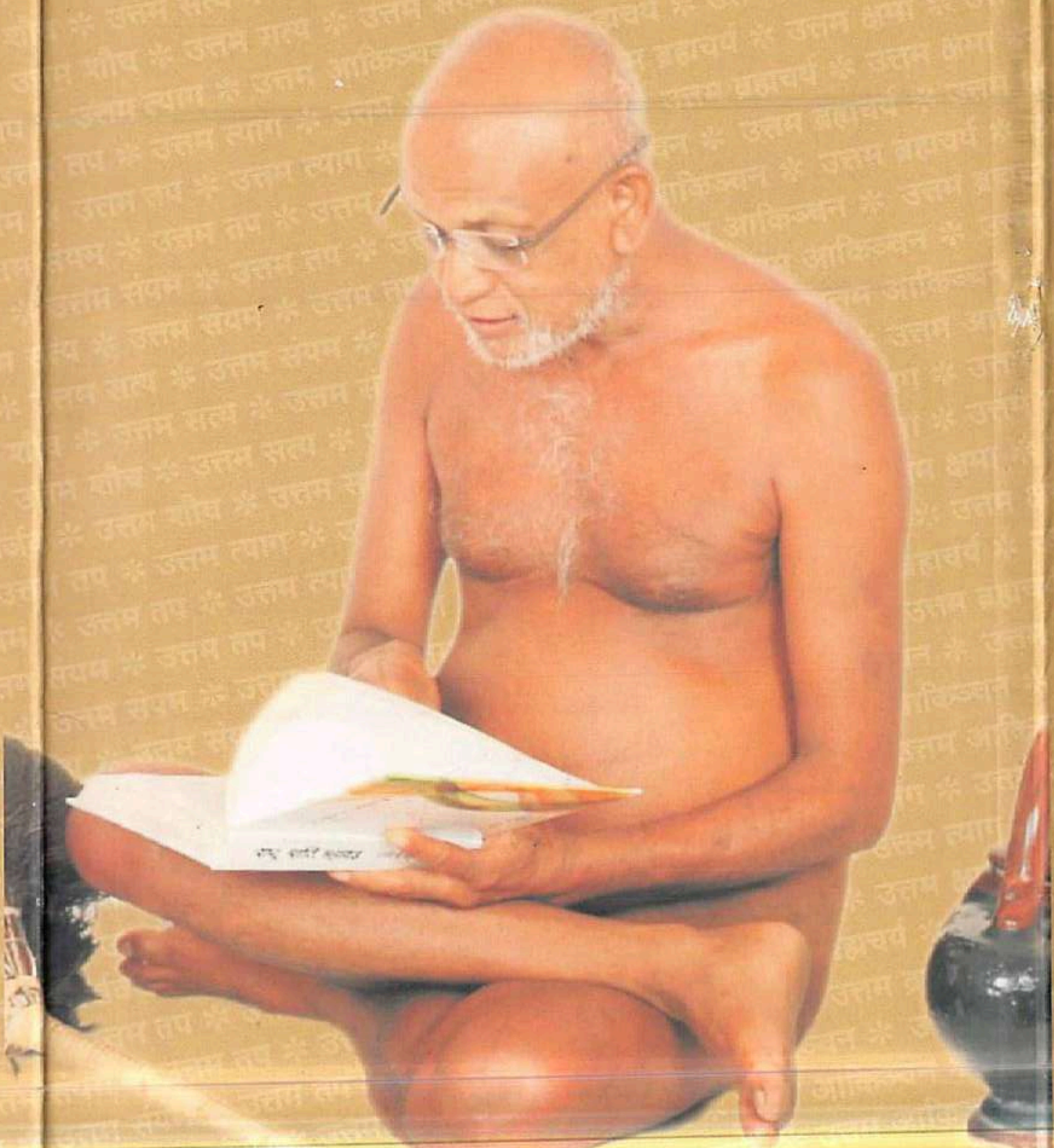

अहिंसा अंतस का

-आचार्य श्री वसुनंदी जी मुनिराज